डॉ. राममनोहर लोहिया एवं समाजवादी आन्दोलन : राजनैतिक नेतृत्व में एक विश्लेषण (1946-1964)

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी से राजनीति विज्ञान
में
पी-एच.डी. उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबंध

2007

निर्देशक :
डॉ. किशन यादव
रीडर एम.ए.,एम.फिल, पी. एच-डी.
राजनीति विज्ञान विभाग एवं शोध केन्द्र
सलाहकार-भारतीय मानव अधिकार संस्थान दिल्ली
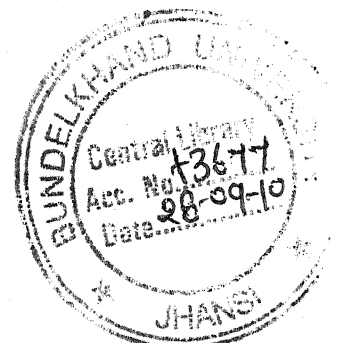
शोधार्थी :
अरविन्द सिंह यादव
एम.ए., राजनीति विज्ञान

राजनीति विज्ञान विभाग एवं शोध केन्द्र

अतर्रा पोस्ट ग्रेजुएट कालेज, अतर्रा बाँदा (उ.प्र.)

डॉ. राममनोहर लोहिया

Dr. Kishan Yadav
M.A., M.Phil, Ph.D.,
Reader

Department of Political Science
& Research Center,
Attara P.G. College, Attara
District- Banda (U.P.)
Ph.05192-220361
Mob.9450226226,9425145739

CERTIFICATE

This is to certify that the work entitled " राममनोहर लोहिया एवं समाजवादी आन्दोलन : राजनैतिक नेतृत्व में एक विश्लेषण (1946–1964)" is a piece of research work done by **Arvind Singh Yadav** under my guidance and supervision for the degree of Doctor of Philosophy in Political Science, ***Attara P.G. College, Attara District Banda (U.P.)*** India and that the candidate has put an attendance of more than 200 days with me.

To the best of my knowledge and belief the Ph.D. thesis

(i) embodies the work of the candidate himself;

(ii) has duly been completed;

(iii) fulfils the requirements of the ordidance relating to the Ph.D. degree of the University and

(iv) is upto the standard both in respect of contents and language for being referred to the examiner.

Supervisor

Date 19 NOV. 09

(Dr. Kishan Yadav)

DECLARATION BY THE CANDIDATE

I declare that the thesis entitled " राममनोहर लोहिया एवं समाजवादी आन्दोलन : राजनैतिक नेतृत्व में एक विश्लेषण (1946–1964)" is my own work conducted under the supervision of **Dr. Kishan Yadav (Supervisor)**, Reader,Department of Political Science, ***Attara P.G. College, Attara District Banda (U.P.)*** approved by Research Degree Committee. I have put in more than 200 days of attendance with the supervisor at the centre.

I further declare that to the best of my knowledge the thesis does not contain any part of any work which has been submitted for the award of any degree either in this university or in any other University/Deemed university without proper citation.

Signature of Candidate

(Arvind Singh Yadav)

आभार

डॉ. लोहिया के समाजवाद और समाजवादी आन्दोलन का राजनैतिक नेतृत्व में विश्लेषण मेरे अनुसंधान का प्रमुख लक्ष्य रहा है। इसी लक्ष्य को मनस्थ कर अपने गुरूवर व शोध निर्देशक डॉ. किशन यादव के समीप पहुँचा। पूज्य गुरूवर ने मेरी अनुसन्धेय बुद्धि का परीक्षण करके अपने आर्शीवाद के रूप में मुझे "डॉ. राममनोहर लोहिया और समाजवादी आन्दोलन, राजनैतिक नेतृत्व में विश्लेषण (1946-64)" शीर्षक अनुसंधान हेतु प्रदान किया। अपने पूज्य गुरूवर के आर्शीवाद को प्राप्त कर मैंने अपनी शोध-यात्रा प्रारम्भ की। मेरे इस शोध कार्य में कई प्रकार की विषम परिस्थितियाँ भी उत्पन्न हुई परन्तु पूज्य गुरूजी के शुभाशीष से सभी परिस्थितियों का सफलतापूर्वक सामना किया। और अपने इस शोध कार्य को आकार प्रदान किया। शोध प्रबंध के आकार प्राप्त होने के अवसर पर कृतज्ञता ज्ञापित करना मेरा नैतिक धर्म है। इस नैतिक धर्म का निर्वहन करते हुए डॉ. किशन यादव के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। जिनका सहयोग और आर्शीवाद मुझे हर पल मिलता रहा। मैं इस सहयोग व निर्देशन के लिए गुरूवर डॉ. किशन यादव का चिर ऋणी रहूँगा।

मैं आदरणीया डॉ. जयश्री पुरवार जिनका कृतित्व एवं व्यक्तित्व मुझे प्रारम्भ से ही प्रभावित करता रहा है, का हृदय से आभारी हूँ, उन्होंने इस शोध प्रबन्ध के सम्पादन में अपना अमूल्य समय निकालकर मेरा मार्गदर्शन किया है। मैं गुरूवर डॉ. रिपुसुदन सिंह, डॉ. राजेन्द्र पुरवार, डॉ. आदित्य कुमार व श्री सोम शर्मा का विशेष आभारी हूँ, जिनके रचनात्मक सुझावों मार्गदर्शन एवं सहयोग से प्रस्तुत शोध में उल्लेखनीय सहायता प्राप्त हुई।

मैं वरिष्ठ पत्रकार श्री के.पी.सिंह के प्रति कृतज्ञ हूँ जिन्होंने शोध विषय सम्बन्धी नई तकनीकों को समझाया व अपना अमूल्य समय मुझे प्रदान किया।

मैं अपने मित्र अभिलाष यादव, अतुल आशुतोषशरण गुबरेले, प्रदीप शुक्ल, जितेन्द्र कटियार का आभार प्रकट करते हुए उनके प्रति शुभकामना व्यक्त करता हूँ तथा समस्त सहयोगी बंधुओं का आभारी हूँ जिनका प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष सहयोग प्राप्त हुआ।

मैं अपने परिवार के समस्त सदस्यों के प्रति भी प्रणामपूर्वक धन्यवाद प्रकट करता हूँ। जिन्होंने हर पल मुझे उत्साहित और प्रेरित कर विषम परिस्थितियों में लड़ने के लिए सबल प्रदान किया। अतः सदैव मैं ऋणी रहते हुए कृतज्ञता अर्पित करता रहूँगा।

मैं निम्न संस्थाओं के प्रभारी एवं कर्मचारियों के प्रति आभारी हूँ, जिन्होंने आवश्यक सामग्री प्रदान करने में आत्मीय भाव से सहयोग दिया।

1. संसद पुस्तकालय, राज्यसभा, नई दिल्ली
2. इलाहाबाद विश्वविद्यालय पुस्तकालय, इलाहाबाद
3. लखनऊ विश्वविद्यालय पुस्तकालय, लखनऊ
4. डॉ. राममनोहर लोहिया ट्रस्ट, लखनऊ
6. म.प्र. विधानसभा पुस्तकालय, भोपाल
7. डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर
8. शाहू जी महाराज विश्वविद्यालय पुस्तकालय, कानपुर
9. बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय पुस्तकालय, झाँसी
10. राजकीय जिला पुस्तकालय, उरई

अन्त में अक्षर संयोजन के लिए मैं माँ सिद्धेश्वरी कम्प्यूटर ग्राफिक्स के प्रति धन्यवाद प्रकट करता हूँ जिन्होंने पूर्ण निष्ठा के साथ विषय वस्तु को निश्चित समयावधि में आकार दिया।

शोधार्थी

(अरविन्द सिंह यादव)

अनुक्रमणिका

प्रस्तावना

समाजवादी आन्दोलन के प्रणेता, डॉ. राममनोहर लोहिया एक ऐसे विचारक, राजनीतिज्ञ क्रान्तिप्रेरक नेता थे जिन्होंने आजीवन सामाजिक व्यवस्था के खिलाफ आवाज उठायी और सम्पूर्ण मानव जाति के लिए संघर्ष किया।

डॉ. लोहिया ने सामाजिक जीवन और निजी जीवन के बीच दूरियों को बहुत शून्य कर दिया था। उनका सम्पूर्ण जीवन समाज व देश के लिए समर्पित था। उन्होंने अपने कृत्यों व व्यक्तित्व से प्राचीन भारतीय ऋषियों की ''वसुधैव कुटुम्बकम'' की भावना को चरितार्थ किया था।

डॉ. लोहिया कभी भी लकीर के फकीर नहीं रहे। अन्याय, अविचार, बुराइयों और असत्य का उन्होंने हर अवसर पर पर्दाफाश किया वे मानते थे कि प्रकट और स्पष्ट अन्यायों के खिलाफ लड़ने की ताकत तभी आयेगी जब उनका डटकर विरोध किया जायेगा। घिसी-पिटी लीक पर चलना लोहिया के स्वभाव में न था। साथ ही वे प्रवाह के साथ भी कभी बहे नहीं बल्कि प्रचलित प्रवाह के उल्टे तैरने के प्रयोग में उनके विचारों के प्रचार के लिए देश के अखवारों का भी सहयोग कभी नहीं मिला।

डॉ. लोहिया ऐसे समाज की परिकल्पना करते थे जहाँ गरीबी न हो, किसी प्रकार का भेद-भाव न हो, गैरबराबरी न हो, कोई भूखा न रहे, कोई नंगा न रहे, सबको रोटी, कपड़ा और मकान मिल सके, किसी प्रकार का शोषण या अत्याचार न हो, बल्कि शान्ति और समता हो, सद्भाव हो, सब मिलकर एक साथ रहें, सबमें आपसी भाईचारा हो । उनके इस समाजवादी आन्दोलन व विचारधारा का देश के विकास में पर्याप्त प्रभाव रहा है।

देश के राष्ट्रीय आन्दोलन में डॉ. लोहिया का महत्वपूर्ण योगदान रहा। भारत के स्वतंत्रता आन्दोलन के आखिरी दौर में लोहिया की भूमिका अति महत्वपूर्ण रही। स्वयं लोहिया ने भूमिगत आंदोलनों में अपनी भूमिका के बारे में बढ़ा-चढ़ा कर कभी कुछ नहीं कहा, बल्कि वे तो कहते थे कि क्रान्ति के लिए उपयुक्त संगठन बनाने के लिए मैने कुछ भी नहीं किया। भूमिगत रेडियों की कल्पना को उषा मेहता और उनके साथियों की मदद से

डॉ. लोहिया ने साकार किया। भूमिगत अखिल भारतीय कांग्रेस समिति द्वारा नित्य नये कार्यक्रम जारी करने का कार्य मुख्य रूप से लोहिया ही करते थे। सुचेता कृपलानी जैसे समाजवादी व अच्युत पटवर्धन जैसे समाजवादी इनके बीच की कड़ी लोहिया ही थे।

डॉ. लोहिया कट्टर अहिंसावादी थे और जनतांत्रिक समाजवाद के जनक थे। यदि कांग्रेस से जनतांत्रिक समाजवाद की रचना की दूर-दूर तक कहीं सम्भावना होती, तो भी समाजवादियों का कांग्रेस से मोह भंग न होता। सन् 1962 से सन् 1966 के राजनैतिक दौर में डॉ. लोहिया की सोच 'गैर कांग्रेसवाद' की ओर गई और सन् 1967 के आम चुनाव 'चुनावी तालमेल' से लड़े गये। परिणामस्वरूप 1967 में गैर कांग्रेसवादी राजनैतिक रणनीति के तहत 'कामन प्रोग्राम' के आधार पर आठ राज्यों में गैर कांग्रेसी सरकारों का उदय हुआ। कांग्रेस के टूटने की प्रक्रिया के युग का सूत्रपात हुआ। परन्तु यह संविदा सरकारें अल्पकाल में ही एक के बाद दूसरी टूटती गई, जिससे कांग्रेस सरकारी तथा पूँजीवादी गैर सरकारी मीडिया ने लोहिया के गैर कांग्रेसवाद को एक थोथी नीति बताई और कहा कि यह नीति शीशे की तरह चकनाचूर व नेस्तानाबूद हो गई है। परन्तु यह मीडिया की भूल थी।

डॉ. लोहिया ने भारत जैसे विशाल देश में तमाम राजनैतिक दलों व तमाम तरह के पंथों या सम्प्रदायों और समाज के जातीय ढाँचे को अपने वर्तमान समय व आगे भविष्यकाल में देख रहे थे। इसीलिए उन्होंने कहा था कि अब आगे देश में क्षेत्रीय नेता होंगे और स्वाभाविक है कि क्षेत्रीय दल भी देश के सामाजिक व राजनैतिक पटल पर प्रकट होंगे। ऐसे में 'गैर कांग्रेसवाद' की रणनीति ही कांग्रेसी भाई-भतीजावाद व भ्रष्टाचार में डूबे शासनतंत्र का सफाया कर स्वस्थ राजनीति को संचार कर सकने में सक्षम होगी।

डॉ. लोहिया की मौलिकता और सूझ-बूझ का लोहा तो महात्मा गांधी सहित स्वतंत्रता संग्राम के सभी नेता मानते थे। लेकिन उनकी महानता यही थी कि उन्होंने एक भविष्यवक्ता की तरह पूरी दुनिया और भारत का भविष्य देख लिया था। यही कारण है कि आज डॉ. लोहिया की भविष्यवाणियाँ सत्य साबित हो गई हैं। डॉ. लोहिया भारतीय परिस्थितियों के लिए आज भी उतने प्रासंगिक है। जितना आजादी के बाद से अपने अन्तिम दिन तक थे।

डॉ. लोहिया जानते थे कि हिन्दुस्तान एक विशाल देश है और केवल एक

लोकसभा में जिसे वे बड़ी पंचायत बोलते थे, या विधानसभा का चुनाव होने से लोकतंत्र की भावना देश की जनता तक नहीं पहुँच सकती थी, इसलिए उन्होंने "चौखम्भा राज्य" की परिकल्पना की थी। अब धीरे-धीरे सभी ने अनुभव किया है कि जब तक जिला और ग्राम स्तर तक सत्ता का विकेन्द्रीकरण नहीं होगा। तब तक वास्तविक स्वराज्य प्राप्त नहीं होगा। इसी प्रकार "सप्तक्रान्ति" का सिद्धान्त लोहिया की विशेष राजनीतिक देन है। इस सिद्धान्त की सबसे महत्वपूर्ण बात है "समानता"।

समानता के लिए डॉ. लोहिया सदैव संघर्षशील रहते थे। सन् 1964 में लोहिया ने अमेरिका में रंगभेद के विरूद्ध सत्याग्रह किया था। उन्हें गिरफ्तार किया गया और बाद में उस समय के अमरीकी राष्ट्रपति लिंडन जानसन ने उनसे क्षमा मांगी थी। इसी तरह आदमी और औरत के बीच समानता की बात जिस गम्भीरता से डॉ. लोहिया ने उठाई थी अपने आप में बेमिसाल है हरिजनों और पिछड़े वर्गों के लिए जो संघर्ष डॉ. लोहिया ने किया है, वह इस देश के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखा जायेगा। उन्होंने आज से 53 वर्ष पहले कहा था कि जो लोग हजारों साल दबाए गये हैं और जो लोग हजारों सालो से दबते रहे हैं उन दोनों में बराबरी नहीं हो सकती है। अपने इस वेबाक वक्तव्य के लिए डॉ. लोहिया को न केवल दूसरे नेताओं और निहित स्वार्थी तत्वों की आलोचना झेलनी पड़ी बल्कि सोशलिस्ट पार्टी के लोगों ने भी उनका मजाक उड़ाया था। लेकिन विरोध के बावजूद डॉ. लोहिया अपनी इस बात पर कायम थे। उनका विश्वास था कि "लोग मेरी बात सुनेगें जरूर लेकिन मेरे मरने के बाद।"

आज उनकी एक-एक भविष्यवाणी सत्य सिद्ध हुई है। सबसे पहले डॉ. लोहिया ने पूर्व और पश्चिम जर्मनी के एकीकरण का स्वप्न देखा था जो आज साकार हो गया है। उन दिनों यूरोप या अमेरिका में किसी को कल्पना नहीं थी कि दोनों जर्मनी मिल जायेंगें। इसी तरह डॉ. लोहिया ने भारत-पाक महासंघ की बात की थी। हम लोगों ने इसके लिए कुछ ठोस काम नहीं किया है, परंतु यह बात वक्त के हाथों में है।

डॉ. लोहिया उस समय के नेतृत्व से सहमत नहीं थे आचार्य नरेन्द्रदेव, जय प्रकाश नारायण, अच्युत पटवर्धन, एस.एम.जोशी, हरिविष्णु कामथ आदि समाजवादी सिद्धान्तों के पंडित थे। इन्हीं के साथ कुछ ऐसे भी समाजवादी थे जो समाज के आन्तरिक आन्दोलनों से प्रभावित होकर सत्ता में शामिल होने के लिए आतुर हो रहे थे, कुछ अत्यन्त राष्ट्रीय

समाजवादी आन्दोलन के प्रकाश में भारत की पुर्नव्याख्या करना चाहते थे। लेकिन डॉ. लोहिया इन सबसे भिन्न सोच वाले थे। 1947 में एशियन कॉन्फ्रेंस में जब जयप्रकाश नारायण ने प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू की प्रशंसा करते हुए कहा था कि नेहरू के हाथ में देश और समाजवादी विचारधारा दोनों सुरक्षित हैं तो डॉ. लोहिया ने जयप्रकाश नारायण की कड़ी आलोचना की थी।

डॉ. लोहिया ने समाजवाद की जो कल्पना की थी, वह जयप्रकाश और नेहरू से भिन्न थी। डॉ. लोहिया का कहना कि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर समाजवाद का एक सकारात्मक रूप हो सकता है किन्तु अन्तर्राष्ट्रीय समाजवाद सार्थक तभी होगा, जब वह राष्ट्रीय स्तर पर अपनी सार्थक एवं सक्रिय भूमिका निभायेगा। इसलिए डॉ. लोहिया ने पूरे समाजवादी आन्दोलन को अपने विचारों से प्रभावित किया था।

डॉ. लोहिया ने आजादी के बाद की राजनीति की नब्ज पकड़ ली थी। वह देख रहे थे कि आजादी पाने के लिए जो मानसिकता बनी, आज मात्र वही काफी नहीं थी। स्वतन्त्रता तो विदेशी शिकंजे से मिली थी, पर अब इस क्षेत्र में बहुत पुराने शिकंजे हैं जिन्हें तोड़ना जरूरी है। जब तक ये नहीं टूटते तब तक हमें वास्तविक स्वतन्त्रता की प्राप्ति का अनुभव नहीं होगा।

उनके ये विचार अन्य लोगों के विचारों से भिन्न थे। डॉ. लोहिया, पूरे देश को समाजवादी चिन्तन से जोड़ने के लिए, ठोस भारतीय धरती से जुड़ना आवश्यक समझते थे। वह भारतीय जनमानस को भली-भाँति समझना और जानना भी चाहते थे। वह चाहते थे कि देश के समाजवादी नेताओं के मन में देश की पहचान बने। वह चाहते थे कि देश के समाजवादियों में बराबरी, समाजवाद और जनतंत्र को समझने की बैचेनी पैदा हो। उनका विश्वास था कि जब वह बैचेनी पैदा होगी तभी आजादी के बाद देश पर छोड़ी हुई अकर्मण्यता और निराशा का धुन्ध समाप्त होगा। यही नहीं, उनकी आंखों में समाजवाद का एक सपना सगुण उभरेगा। बराबरी के लिए आंतरिक उत्सुकता पैदा होगी और जनतंत्र का जो ढाँचा बना है उसमें प्राण संचारित होगा।

लेकिन उस समय के समाजवादी पुरोधा डॉ. लोहिया की इन बातों को महत्वपूर्ण नहीं मानते थे। वह समझते थे कि आजादी के बाद नेहरू के नेतृत्व वाली सरकार इन

आकांक्षाओं की पूर्ति करेगी ही। यही कारण था कि एक बहुत बड़ा वर्ग समाजवादियों में ऐसा था, जो नेहरू की सरकार को राष्ट्रीय मानकर उनके कार्यक्रमों में भाग लेकर समाज में परिवर्तन लाने की बात सोच रहा था। उनकी अवधारणा थी कि सहकारिता आंदोलन, ग्राम पंचायतों के संगठन तथा योजना आयोग के कार्यक्रमों में सहयोग देने से देश में समाजवादी क्रान्ति आ जायेगी। लेकिन लोहिया का तो स्वप्न भंग हो चुका था। गोवा के सत्याग्रह में उन्होंने देख लिया था कि नेहरू की सरकार खामोश थी। वह तो गाँधी ने जान की बाजी लगा दी थी। नहीं तो डॉ. लोहिया पुर्तगाली जेल में ही सड़ते रहते। डॉ. लोहिया आजादी के बाद 1954 तक तीन-चार बार सरकार द्वारा जेल भेजे गये थे। इसलिए उनके मन में नेहरू सरकार के प्रति भ्रम नहीं था।

डॉ. लोहिया ने यह भी अनुभव किया था कि कांग्रेस के नेतृत्व में जो समाजवादी आन्दोलन विकसित हुआ था उसमें स्वयं अन्तर्विरोध था। वह अंतर्विरोध राष्ट्रीय कांग्रेस के बहुआयामी नेतृत्व द्वारा पैदा हुआ था। कांग्रेस का मूल चरित्र ऐसे व्यक्तियों द्वारा निर्धारित होता था जो आजादी की लड़ाई लड़ने के लिए संगठित हुए थे। इस कांग्रेसी संस्कृति के अनुयायी बहुत से समाजवादी भी थे, कम्युनिस्ट भी थे, क्रान्तिकारी भी थे, एम.एन.राय जैसे लोग भी थे जिनके मतभेदों का शमन गांधी के नेतृत्व में हो जाता था। लेकिन कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के कांग्रेस से अलग हो जाने और अलग संगठन बन जाने के बाद उसका चरित्र बदल गया था। अधिकांश लोग समाजवादी विचारों के होते हुए भी राष्ट्रीय नेतृत्व के मोह से मुक्त नहीं हो पाये थे। डॉ. लोहिया की सोच इन लोगों से भिन्न थी। समाजवादी पार्टी के हर सम्मेलन में उन्होंने इस मानसिकता की आलोचना करते हुए स्पष्ट शब्दों में कहा था- मात्र समाजवादी सिद्धान्तों के तोता रटन्त और राष्ट्रीय कांग्रेस का मुखापेक्षी होने से समाजवादी आन्दोलन विकसित नहीं हो सकता।

उन्होंने समाजवादी विचारधारा को राष्ट्रीय संदर्भ में विकसित करने की बात तो कही थी, किन्तु उसके स्वतंत्र विकास के लिए अलग कार्यक्रम पर बल दिया था। उन्होंने समाजवादी कार्यक्रमों की चर्चा करते हुए कहा था कि वे समता और जनतंत्र के आधार पर बनने चाहिए। संगठनात्मक कार्यों में आगे बढ़कर हमें बताना चाहिए कि आज के सरकारी कार्यक्रमों में और समाजवादी कार्यक्रमों में क्या अन्तर है। उनका यह दृढ़ मत था कि समाजवादी पार्टी तभी फलफूल सकती है जब वह अपने अलग कार्यक्रमों के मुद्दों पर अपना संगठन करेंगी। लेकिन उनकी यह बातें उस समय गंभीरता से नहीं सुनी जाती थीं।

इसी से खीझ कर डॉ. लोहिया ने कहा था कि हमारे समाजवाद का संस्कार इतना भ्रष्ट हो चुका है कि वह कांग्रेस से टूटने के बाद भी अपना चरित्र कांग्रेस समाजवादी दल के समान ही बनाये रखना चाहता है।

डॉ. लोहिया की इस कटु आलोचना के कारण समाजवादी आन्दोलन के सारे नेता अपने-अपने मन में खीझे हुए थे। सब डॉ. लोहिया की इन तेज बातों में निहित सत्य से परिचित थे। ये सब जानते थे कि लोहिया की बातों में कितनी गहराई और सच्चाई है। लेकिन यह भी जानते थे कि डॉ. लोहिया के बताये मार्ग पर चलना कितना कठिन है। एक नये संस्कार के रूप में समाजवादी पार्टी को खड़ा करने में जोखिम उठाने के लिए वह तैयार नहीं थे। उनका यह अनुमान था कि इतिहास क्रम में, जिस दौर से वे गुजर रहे हैं, उसमें नितान्त स्वतंत्र आन्दोलन खड़ा करना कठिन है। समाजवादी आन्दोलन को वह कांग्रेस और कांग्रेसी सरकार का पूरक बनाना चाहते थे। डॉ. लोहिया इस विचारधारा को लकवामार कहते थे।

डॉ. लोहिया का तत्वज्ञान, समाजवाद, दर्शनशास्त्र, धर्म, आध्यात्मिकता, सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक क्षेत्रों के बारे में विद्वतापूर्ण गंभीर चिंतन है। इसके माध्यम से इन्होंने जिन अवधारणाओं का विकास किया है वह रचनात्मक एवं परिणामप्रद है, इसलिए प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में तुलनात्मक, विश्लेषणात्मक एवं वैज्ञानिक प्रणाली द्वारा डॉ. लोहिया के समग्र राजनीतिक चिंतन, समाजवादी आंदोलन, विचारधारा एवं कार्यक्रम की प्रासंगिकता एवं सार्थकता का सामयिक सन्दर्भ में अध्ययन करने का प्रयास किया है। साथ ही डॉ. लोहिया के उत्कृष्ट योगदान का निष्पक्षता से मूल्यांकन का भी प्रयास किया गया है।

आधुनिक भारतीय राजनीति में बदलते स्वरूप के सन्दर्भ में उनके वैचारिक एवं रचनात्मक योगदान का विशिष्ट स्थान है। भारतीय प्रजातन्त्र में उभरते हुए दोषों के निराकरण में आज भी उनके मौलिक चिन्तन की विशेष प्रासंगिकता है।

डॉ. लोहिया ने अपने मौलिक दूरदर्शी तथा यर्थाथवादी चिन्तन के द्वारा स्वतन्त्र भारत के लिए एक सुदृढ़ अनुशासनबद्ध प्रजातंत्रीय पद्धति की अनुशंसा की एवं सशक्त अर्थव्यवस्था के लिए समाजवाद को ही एक मात्र आधार माना।

अतः प्रस्तुत शोध, सामाजिक, दार्शनिक, अर्थशास्त्री, समाजवादी आन्दोलन के प्रणेता एवं राजनीतिक चिंतक डॉ. लोहिया के समग्र दर्शन को समाविष्ट करने की दिशा में एक छोटा प्रयास है, जिसका सर्वोपरि लक्ष्य श्रेयस्कर मानवीय सभ्यता के निर्माण के परिप्रेक्ष्य में उनके दर्शन एवं समाजवादी आन्दोलन के महत्व एवं औचित्य का विश्लेषण करना है।

मेरे द्वारा सम्पन्न शोध प्रबंध "डॉ. राममनोहर लोहिया एवं समाजवादी आन्दोलन : राजनैतिक नेतृत्व में एक विश्लेषण (1946-64)" निर्धारित रूपरेखा के अनुसार आठ अध्यायों में विभाजित कर प्रत्येक अध्याय को उसके अर्थ विस्तार सीमा तथा औचित्य रूप में प्रस्तुत किया गया है। प्रत्येक अध्याय अपने में पूर्ण, स्वतंत्र तथा निजी महत्व रखता है। प्रत्येक अध्याय विभिन्न भागों में विभाजित है, जो परस्पर पूरक रूप से जुड़ता हुआ अगले अध्याय की पृष्ठभूमि प्रस्तुत करता है।

प्रथम अध्याय– में डॉ. राममनोहर लोहिया के व्यक्तित्व एवं विचारधारा पर प्रकाश डाला गया है।

द्वितीय अध्याय– में भारत में समाजवाद और समाजवादी राजनीति, समाजवाद का अभिप्राय, स्वतंत्रता पूर्व समाजवाद, स्वतंत्र भारत में समाजवाद और आधुनिक भारत में समाजवाद के व्यावहारिक एवं सैद्धान्तिक रूप का वर्णन किया गया है।

तृतीय अध्याय– में डॉ. लोहिया के राजनीतिक विचार तथा भारतीय समाज का वर्णन किया गया है जिसमें प्रमुख हैं-धर्म और राजनीति, राजनीति और जनशक्ति, राजनीतिक व्यवस्था और संस्थान, स्वतंत्रता व समानता, राजनीति में ग्रामीण व स्त्री, जातीय राजनीति, भारतीय समाज की दशा और दिशा आदि।

चतुर्थ अध्याय– में डॉ. लोहिया की लोकसभा में प्रभावी भूमिका का वर्णन किया गया है, लोहिया की समाजवादी पार्टी का चुनाव घोषणा पत्र, लोहिया समाजवादी पार्टी की संसदीय दल की नीतियों एवं लोकसभा में लोहिया के प्रवेश के बाद लोकसभा की स्थिति का वर्णन किया गया है।

पंचम् अध्याय– में डॉ. लोहिया की गाँधी और मार्क्स से तुलना करने का प्रयास किया गया है। गांधी के समाजवाद और मार्क्स के समाजवाद के साथ ही डॉ. लोहिया

के समाजवादी चिन्तन का वर्णन किया गया है।

षष्ठम् अध्याय– में डॉ. लोहिया की समाजवादी आन्दोलन में भूमिका, भारत में समाजवादी आन्दोलन का प्रारम्भ व विकास, भारतीय राजनीति में 1946 से समाजवादी आन्दोलन का राजनैतिक नेतृत्व में विश्लेषण किया गया है।

सप्तम् अध्याय– में वर्तमान भारतीय राजनीति में डॉ. लोहिया के समाजवादी आन्दोलन की प्रासंगिकता, आधुनिक राजनीति में समाजवादी चिन्तन की वर्तमान स्थिति, एवं लोहिया के चिन्तन की प्रासंगिकता का वर्णन किया गया है।

अष्ठम् अध्याय–में शोध प्रबंध का उपसंहार प्रस्तुत किया गया है जो प्रकृत शोध के निष्कर्षों को प्रतिपादित करता है।

शोधार्थी

(अरविन्द सिंह यादव)

अध्याय-एक

डॉ. राममनोहर लोहिया : व्यक्तित्व एवं विचारधारा

1
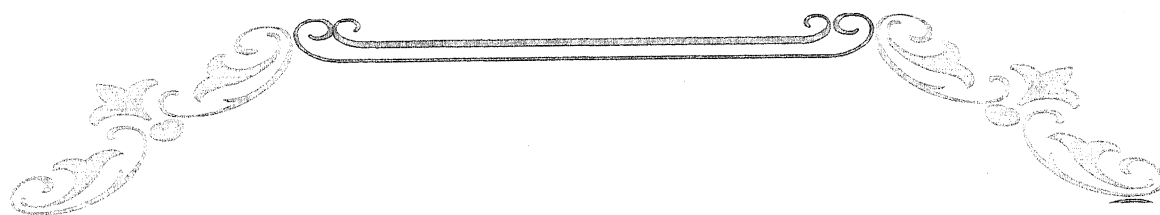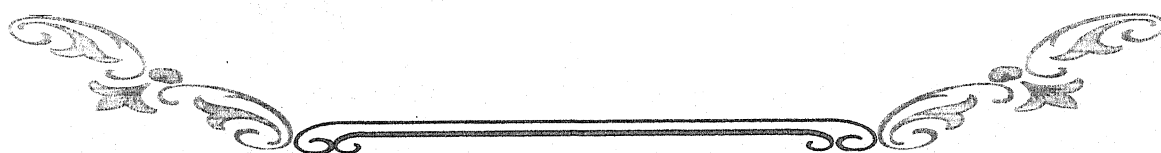
डॉ. राममनोहर लोहिया व्यक्तित्व एवं विचारधारा

समाजवाद एक ऐसा सपना है जिसने बीसवीं सदी में दुनिया को सर्वाधिक आन्दोलित किया। अगली शताब्दी में भी दुनिया के अलग-अलग कोनों में अलग-अलग ढ़ंग से लोग इस लक्ष्य को हासिल करने के लिये जूझते रहेंगे, इसमें मुझे कोई शक नहीं है। जैसे ईश्वर की प्राप्ति के लिये अलग-अलग मार्ग खोजे और बनाये जाते रहे हैं वैसे ही विषमताओं का उन्मूलन करके समतापरक समाजव्यवस्था के निर्माण के लिये भी अलग-अलग ढ़ंग से प्रयोग किये गये हैं। लेकिन इन सबकी मूल प्रेरणा और लक्ष्य एक ही रहा। भारत के जन कवि संत तुलसीदास ने भी अपने रामचरित मानस में रामराज्य का जो खाका खींचा था उसमें भी विषमता की समाप्ति (रामप्रताप विषमता खोई) केन्द्र बिन्दु है।

इस सदी के प्रारम्भ में जब दुनिया के अनेक देशों में साम्यवादी समाज रचना के अनेक प्रयोग हो रहे थे। भारत के स्वतंत्रता संग्राम में सक्रिय नौजवानों के एक समूह ने किसी एक अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्र से बंधकर समाजवाद का आयात करने के बजाय अपने देश की ही माटी और संस्कृति से एक नयी व्यवस्था की रचना के संघर्ष का सूत्रपात किया। इनमें जयप्रकाश नारायण, यूसुफ मेहरअली, अच्युत पटवर्धन, अशोक मेहता, मीनू मसानी, एन.जी. गोरे, आचार्य नरेन्द्र देव, सम्पूर्णानन्द, कमलादेवी चट्टोपाध्याय, डॉ. राममनोहर लोहिया और एस.एम. जोशी आदि भारतीय समाजवादी आन्दोलन के प्रमुख संस्थापक हैं।

डॉ. राममनोहर लोहिया इनमें से एक ऐसे समाजवादी चिंतक थे, जिन्होंने समाजवाद को नयी दिशा और दशा प्रदान की।

जीवन एक परिचय :

डॉ. राममनोहर लोहिया का जन्म 23 मार्च, 1910 को उत्तरप्रदेश के फैजाबाद जिले में अकबरपुर में हुआ था। उनके पिता हीरालाल लोहिया एक व्यापारी थे। मूलतः उनके पूर्वज उत्तरप्रदेश के मिर्जापुर के निवासी थे। लोहिया उपनाम उनके परिवार द्वारा पीढ़ियों से

लोहे के व्यापार करने के कारण पड़ा। राममनोहर लोहिया लगभग ढाई वर्ष के ही थे, तभी उनकी माँ चंदा का देहान्त हो गया था इसलिए उनका लालन-पालन उनकी दादी तथा चाची द्वारा किया गया। 'लोहिया के बाबा शिवनारायण पौत्र का सुख पाकर काफी प्रसन्नचित थे। वह शिशु राममनोहर के दीर्घायु की मन ही मन कामना करते और ईश्वर को सुमिरते।'[1]

लोहिया जब ढाई वर्ष के थे तभी उनकी माता चन्दा उन्हें लेकर शिवपुर मुण्डन कराने गई वहीं से वह लोहिया को लेकर मायके चली गयीं वहाँ से वापस आते ही अचानक बेटे की ममता त्यागकर स्वर्गवासी हो गयीं। अतः उनका लालन-पालन उनकी दादी तथा चाची द्वारा किया गया।

लोहिया के पिता हीरालाल कांग्रेस के कार्यों में अपना मन लगाने लगे और राष्ट्र सेवा का व्रत ले किया। बचपन में लोहिया को अपने परिवार में ऐसा वातावरण मिला जो जातीय साम्प्रदायिक भावनाओं से अछूता था। उनमें शुरू से देशभक्ति की प्रबल भावना थी जो उनके पिता हीरालाल की देन थी, जो एक सक्रिय कांग्रेसी थे तथा गाँधी के पक्के अनुयायी थे। बालक राममनोहर के मातृहीन होते ही पास-पड़ोस की सभी औरतों ने उनके लिए अपने स्नेह का आंचल फैला दिया। यों तो दादी की ममता ने उसे माँ की कमी कभी न होने दी। दादी के अलावा लोहिया के बचपन में एक और स्त्री ने उनके पालन में बड़ा सहयोग दिया। यह थीं सरयूदेई 'परिवार की नाईन' उसे राममनोहर से बड़ा स्नेह व लगाव था।

शिक्षा :

लोहिया की प्रारंभिक शिक्षा घर के पास टण्डन पाठशाला में हुई थी वहीं उनका नाम लिखा गया। अपनी कक्षा में सबसे छोटे छात्र राममनोहर अपनी बाल सुलभ शैतानियों के लिये जल्दी ही सभी के स्नेह के पात्र बन गये और स्कूल आना-जाना शुरू हो गया और उनका बाल सखाओं का एक झुण्ड तैयार हो गया। चौथी कक्षा तक लोहिया की पढ़ाई टण्डन पाठशाला में हुई पांचवी कक्षा में विश्वेश्वरनाथ हाईस्कूल में दाखिल हुए।

---

1. कृष्णनंदन ठाकुर- **डॉ. राममनोहर लोहिया के आर्थिक राजनीतिक एवं सामाजिक विचार**, पृष्ठ 1.

राष्ट्रीयता की भावना परिवार में पहले से ही थी जो पिता से ही पुत्र को मिली। देश की संस्कृति और पुरातन इतिहास के प्रति बच्चे का प्रेम बढ़ाने के लिए हीरालाल ने उसे संस्कृत की शिक्षा भी दी। लेकिन कुछ दिन बाद हीरालाल का मन अकबरपुर से उचट गया। हीरालाल ने कांग्रेस का कार्य करना प्रारम्भ कर दिया था। 1918 में जब वे अहमदाबाद कांग्रेस अधिवेशन में भाग लेने गये तो बालक राममनोहर को भी साथ ले गये। वहाँ से वे बम्बई गये और वहीं जाकर काम-काज का सिलसिला जमाया।

अब लोहिया का नाम मुम्बई के मारवाड़ी विद्यालय में लिखाया गया। यहाँ लोहिया को शहरी वातावरण मिला पढ़ाई के विकास के साथ-साथ नटखट व शहरी स्वभाव को भी बढ़ावा मिला। पढ़ाई और शरारत के साथ ही उनमें एक और विशेषता थी जिनके प्रति अध्यापक बहुत आकृष्ट होते थे वह थी अंग्रेजी भाषा में रूचि और वाद-विवाद तथा उनके वृतत्व का अच्छा अभ्यास। 'मुम्बई के मारवाड़ी स्कूल में राममनोहर ने 1925 में मैट्रिक की परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास की।'[1]

उनकी इण्टरमीडिएट शिक्षा बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में शुरू हुई। 1927 में उन्होंने इण्टर की परीक्षा पास की और वह आगे पढ़ाई के लिए कलकत्ता चले गये। 1929 में कलकत्ता में विद्यासागर कालेज से बी.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण किया। 1929 में ही उच्च अध्ययन के लिये लन्दन गये लेकिन कुछ समय बाद बर्लिन चले गये। उन्होंने इंग्लैण्ड दो मुख्य कारणों से छोड़ा। पहला कारण यह था कि उन्हें यह विचार सहन नहीं था कि उन्हें उस देश में अध्ययन करना पड़ रहा है जिसने उनकी मातृभूमि को अपनी स्वतंत्रता से वंचित रखा है। दूसरा कारण था कि वे नये बर्लिन जो कि नये विचारों की भूमि थी की खोज करना चाहते थे। लन्दन से बर्लिन पहुँचकर लोहिया ने अर्थशास्त्र के प्रोफेसर बर्नर जामबर्ट के निर्देशन में शोध कार्य प्रारम्भ किया। प्रोफेसर जामबर्ट ने लोहिया से बहुत स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि वे अंग्रेजी भाषा के माध्यम से शोध कार्य नहीं करा सकते। लोहिया जर्मन भाषा नहीं जानते थे। सामान्यतः कोई भी व्यक्ति उस दशा में नये निर्देशक की तलाश करता किन्तु लोहिया ने पूरे संकल्प के साथ कुछ ही दिनों में जर्मन भाषा सीख ली और पुनः प्रोफेसर जामबर्ट के साथ काम करने गए। प्रोफेसर जामबर्ट यूरोप के माने हुए अर्थशास्त्री थे और उन्होंने गाँधी के 'नमक सत्याग्रह' पर लोहिया जी को शोध-प्रबंध लिखने को कहा।

---

1. ओंकार शरद-**लोहिया (जीवनी)**, पृष्ठ 35.

'सन् 1932 में बीस वर्ष की आयु में लोहिया जी ने अपना शोध-प्रबंध पूरा कर लिया और वह भी जर्मन भाषा में।'[1]

जर्मन शिक्षा का प्रभाव :

जर्मनी में उनका प्रवास बेकार नहीं गया। जर्मनी में उन्हें हिटलर एवं नाजियों के उदय, प्रजातीय वर्चस्व बनाये रखने में उनका विश्वास नाजियों को रोकने तथा उनमें निरंतर एवं लगातार युद्ध करने की जर्मन सोशल प्रवृत्ति एवं क्रिया, समाजवादी लक्ष्य प्राप्ति के प्रति साम्यवादियों की धोखाधड़ी, नाजी दल को अन्तर्राष्ट्रीय पूँजीपतियों का एकीकृत सहयोग तथा वैयक्तिक स्वतंत्रता का दमन इत्यादि को देखने के उन्हें कटु अनुभव प्राप्त हुए। 'मार्क्स एवं हीगल के मौलिक अध्ययन ने उनके सामाजिक एवं राजनीतिक विचारों को प्रभावित किया।'[2]

भारत में वापसी :

1933 में जब डॉ. लोहिया भारत आये और साथ में डाक्टरेट की डिग्री लेकर आये तो लोग समझते थे कि वह किसी छोटे-मोटे कालेज या यूनिवर्सिटी में प्रोफेसरी करेंगे। लेकिन लोहिया प्रोफेसरी करने के बजाए सीधे गाँधी के पास गये। यह निर्णय उन्होंने भारत में आकर नहीं लिया था। जर्मनी में ही वह प्रो. देसनार के पूँछने पर कि ''अब तुम भारत जाकर क्या करोगे ? उन्होंने कहा था ''प्रोफेसरी तो नहीं करूँगा।''[3] प्रो. देसनार इस दो टूक जबाव से आश्चर्य में पड़ गये।

जर्मनी से वापस आते हुए लोहिया जब जहाज से मद्रास में उतरे, तो उनके पास कुछ भी पैसा नहीं था किन्तु किसी से माँगना उनके स्वभाव में नहीं था इसलिए वे प्रसिद्ध समाचार पत्र ''हिन्दू'' के संपादक के पास गए और प्रस्ताव किया कि वे लेख लिखकर देना चाहते हैं। और उसी के पारिश्रमिक से उन्हें कलकत्ते अपने पिता के पास जाना है। ''हिन्दू'' के संपादक को यह प्रस्ताव अवश्य ही कौतूहलपूर्ण और रोचक होगा। और उन्होंने लोहिया को लेख लिखने को कहा विदेश पर अपने अनुभव और स्थितियों पर लोहिया ने जो लेख लिखकर संपादक को दिया उसे संपादक ने बहुत श्रेष्ठ और उच्चस्तरीय लेख माना उसी के पारिश्रमिक से लोहिया कलकत्ते गये। यह भी लोहिया का एक विशेष प्रकार का सत्याग्रह था। किसी से याचना न करके अपनी मेहनत के बल पर अपने लक्ष्य को प्राप्त करना।

1. रामकमल राय- **राममनोहर लोहिया : आचरण की भाषा,** पृष्ठ 30.
2. रामवीर सिंह-**डॉ. राममनोहर लोहिया व्यक्तित्व एवं कृतित्व,** पृष्ठ 5.
3. लक्ष्मीकांत वर्मा-**डॉ. राममनोहर लोहिया,** पृष्ठ 16.

राजनीति में प्रवेश :

विद्यालय के दिनों से ही राजनीति ने लोहिया को आकर्षित किया। भारतवर्ष में घटित हो रही राजनीतिक घटनाओं के विषय में एक विद्यार्थी के रूप में लोहिया केवल मूक दर्शक नहीं थे। विभिन्न अवसरों पर उन्होंने राष्ट्रीय आन्दोलन में सक्रिय रूप से भाग लिया। 1 अगस्त, 1920 में लोकमान्य तिलक की मृत्यु बम्बई में हो गई । लोहिया ने विद्यालय में पूर्ण हड़ताल को प्रेरित किया तथा वे अपने साथी विद्यार्थियों के जुलूस का नेतृत्व करते हुए उस स्थान तक ले गये जहाँ इस महान नेता का शव रखा गया था। उन्होंने इस महान नेता की मृत्यु को एक "महान मृत्यु" की संज्ञा दी।

1920 का वर्ष एक महत्वपूर्ण वर्ष था। भारतीय राजनीति में गाँधी जी का उदय हुआ था । गाँधी ने असहयोग करने का आह्वान किया। लोहिया ने विद्यालय छोड़ दिया तथा इस आन्दोलन में भाग लेना आरम्भ कर दिया। 1920 में हीरालाल जी अपने पुत्र राममनोहर को गाँधी के पास आर्शीवाद हेतु ले गये। गाँधी से यह पहला सम्पर्क उनके जीवन की महत्वपूर्ण घटनाओं में से एक घटना हो गयी।

डॉ. लोहिया की जवाहरलाल नेहरू से प्रथम भेंट 1921 में हुई थी। जब नेहरू फैजाबाद किसान आन्दोलन के सिलसिले में अकबरपुर आये थे। बहुत दिनों तक लोहिया उन्हें प्रेरणा के स्रोत के रूप में देखते रहे। वे नेहरू के गुणों के अधिक प्रशंसक थे, जिसके द्वारा वे वार्तालाप में सामने वाले पर प्रभाव डाल कर आपनी बात से सहमत कर लेते थे। लोहिया के शब्दों में – "मेरी पीढ़ी के लोगों के लिए गाँधी कल्पना थे, जवाहर कामना और सुभाष कर्म कल्पना सर्वदा दृष्टा रहेगी तथापि विस्तार में उसके कुछ अपने दोष थे, परन्तु उसकी कीर्ति में आशा करता हूँ कि समय के साथ चमकेगी कामना कड़वी हो गई और कर्म अपूर्ण रहा।"[1]

लोहिया को अपनी मातृभूमि के प्रति गहरा प्रेम था। 1926 में लोहिया ने अपने पिता के साथ गोहाटी में हुए कांग्रेस अधिवेशन में भाग लिया पंजाब से उनको एक प्रतिनिधि के रूप में इस अधिवेशन में भाग लेने का अवसर प्राप्त हुआ लेकिन उनकी आयु कम होने के कारण वे अधिवेशन में हुए विचार-विमर्श में भाग न ले सकें। 1928 में अपने

1. डॉ. राममनोहर लोहिया- **भारत विभाजन के अपराधी**, पृष्ठ 81.

कलकत्ता प्रवास के दौरान उन्होंने ऑल बंगाल स्टूडेन्टस फेडरेशन के अधिवेशन की अध्यक्षता की। उसी वर्ष उन्होंने साइमन कमीशन को बहिष्कृत करने के लिए युवकों को संगठित किया। 1928 में कलकत्ता में युवक सम्मेलन जवाहरलाल नेहरू के सभापत्वि में हुआ और लोहिया विषय निर्धारण जैसे महत्वपूर्ण विभाग के सदस्य बनें।

अपने विदेश प्रवास के दौरान उन्हें 'लीग ऑफ नेशन्स' नामक संगठन में प्रवेश मिला। भारत के प्रतिनिधि के रूप में 'लीग ऑफ नेशन्स' में भाग ले रहे बीकानेर के महाराजा ने यह कहकर कि अंग्रेजों के उदार शासनकाल में भारतवर्ष प्रगति कर रहा है। विश्व को दिग्भ्रमित किया। लोहिया अपने को राजनीति से अछूता नहीं रख सकें। लोहिया की प्रेरणा पर वहाँ पर अध्ययन कर रहे भारतीय विद्यार्थियों ने 'सेन्ट्रल यूरोप इण्डिया एसोसिएशन' नाम का संगठन बनाया। लोहिया इस संगठन के सचिव थे। भारतीय राजनीति में 'गाँधी - इरविन' समझौते के अवसर पर उन्होंने गाँधी के विचारों का पक्ष लिया तथा गाँधी की आलोचना करने वाले साम्यवादियों का विरोध किया।

1933 में जर्मनी से भारत लौटने के बाद लोहिया के विचार परिपक्व हो चुके थे। जर्मनी से वापिस आने के बाद उन्होंने अन्धभक्त होकर किसी के सिद्धांतों को स्वीकार नहीं किया। उनके दृष्टिकोण में परिवर्तन आया और राजनीतिक जीवन के प्रति उनकी दृष्टि गम्भीर हो गई थी। उनका दृष्टिकोण पहले की अपेक्षा बुद्धिनिष्ठ हो रहा था।

कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी :

21 अक्टूबर, 1934 को बम्बई में सोशलिस्ट पार्टी के स्थापना सम्मेलन में सारे देश के 150 प्रतिनिधियों ने भाग लिया। डॉ.लोहिया कार्यकारिणी के सदस्य चुने गये। कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी का एक साप्ताहिक पत्र कलकत्ता से प्रकाशित होने का फैसला हुआ। लोहिया सम्पादक चुने गये। उन्होंने पत्र के स्तर को ऊँचा उठाने का प्रयास किया, इससे उनकी सभी जगह प्रशंसा हुई। "लोहिया का कार्य व विचार पूर्ण रूप से राष्ट्रीय एवं समाजवादी ढ़ंग का था। उनकी यह मान्यता रही कि, किसी भी तरह भारत के लिए आजादी इन छोटी-मोटी बातों जैसे ग्रामीण उद्योग समिति द्वारा तो नहीं प्राप्त की जा सकती यही मेरे लेख की बात है।"[1]

---

1. डॉ. राममनोहर लोहिया- **मार्क्स, गांधी एण्ड सोशलिज्म**, पृष्ठ 44.

डॉ. लोहिया ने गाँधी के रचनात्मक कार्यों को ठुकराया था लेकिन बाद में उन्हें अपनी गलती का अहसास हुआ और उन्होंने रचनात्मक कार्यों का समर्थन किया। भारत वर्ष के राजनीतिक इतिहास में कांग्रेस समाजवादी दल का निर्माण एक बहुत ही बड़ी घटना है। इसने राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तरों पर प्रत्येक व्यक्ति के ध्यान को आकर्षित किया। लोहिया ने नेहरू को भी अपनी ओर आकर्षित कर लिया। 1936 में जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में इस दल की एक सभा लखनऊ में सम्पन्न हुई। यहाँ पर अखिल भारतीय कांग्रेस समिति के अन्तर्गत एक विदेशी विभाग को कार्यरत करने का निर्णय लिया गया। लोहिया इस विदेश विभाग के सचिव नियुक्त किये गये। लोहिया 1938 तक इस पद पर सम्मानपूर्वक बने रहे लेकिन उन्होंने इस पद से उस समय त्यागपत्र दे दिया जब कांग्रेस ने यह नया नियम बना दिया कि कांग्रेस समाजवादी दल की राष्ट्रीय कार्यकारिणी का सदस्य अखिल भारतीय कांग्रेस समिति के किसी विभागीय कार्यालय का सदस्य नहीं हो सकता। दो वर्ष के इस कम समय में लोहिया ने भारतवर्ष की विदेशी नीति की नींव रखने में महत्वपूर्ण कार्य किया। 'डॉ. लोहिया ने विदेशी विभाग के माध्यम से राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय महत्व की घटनाओं के साथ पूर्ण सम्बन्ध बनाये रखा। उन्होंने बहुत से महत्वपूर्ण लेख ''इण्डिया एण्ड चाइना'', ''फॉरेन पॉलिसी ऑफ इण्डिया'', ''प्लाउण्डरिंग बाइ फॉरेन कान्ट्रैक्टर्स'', ''वे ऑफ गवर्नमेण्ट सर्वेन्ट्स'', ''फाइट फार सिविल लिवर्टी'' इत्यादि लिखे।'[1]

1939 में यह स्पष्ट होने लगा था कि द्वितीय विश्व युद्ध सन्निकट है। फैजपुर कांग्रेस के अधिवेशन में सुभाषचन्द्र बोस कांग्रेस के अध्यक्ष निर्वाचित हुए थे। गाँधी चाहते थे कि पट्टाभि सीतारमैया कांग्रेस के अध्यक्ष बने। प्रायः सभी सोशलिस्ट पार्टी के सदस्यों ने सुभाष बाबू के पक्ष में मत दिया था। लोहिया तटस्थ थे। सुभाष बाबू की जीत को गाँधी ने अपनी पराजय स्वीकार किया। कांग्रेस में गम्भीर संकट उत्पन्न हो गया। गाँधी के प्रति अपनी निष्ठा प्रमाणित करने के लिए कांग्रेस वर्किंग कमेटी ने त्यागपत्र दे दिया। लोहिया यद्यपि सुभाष बाबू को सम्मान देते थे किन्तु वह मानते थे कि राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम गाँधी के अतिरिक्त कोई दूसरा नहीं चला सकता। इसलिए उनका झुकाव गाँधी के साथ था।

---

1. रामवीर सिंह- **डॉ. राममनोहर लोहिया व्यक्तित्व एवं कृतित्व**, पृष्ठ 07.

द्वितीय विश्व युद्ध एवं डॉ.राममनोहर लोहिया :

1939 में विश्व का राजनीतिक नक्शा बदल रहा था। यूरोप की समस्त बड़ी शक्तियाँ युद्ध की तैयारी कर रहीं थीं। इन अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं ने भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन को प्रभावित किया। इस समय बहस का यह मुद्दा बन गया था कि यदि युद्ध होता है तो अंहिसा पर आधारित लड़े जा रहे भारतवर्ष की स्वतंत्रता के आन्दोलन का भविष्य क्या होगा? युद्ध के विरूद्ध प्रचार लोहिया का प्रमुख कार्य हो गया। उनका यह मत था कि भारतवर्ष को किसी भी पक्ष की ओर से युद्ध में भाग नहीं लेना चाहिये बल्कि समस्त भारतवासियों को चाहिए कि वे ब्रिटिश साम्राज्यवाद की समाप्ति के लिए अपने आन्दोलन को और अधिक गहन रूप से चलायें।

डॉ. लोहिया जर्मन संघ तथा ब्रिटिश सम्राज्यवाद दोनों के ही विरूद्ध थे। वे पूँजीवाद, फासिज्म तथा साम्राज्यवाद तीनों को एक ही सिद्धान्त के विभिन्न भाग समझते थे। उन्होंने कहा "अपने को सत्ता में बनाये रखने के उद्देश्य से पूँजी पर आधिपत्य जमाने हेतु समूहों द्वारा किये गये प्रयासों ने घर के अन्दर फासिज्म तथा घर के बाहर साम्राज्यवादी होड़ों एवं संघर्षो को बढ़ाया है।"[1]

इसी समय महात्मा गाँधी ने स्पष्ट कर दिया कि महायुद्ध से हिदुस्तान का कोई भी ताल्लुक नहीं यदि हिदुस्तान जबरदस्ती युद्ध में खींचा जाएगा तो उसे बिट्रेन का विरोध करना पड़ेगा। डॉ. लोहिया को लगा कि भारत की आजादी की लड़ाई को नया और शक्तिशाली मोड़ देने का इतना अच्छा दूसरा अवसर शायद फिर न आवेगा। लोहिया ने देश को सावधान होने का संकेत दिया कि अब गफलत करना बेवकूफी होगी। उन्होंने एक चारसूत्री कार्यक्रम रखा -1- युद्ध भरती का विरोध, 2- देशी रियासतों में आन्दोलन, 3- ब्रिटिश माल जहाजों से माल उतारने व लादने से इन्कार करने वाले मजदूरों का संगठन, 4- युद्ध कर और युद्ध कर्ज को मंजूर न करना और अदा न करना।[2]

डॉ. लोहिया ने अपने इन विचारों का देशभर में घूम-घूम कर प्रचार किया। इन्हीं दिनों 1939 के मई महीने में दक्षिण कलकत्ता कांग्रेस द्वारा आयोजित एक सभा में लोहिया का भाषण हुआ। अंग्रेजी सरकार लोहिया के युद्ध-विरोधी भाषणों के कारण उन्हें गिरफ्तार

---

1. कांग्रेस सोशलिस्ट, **"दी कोलैब्स ऑफ इंटरनेशनल मोरेल्टी,"** बम्बई, वाल्यूम 3, पृष्ठ 148.
2. ओंकार शरद- लोहिया **(एक प्रमाणिक जीवनी)**, पृष्ठ 72.

करने का अवसर खोज ही रही थी। इस सभा के तत्काल बाद ही लोहिया गिरफ्तार किये गये। सरकार ने गिरफ्तारी का कारण बताया- लोहिया का कुछ दिनों पहले कलकत्ता विश्वविद्यालय में भाषण, जिसका विषय था- 'भारत और युद्ध'।

कलकत्ता ही अब तक लोहिया की कर्मभूमि थी। वहीं लोहिया पहली बार अंग्रेजी सरकार द्वारा 24 मई, 1939 को गिरफ्तार किये गये डॉ. लोहिया की इस गिरफ्तारी पर उस समय नवयुवकों में बड़ा असंतोष व रोष फैला। कलकत्ते में दूसरे दिन ही लोहिया की गिरफ्तारी के विरूद्ध एक बहुत बड़ा जुलूस निकला। सरकार इस समय किसी बड़े संघर्ष को दावत देना न चाहती थी। अतः गिरफ्तारी के दूसरे दिन ही उन्हें जमानत पर रिहा कर दिया गया और कलकत्ता के चीफ प्रेसीडेन्सी मजिस्ट्रेट के सामने मुकदमा चालू हुआ। लोहिया ने अपने मुकदमें की पैरवी व बहस स्वयं ही की। राजनीतिक मुकदमों की स्वयं बहस करके राजनीतिक सिद्धान्तों के आधार पर लड़ने की यह पद्धति लोहिया ने ही शुरू की। कई पेशियों के बाद अन्त में 14 अगस्त को मजिस्ट्रेट रणजीत गुप्ता, आई. सी. एस. ने लोहिया को रिहा कर दिया और लोहिया के कानून ज्ञान की प्रशंसा करते हुए यह भी कहा कि लोहिया यदि बैरिस्टर होते तो बहुत कामयाब होते।

इन्हीं दिनों विश्व-शान्ति-कांग्रेस को जवाहरलाल नेहरू ने कांग्रेस अध्यक्ष डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के नाम से इस आशय का एक तार भेजा था कि यदि भारत को आजादी दी जाए तो बदले में वह युद्ध में सहयोग देगा। लोहिया को लगा कि नेहरू यह राजनीतिक सौदेबाजी कर रहे हैं। 'लोहिया ने सदा ही राजनीति में संघर्ष का रास्ता अपनाया है। राजनीतिक सौदेबाजी वे कभी पसन्द नहीं करते थे।'[1]

भारतवर्ष के गवर्नर जनरल द्वारा भारत को एक युद्धरत राष्ट्र घोषित कर दिया गया। लोहिया जी एवं जवाहरलाल नेहरू तथा अन्य कांग्रेस जनों के मध्य मित्र देशों को सहायता प्रदान करने के विषय को लेकर वैचारिक भिन्नता हो गई। लोहिया के अनुसार ब्रिटिश साम्राज्यवाद से स्वतन्त्रता प्राप्त करने का यह बहुत अच्छा अवसर था। 11 मई, 1940 को सुल्तानपुर जिले में दोस्तपुर में दिये गये अपने उत्तेजक भाषण के कारण लोहिया को 7 जून, 1940 को गिरफ्तार किया गया। उन्हें प्रताड़ित किया गया तथा केन्द्रीय कारागार बरेली में दो वर्ष के लिए कारावास भोगने हेतु बाध्य किया गया। 4 दिसम्बर, 1941 को

1. ओंकार शरद- लोहिया **(एक प्रमाणिक जीवनी)**, पृष्ठ 73.

भारतवासियों को शान्त करने के उद्देश्य से ब्रिटिश सरकार ने लोहिया को अन्य नेताओं के साथ रिहा कर दिया। क्रिप्स को एक पहले से तैयार की गयी योजना के साथ भारतवर्ष भेजा गया। "दि मिस्ट्री ऑफ सर स्टैफार्ड क्रिप्स" नामक बुकलेट में लोहिया ने यह घोषणा की कि ब्रिटिश व्यक्ति अपने राज्य को अपनी इच्छा से स्वयं हस्तान्तरित नहीं करेगें।"[1] लोहिया ने क्रिप्स घोषणा सम्बन्धी अभिलेख को "भारतवर्ष के वाल्क नाइजेशन" के एक प्रयास के रूप में घोषित किया।

स्वाधीनता का अन्तिम संग्राम :

स्वाधीनता के अन्तिम संग्राम को छेड़ने के प्रश्न पर कांग्रेस में दुविधा थी। जब एक तरफ लोकतांत्रिक शक्तियाँ अर्थात् अंग्रेज तथा दूसरी तरफ फासिस्ट शक्तियाँ अर्थात् जर्मनी आमने सामने हों तो राष्ट्रीय स्वतन्त्रता संग्राम कहाँ तक उचित होगा? इसलिए इस प्रश्न पर कांग्रेस दुविधा में थी। कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी को कोई दुविधा नहीं थी। वह अंग्रेजों से भारत की मुक्ति का संग्राम छेड़ने को तैयार थी। अंततः संघर्ष छेड़ने का निर्णय महात्मा गाँधी ने ले लिया। परिणामतः 7 और 8 अगस्त 1942 को बम्बई में आयोजित कांग्रेस अधिवेशन में "अंग्रेज भारत छोड़ो" का प्रस्ताव पारित हुआ। 9 अगस्त को सूर्योदय से पूर्व ही गाँधी और अन्य नेता गिरफ्तार कर लिए गये। डॉ. लोहिया पुलिस को चकमा देकर भाग गये और भूमिगत हो गये। उन्होंने भूमिगत संघर्ष को संगठित करने पर बल दिया लेकिन जब वे भूमिगत कार्यो में संलग्न थे तब भी उनकी यह मान्यता रही कि निर्दोष व्यक्तियों की जाने न जाये। उनके ये विचार कि "ब्रिटिश शासन काल में भी मैने एक फर्क किया था कि संचार व्यवस्था को भंग करना एवं अन्य वस्तुओं एवं सामानों को नष्ट करने के कार्य कलाप को एक तरफ रखा था एवं दूसरी तरफ मनुष्यों की बर्बादी। 1942-43 में उन दिनों में भी जबकि हम लोग ब्रिटिश सरकार उलटने के लिए संघर्षरत थे यह सोचता था कि क्या हम कोई मालगाड़ी उलट रहे या अस्त्रों से भरी गाड़ी उलट रहे हैं। क्या हम अस्त्रों का मण्डल नष्ट कर रहे हैं या हम ट्रेनों को नष्ट कर रहे हैं जिन पर सेना ले जाई जा रही है, चाहे क्यों न वह ब्रिटिश सेना ही हो।"[2]

---

1. **दि मिस्ट्री ऑफ सर स्टैफोर्ड क्रिप्स**, पृष्ठ 11.
2. डॉ. राममनोहर लोहिया- **मार्क्स, गांधी एण्ड सोशलिज्म**, पृष्ठ 154.

डॉ. लोहिया के भूमिगत जीवन का अधिकांश समय कलकत्ता एवं बम्बई में बीता। डॉ. लोहिया के ही प्रयासों से कांग्रेस रेडियो का प्रसारण प्रारम्भ हुआ। बम्बई केन्द्र ने पूरे ९० दिन तक जनता को क्रांति का संदेश दिया तथा स्वाधीनता संग्राम के लिए लामबन्द किया। लोहिया, अरूणा आसफ अली एवं अच्युत पटवर्धन अत्यन्त कुशलता से कार्य का संचालन कर रहे थे जिस समय यह महासंग्राम प्रारम्भ हुआ जयप्रकाश नारायण जेल में थे। दीवाली के दिन अपने साथियों सहित वह जेल से फरार हो गये। इस घटना से सम्पूर्ण देश रोमांचित था। जयप्रकाश नारायण ने नेपाल की सीमा पर छापेमार दस्तों को संगठित किया। लोहिया एवं जयप्रकाश ने एक साथ छापामार दस्तों के शिविर का संचालन प्रारम्भ किया, लोहिया, जयप्रकाश नारायण सहित अन्य पाँच नेताओं को अंग्रेज सरकार के आदेश पर गिरफ्तार कर नेपाल की हनुमान नगर पुलिस हवालात में बन्द कर दिया। किन्तु क्रांतिकारी संगठन और आजाद दस्तों ने छापा मार कर दोनों नेताओं को मुक्त करा लिया। इस घटना से अंग्रेज सरकार स्तब्ध थी। लोहिया को 10 मई, 1944 में 21 महीने बाद गिरफ्तार किया गया। एक महीने बम्बई में तनहाई में रखने के बाद लाहौर फोर्ट जेल में ले जाया गया। लाहौर फोर्ट जेल खतरनाक कैदियों के लिए प्रसिद्ध थी। वहाँ अमानवीय यातनाऐं दी जाती थीं। लोहिया को कई रात सोने नहीं दिया गया। इसी जेल में जयप्रकाश नारायण भी थे। किन्तु दोनों को एक दूसरे का पता नहीं था। उन्हें भी अमानवीय यातनाऐं दी जा रही थीं। चार महीने की इस यंत्रणा काल में दस दिन तक लोहिया को सोने नहीं दिया गया। उनकी नाक से रक्तस्राव होने लगा। 6 महीने बाद लोहिया को आगरा जेल भेजा गया।

1945 में मित्र राष्ट्रों की विजय के साथ यूरोप में युद्ध समाप्त हो गया। इंग्लैण्ड में चुनाव हुए और चर्चिल की कंजरवेटिव पार्टी को पराजित कर लेबर पार्टी सत्ता में आई। 11 अप्रैल, 1946 को लोहिया और जयप्रकाश नारायण को रिहा कर दिया गया। गाँधी और अन्य राष्ट्रीय नेता पूर्व में ही 1944-45 में रिहा हो चुके थे। इन्हीं दिनों कैबिनेट मिशन भारत आया और भारत को पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान करने के विषय में गम्भीर चर्चायें आरम्भ हुई। इस मिशन के असफल होने की स्थिति में उन्होंने भारतवासियों को एक लम्बी लड़ाई लड़ने हेतु आगाह किया।

गोवा आन्दोलन :

10 जून 1946 को अपने गोवा निवासी मित्र श्री जूलियस मेनेजेस के कहने पर कुछ आराम करने के उद्‌देश्य से लोहिया गोवा आये। परन्तु गोवा आकर उन्हें यह देखकर अत्यन्त दुःख हुआ कि यहाँ पर नागरिक अधिकारों को दबाया गया था भय के शासन की स्थापना की गई थी। "18 जून को उन्होंने एक सभा में घोषणा की तथा भारतवासियों को यह बताया कि भारत वर्ष में ब्रिटिश शासन की समाप्ति के पश्चात् पुर्तगाली गोवा में नहीं रह सकते।"[1] गोवा में लोहिया को गिरफ्तार किया गया।

डॉ. लोहिया की गिरफ्तारी ने गोवा के आन्दोलन की कर्मभूमि बना दिया। गिरफ्तारी के विरोध में गोवावासियों ने प्रदर्शन किये और हड़तालें की गोवा में नागरिकों के लिए व्यापक जन-आन्दोलन प्रारम्भ हो गया, जिसे बलपूर्वक दबाने में सभी प्रयत्न असफल रहे। अंत में 21 जून को गोवा में पहली बार जनता को भाषण की स्वतंत्रता मिल गई। यह पूर्ण स्वतंत्रता के मार्ग में एक छोटा सा प्रारम्भिक कदम था। उन्हें 8 अक्टूबर, 1946 को गोवा की सीमा के बाहर छोड़ दिया गया। बाद में वे गाँधी की सलाह मानकर गोवा नहीं गये।

देश का विभाजन और डॉ. लोहिया :

कैबिनेट मिशन द्वारा हल खोजने में असफलता मुस्लिम लीग के सहयोग के बगैर अंतरिम सरकार का गठन मुस्लिम लीग द्वारा संविधान सभा का बहिष्कार प्रत्यक्ष कार्यवाही के आवाह्न के कारण भारत की स्थिति बिगड़ गई थी। बिहार, बंगाल तथा अन्य प्रदेशों में साम्प्रदायिक दंगे भड़क उठे। गोवा से लौटने के बाद गाँधी के साथ लोहिया ने भी कलकत्ता और नोआखाली में अपनी जान जोखिम में डालकर साम्प्रदायिक तनाव को दूर करने के लिए जुट गये।

राजनीतिक स्थिति दिन पर दिन बिगड़ती गई। 3 जून, 1947 को भारत के विभाजन पर विचार करने के लिए कांग्रेस कार्य समिति की बैठक बुलाई गई। बैठक में लोहिया और जयप्रकाश नारायण विशेष रूप से आमंत्रित थे। इस बैठक में गाँधी, लोहिया, जयप्रकाश नारायण और खान अब्दुल गफ्फार के अलावा किसी भी व्यक्ति ने विभाजन की

---

1. रामवीर सिंह- **डॉ. राममनोहर लोहिया व्यक्तित्व एवं कृतित्व,** पृष्ठ 9.

योजना कि विरूद्ध एक शब्द भी नहीं कहा। विभाजन के प्रस्ताव को नेहरू व पटेल ने गाँधी को बताये बगैर स्वीकार कर लिया था। डॉ. लोहिया के अनुसार-"जिन्हें इस बैठक में गाँधी ने उठाया था। शिकायत-सी करते हुए उन्होंने श्री नेहरू और सरदार पटेल से कहा कि विंभाजन को मान लेने के पहले उन लोगों ने उसकी खबर उन्हें नहीं दी। गाँधी के अपनी बात पूरी कर सकने के पहले श्री नेहरू ने कुछ आवेश में आकर उन्हें टोका और कहा कि उनकों वे पूरी तौर पर जानकारी देते रहे हैं।"[1]

डॉ. लोहिया ने देश के विभाजन का विरोध किया लेकिन जवाहरलाल नेहरू ने उनकी बात को महत्व प्रदान नहीं दिया। लोहिया के अनुसार-"अविभाजित हिन्दुस्तान की कामना की बात मामूली-सी बहस के बाद मान ली गई। और कोई बात नहीं मानी गई। वे लोग विभाजन की कीमत पर आजादी खरीदने की नियत बनाकर आये थे और मेरे जैसे आदमियों ने अस्पष्ट संकल्प से उनका प्रतिरोध करने की कोशिश की। श्री नेहरू ने मुझे भाषण और आचार दोनों में कूटनीति सिखाने की कोशिश जरूर की और मेरी कुछ बातों को इस आधार पर ठुकरा दिया कि वे अराजनयिक थी।"[2]

देश के विभाजन के तुरन्त बाद ही हिन्दू-मुस्लिम दंगे फूट पड़े। लाखों हिन्दू और मुसलमान कत्लेआम में मारे गए। इस हिंसा के तांडव को शान्त करने के उद्देश्य से महात्मा गाँधी ने नोआखाली का दौरा किया। लोहिया इस अवसर पर गाँधी के साथ थे। उन्होंने गाँधी की सहायता की तथा साम्प्रदायिक दंगे को शान्त कराने का प्रयत्न किया इसी उद्देश्य से महात्मा गाँधी ने आमरण अनशन किया तब जाकर स्थिति सामान्य हो पायी।

स्वतंत्र भारत में लोहिया -

स्वतंत्रोत्तर युग की भारतीय राजनीति में लोहिया ने धारा के विरूद्ध तैरना ही स्वीकार किया था। 30 जनवरी, 1948 को उन्हें गाँधी की हत्या से व्यक्तिगत रूप में गहरा आघात लगा था क्योंकि राष्ट्रीय आंदोलन के अंतिम दौर में और देश विभाजन की नृशंस घटनाओं के दौरान न सिर्फ राजनीतिक दृष्टि से बल्कि मानवीय दृष्टि से वे गाँधी के अधिक निकट आ गये थे। गाँधी की हत्या ने लोहिया को विचलित कर दिया तथा उन्होंने सम्पूर्ण भारत सरकार को गाँधी की रक्षा हेतु उचित व्यवस्था न किये जाने के लिए उत्तरदायी

---

1. डॉ. राममनोहर लोहिया- **भारत विभाजन के अपराधी,** पृष्ठ 12.
2. वही

ठहराया तथा इसकी भर्त्सना की।

मार्च 1948 में नासिक अधिवेशन में समाजवादियों ने कांग्रेस छोड़ने का निर्णय ले लिया। लोहिया ने सरकार की आलोचना यह कहकर की कि प्रजातंत्र के नाम पर बहुत से भारतीय रियासतों में क्रूरता एवं निरंकुशता का बोलबाला है। हैदराबाद के निजाम के कार्यकलाप एवं विन्ध्य प्रदेश की स्थिति बहुत खराब थी। 8 जनवरी, 1949 को लोहिया विन्ध्य प्रदेश गये और रीवा में उन्होंने अपने को गिरफ्तार करवाया।

1 मार्च, 1956 में लखनऊ में लोहिया ने किसानों के एक बड़े प्रदर्शन का नेतृत्व किया। 1957 के दूसरे आम चुनाव में उन्होने वाराणसी से लोकसभा का चुनाव लड़ा लेकिन कांग्रेस के उम्मीदवार त्रिभुवन नारायण सिंह से वे हार गये। 1963 के तीसरे आम चुनाव में लोहिया ने किसी सुरक्षित निर्वाचन क्षेत्र से लड़ने के बजाये फूलपुर (उ.प्र) से जवाहरलाल नेहरू के विरूद्ध चुनाव लड़ना पसंद किया। वे हारे अवश्य लेकिन कई केन्द्रों पर उनकी भारी जीत हुई, इस प्रकार लोहिया ने सिद्ध कर दिया कि नेहरू भी अजेय नहीं हैं। '1963 में लोहिया ने फरूखाबाद संसदीय क्षेत्र के उपचुनाव में कांग्रेस प्रत्याशी डॉ. किस्कर को 57,588 मतों से हराकर संसद में प्रवेश किया।'[1]

1964 में डॉ. लोहिया ने अपनी दूसरी विश्व यात्रा की। लगभग दो महीने की यात्रा में उन्होंने 16 देशों का दौरा किया। 28 मई, 1964 को मिसिसिपी (अमेरिका) राज्य के जैवसन नगर में लोहिया गए थे। स्थानीय नीग्रो कार्यकर्ताओं ने एक कैफेटेरिया में सभा का आयोजन किया था। उस कैफेटेरिया के गोरे मालिक ने सभा के लिए हामी भर दी थी। किन्तु सभा के लिए जैसे ही लोहिया वहाँ गए उसने मना कर दिया क्योंकि होटल केवल गोरे लोगों के लिए था। लोहिया के जाने की जिद पर उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। कुछ दूर ले जाकर उन्हें छोड़ दिया गया। इस घटना के लिए अमेरिका विदेश विभाग ने माफी मांगी। लोहिया ने स्पष्ट रूप से कहा "अमेरिका की त्रुटियों पर उंगली रखने का मेरा कोई इरादा नहीं था। ऐसा अन्याय विश्व भर में है अमेरिका में ही नहीं भारत में भी। मुझसे माफी मांगने का कोई औचित्य नहीं है। राष्ट्रपति जोन्सन को स्वाधीनता की देवी से माफी मांगनी चाहिए।"[2]

---

1. रामवीर सिंह- **डॉ. राममनोहर लोहिया व्यक्तित्व एवं कृतित्व**, पृष्ठ 10.
2. मुख्तार अनीस-**भारतीय समाजवाद के शिल्पी (प्रथम खण्ड)**, पृष्ठ 162.

1965 में भारत-पाक युद्ध शुरू हुआ। यह युद्ध भारत-चीन युद्ध से भिन्न था। इसका मामला केवल सैनिक युद्ध तक सीमित न था। इस युद्ध के कारण भारत में बसने वाले मुसलमानों की स्थिति बड़ी दयनीय हो गई थी। अठ्ारह वर्ष पूर्व के भारतीय मुसलमान अब पाकिस्तान के नागरिक थे। अठ्ारह वर्ष पूर्व के भाई-भाई हिन्दुस्तानी व पाकिस्तानी नाम से युद्ध में जूझे। ऐसी स्थिति में भारत में बसे मुसलमानों पर अपनी राष्ट्रीय नैतिकता प्रमाणित करने का दायित्व आ उपस्थित हुआ। भारत का हिन्दू भारत के मुसलमान पर शंका की नजर रखने लगा। तब लोहिया ने सारे भारत में घूम-घूम कर लोगों को आगाह किया कि भारत के प्रत्येक नागरिक का धर्म है कि वह भारत के मुसलमानों के प्रति पहले से अधिक भाईचारा का संबंध बनावें और उनका मन न टूटने दें। इसी समय लोहिया ने कहा था कि "हमें पाकिस्तान के प्रति चट्टान-सा कठोर और भारतीय मुसलमान के प्रति फूल सा कोमल होना पड़ेगा।"[1] वास्तव में इस समय लोहिया भारत के मुसलमानों के लिए एकमात्र आशा बने थे।

8 अगस्त, 1965 पटना बंद के उपलक्ष्य में एक विशाल सभा को सम्बोधित करते हुए लोहिया ने विधान-सभा के घेराव का आवह्वान किया। 9 अगस्त को ही लोहिया को भारत सुरक्षा अधिनियम के अन्तर्गत गिरफ्तार कर लिया गया। लोहिया ने अपनी इस गिरफ्तारी को अवैध बताते हुए संसद सदस्य के विशेषाधिकारों की अवेहलना बताई और भारत के सुप्रीम कोर्ट में अपील की। 1 सितम्बर, 1965 को सुप्रीम कोर्ट ने जिला मजिस्ट्रेट के नजरबंदी के आदेश को अवैध ठहराते हुए उन्हें मुक्त कर दिया।

इस बार कानूनी शिंकजे से छूटकर लोहिया सीधे दिल्ली के अपने निवास-7 गुरूद्वारा रकावगंज रोड वापस आये। देशभक्त लोहिया का भारत सुरक्षा कानून के अंतर्गत पकड़ा जाना उनके मन पर गहरी चोट थी । भारत सरकार द्वारा उनकी देशभक्ति को यों ललकारे जाने पर बुरी तरह क्षुब्ध थे। उन दिनों संसद की कार्यवाही चालू थी पर कोलाहल भरे संसद भवन की ओर उन्मुख न होकर, ऊपर से प्रसन्न पर भीतर से आहत लोहिया ने रिहाई का पहला दिन अपने शान्त कमरे में बिताना उचित समझा। उस दिन लोहिया ने पीड़ित वाणी में कहा था - "हिन्दुस्तान की सबसे बड़ी विधायिका हमारी संसद के मन में मेरे जैसे छोटे आदमी के लिए क्या इज्जत है, यह मैं जान चुका हूँ। कम से कम एक दिन तो मुझे यह बताने का हक है कि मेरे मन में संसद के लिए कितनी इज्जत रह गई है।"[2]

---

1. ओंकार शरद- **लोहिया (एक प्रमाणिक जीवनी)**, पृष्ठ 221.
2. वही

9 सितम्बर को लोहिया संसद गये। सदन में प्रवेश करने पर हर्षध्वनि द्वारा उनका स्वागत किया गया। इन्हीं दिनों लोहिया ने 'भारत-पाक-एका' का आन्दोलन भी चलाया। लोहिया की ऐसी कृतियाँ इतिहास बदलने वाली थीं, लेकिन भारत सरकार ने ऐसी कृतियों में कभी सहायता देने की बात तो दूर, उनके रास्ते में काँटे ही बिछाती रही।

11 जुलाई, 1966 को महँगाई, भ्रष्टाचार और जनता के दुखों को दूर करने में असमर्थ कांग्रेसी सरकार के प्रति विरोध प्रकट करने को संयुक्त समाजवादी पार्टी के आवाह्न पर 'उत्तर प्रदेश बंद' का आयोजन हुआ। 11 जुलाई को आगरा स्टेशन पर ही लोहिया को गिरफ्तार कर लिया गया। स्वतंत्रोत्तर भारत में संघर्षशील राजनीति के इस समूचे चरण में लोहिया को 18 बार जेल जाना पड़ा। इसी से उनके संघर्षशील राजनीति तथा विद्रोही व्यक्तित्व का संकेत मिलता है।

1967 के चौथे आम चुनाव में डॉ. लोहिया कन्नौज चुनाव क्षेत्र से जीतकर संसद में पहुंचे। वहाँ कांग्रेस के एकाधिकार को समाप्त करने के लिए लोहिया ने 'गैर कांग्रेसवाद' की रणनीति प्रतिपादित की और 'कांग्रेस हटाओ-देश बचाओ' का नारा दिया। इस रणनीति के परिणामस्वरूप उत्तरी भारत में कांग्रेस का एकाधिकार समाप्त हो गया तथा उत्तर-प्रदेश, मध्यप्रदेश, बिहार आदि प्रांतों में संयुक्त विधायक दल की सरकारें स्थापित हुईं।

संसद में डॉ. लोहिया ने सदैव शासक वर्ग में भृष्टाचार की समाप्ति के लिए कहा। उनके भाषणों में उनके राजनीतिक दर्शन का परिलक्षण होता था। उनकी सदैव सदन की कार्यवाही में रूकावट उत्पन्न करने की तथा अध्यक्ष की कुर्सी की अवहेलना करने वाले के रूप में आलोचना की जाती थी। यद्यपि उनकी आलोचनायें कांग्रेस और विपक्ष दोनों को कुढ़ाने वाली होती थीं लेकिन 'वे बहुत ही दयावान आत्मा थे क्योंकि वे तुरन्त उन व्यक्तियों के साथ मिलकर अच्छा व्यवहार करने लगते थे जिनकी उन्होंने आलोचना की थी।'[1]

---

1. रामवीर सिंह- **डॉ. राममनोहर लोहिया व्यक्तित्व एवं कृतित्व**, पृष्ठ 11.

डॉ. लोहिया पर गाँधी का प्रभाव

डॉ. लोहिया ने अपने को गाँधी के बहुत करीब महसूस किया था। गाँधी और लोहिया के रिश्ते सतही परिभाषाओं के बाहर थे। आयु का तो बहुत बड़ा अन्तर था ही, वैचारिक मानदण्डों और मुख्य दृष्टियों में भी पर्याप्त अन्तर था जहाँ गाँधी पूर्णतः धार्मिक ईश्वर-विश्वासी और तपोनिष्ठ जीवन जीने में विश्वास करते थे। किन्तु इन प्रतिकूलताओं के बावजूद लोहिया गाँधी के प्रति गहरी श्रद्धा रखते थे और गाँधी के प्रति एक अनन्य आत्मीयता का भाव। जब लोहिया गोवा में पुर्तगाली सरकार द्वारा बन्दी बनाये गये थे। तो गाँधी ने डॉ. सालाजार को लोहिया को छोड़ने के विषय में एक अद्‌भुत पत्र लिखा था। उन्होंने कहा था कि ''लोहिया भारत का शेर है और यह जब तक पुर्तगालियों के जेल में बन्द रहेगा मैं चैन की सांस नहीं लूंगा।''[1]

महात्मा गाँधी के उस पत्र के बाद पुर्तगाली सरकार को लोहिया को और कैद में रखना संभव नहीं रह सका। भारत की आजादी और विभाजन की त्रासदी के अनुभव से गुजरते हुए जब गाँधी ने पूर्वी बंगाल के नोवाखाली में जाकर साम्प्रदायिक उन्माद से ग्रस्त लोगों के बीच में काम करने का निर्णय लिया तो लोहिया ने उनसे अपने लिए निर्देश माँगा। गाँधी ने कहा यहीं हिन्दुस्तान में रूको और दिल्ली और कलकत्ते में अपने मुसलमान मित्रों से मिलते रहो। लोहिया ने अक्षरशः यही किया और साम्प्रदायिक पागलपन के तीखे दौर में कलकत्ते के खालिस मुस्लिम इलाके में अपने मित्र से मिलने चले गये।

जब डॉ. लोहिया को उनके मित्र के परिवार वालों ने देखा तो वे आश्चर्य से भर उठे। उन्हें विश्वास ही नहीं हो रहा था कि कोई धोती-कुर्ता वाला हिन्दू इस पागलपन के दौर में उनके मुहल्ले में आ सकता है। बात ही बात में सैकड़ों उन्मादग्रस्त मुसलमान उस घर को घेर लिए और काफिर को बाहर करने की मांग करने लगे। कितने प्रयास के पश्चात् डॉ. लोहिया को उनके मित्र बचा सके, इस घटना से स्पष्ट होता है कि गाँधी के शब्द को लोहिया ने कितना और कैसा अर्थ दिया।

गाँधी एवं लोहिया के बीच बहुत कुछ समान था। आन्तरिक मूल्यों की बात को ले तो लोहिया भी उतने ही सत्यनिष्ठ थे और अहिंसावादी भी, जितने गाँधी। यदि अन्तर था

---

1. रामकमल राय- **डॉ. राममनोहर लोहिया : आचरण की भाषा**, पृष्ठ 31.

तो केवल इतना कि गाँधी व्यक्तित्व की उस ऊँचाई पर खड़े थे जहाँ से वे सत्य एवं अहिंसा का आचरण करते हुए दूसरे का भी आवाहन कर सके कि वे सत्य और अहिंसा का आचरण करें। लोहिया अपने स्वयं के आचरण में पूरी तौर पर सत्य और अहिंसा का पालन करते थे।

डॉ. लोहिया अपने को उतना बड़ा नहीं मानते थे कि ऐसा करने के लिए औरो का आवाह्न कर सकें। यदि गाँधी सत्याग्रही थे तो लोहिया और बड़े सत्याग्रही थे। वे सत्त सत्याग्रह की बात करते थे। उन्होंने सत्याग्रह का एक दर्शन ही निर्मित किया था जहाँ किसी भी स्तर के अन्याय के विरूद्ध व्यक्तिगत या सामूहिक सत्याग्रह की अनिवार्यता को माना गया था। गाँधी ब्रह्मचर्य का आचरण करते थे और कम से कम अपने आश्रम में रहने वालों से उसके निर्वाह की अपेक्षा भी करते थे किन्तु आजीवन अविवाहित रहते हुए भी लोहिया ने ब्रह्मचर्य का कोई सिद्धान्त या व्यवहार नहीं स्वीकार किया था।

गाँधी की राजनीतिक और आर्थिक दृष्टि से लोहिया बहुत गहराई से सहमत और प्रभावित थे। सत्ता और अर्थ के विकेन्द्रीकरण के जिस सिद्धान्त का गाँधी ने प्रतिपादन किया था। लोहिया ने उसको एक ठोस वैचारिक स्वरूप प्रदान किया था। लोहिया की चौखम्भा राज्य की परिकल्पना अपनी मूल परिकल्पना में गाँधी के विचारों से ही निकली हुई चीज थी।

डॉ. लोहिया अपनी अटूट श्रद्धा के बावजूद गाँधी से आक्रांत नहीं थे। कांग्रेस के बड़े से बड़े नेता चाहे वे नेहरू हों, पटेल हों, मौलाना आजाद, गाँधी का विरोध करने में या उनसे अपना मतभेद व्यक्त करने में एक विशेष संभ्रम से पेश आते थे। किन्तु अपनी अत्यन्त छोटी आयु के बावजूद लोहिया, गाँधी से खुलकर बातें करते थे। मतभेद की गुंजाइस बहुत कम होती थी, किन्तु अगर होती थी तो उसे व्यक्त करने में लोहिया किसी संकोच का सहारा नहीं लेते थे। ''हिन्दुस्तान को आजादी मिलने और गाँधी की हत्या हो जाने बाद बड़े दुख के साथ अपने को कुजात गाँधीवादी कहते थे।''[1]

डॉ. लोहिया हंसकर कहा करते थे कि गाँधी की विरासत एक तो उन लोगों ने संभाली जो दिल्ली में शासन कर रहे हैं दूसरे उन लोगों ने जो बर्धा और पवनार के आश्रमों में बैठकर गाँधी के कुछ रचनात्मक कार्यक्रमों का संचालन करते हैं। वे बहुत खुलकर आचार्य विनोवा से अपने मतभेद को व्यक्त करते थे। और कहते थे कि गाँधी केवल प्रेम के उपासक

---

1. रामकमल राय- **डॉ. राममनोहर लोहिया : आचरण की भाषा**, पृष्ठ 33.

नहीं थे। प्रेम के साथ-साथ उनके पास अन्याय और उत्पीड़न के विरूद्ध तीव्र प्रतिरोध का भी तत्व था तेजस्वी प्रतिरोध की भावना को निकाल दिया जाय तो गाँधी का कितना हिस्सा शेष बचता है? गाँधी के व्यक्तित्व के इस पहलू को छोड़ देने के बाद विनोबा भावे लोहिया के लिए अधूरे और अनुपयोगी व्यक्ति रह गये थे। जबकि सभी जानते और मानते है कि विनोवा आचरण, विचार और अध्ययन सभी दृष्टियों से गाँधी के अन्यतम अनुयायियों में से थे।

डॉ. लोहिया की यही बौद्धिक असंगत्ता मानवीय रिश्तों के सम्बन्ध में एक असाधरण चीज थी। चाहे जवाहरलाल हों या जयप्रकाश, आचार्य नरेन्द्र देव हों या अशोक मेहता, अरूणा आसफ अली हों या इन्दिरा गाँधी लोहिया को जब लगता था कि विचार के धरातल पर व्यक्ति उनसे दूर चला गया है तो वे अपने सारे राग-बन्ध तोड़ लेते थें। 'केवल गाँधी ऐसे थे जिनसे लोहिया का कभी मोह भंग नहीं हुआ इतना ही नहीं जब गाँधी नहीं रहे तब ओर गहराई से लोहिया ने गाँधी को पकड़ा और उनका विकास किया।'[1]

लोहिया पर जवाहरलाल नेहरू का प्रभाव :

महात्मा गाँधी के बाद लोहिया की दृष्टि में दूसरे भारतीय नेता जवाहरलाल नेहरू ही थे जिनका आधा प्रभाव वे अपने ऊपर स्वीकार करते थे, किन्तु जवाहरलाल नेहरू से उनके रिश्ते एक रस नहीं रहे। असल में जवाहरलाल नेहरू के दो रूप लोहिया के लिए परस्पर विरोधी प्रभाव वाले थे। वे जवाहरलाल जिन्होंने आजादी की लड़ाई में गाँधी के कंधे से कंधा मिला कर देश के जन-जन को जगाया और वे जवाहरलाल जो हिन्दुस्तान के बँटवारे का प्रस्ताव पास कराकर के देश के प्रधानमंत्री बने और आधुनिकता के नाम पर विलासिता की सभ्यता और संस्कृति के पोषक बने। लोहिया को ये दोनों परस्पर विरोधी लगे। आजादी मिलने के पहले के जवाहरलाल नेहरू लोहिया के प्रेरक पुरूष थे, किन्तु प्रधानमंत्री के रूप में जवाहरलाल नेहरू ने जिन नीतियों का अपने देश में सूत्रपात किया, लोहिया उसके सर्वथा विरोध में खड़े रहे।

जवाहरलाल नेहरू ने स्वतंत्र भारत को यूरोप और अमेरिका के चरण चिन्हों पर चलाने की कोशिश की। केन्द्रीय और बड़े उद्योगों के सिलसिले शुरू किये, जबकि लोहिया

---

1. रामकमल राय- **डॉ. राममनोहर लोहिया : आचरण की भाषा**, पृष्ठ 34.

विकेन्द्रित और छोटे उद्योगों के रास्ते से भारत का आर्थिक पुनर्निर्माण चाहते थे। भारत जैसे सघन जनसंख्या वाले देश में बड़े यंत्र केवल अधिक से अधिक लोगों को बेरोजगार करने के साधन थे। गाँधी ने इसे अच्छी तरह से समझा था और लोहिया, गाँधी की उसी दृष्टि का आधुनिक विकास करना चाहते थे। लोहिया ने जहाँ एक ओर गाँधी की मूल भावना को पूर्ण रूप से स्वीकार किया था, वही वे आधुनिकतम विज्ञान का भी उसमें समावेश करना चाहते थे। वे चाहते थे कि छोटे-छोटे उद्योगों को बिजली की ताकत से चलाया जाये, इन्सान का हाथ और विधुत की शक्ति का एक अद्भुत समन्वय लोहिया ने प्रस्तुत किया।

डॉ. लोहिया का निश्चित विचार था कि भारत जैसे देश में बड़ा और केन्द्रीय उद्योग केवल वहीं किया जाय जहाँ वे सर्वथा अनिवार्य हों। उनकी इस दिशा में निश्चित विचारधारा थी। वे चाहते थे कि पहले उत्पादन के क्षेत्र में देश को आधुनिक बनाया जाय, इस्पात और बिजली जैसी आधारभूत सम्पदा का अधिकतम उत्पादन हो ले, इसके पश्चात् आत्मनिर्भरता की स्वस्थ जमीन पर देश को विलासिता की सामग्रियों की ओर मोड़ा जाय। किन्तु जवाहरलाल नेहरू ने खपत और उत्पादन दोनों ही क्षेत्रों में आधुनिकता पर बल दिया। परिणाम यह हुआ कि पूरे देश में विलासिता की राक्षसी भूख पैदा हो गयी और बेरोजगारी की समस्या हमेशा-हमेशा के लिए असाध्य हो गयी। लोहिया की दृष्टि में जवाहरलाल नेहरू के प्रति गहरे सम्मान की भावना रखते हुए भी लोहिया ने प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू का सतत् विरोध किया।

लोहिया जवाहरलाल नेहरू को एक छद्म आधुनिकतावादी और यूरोप का विशेषकर इंग्लैण्ड का पिछलग्गू मानते थे। लोहिया की दृष्टि में जवाहरलाल नेहरू वेशभूषा से तो कभी भारतीय दिखते थे किन्तु मन से अंग्रेजियत की छाप उनमें इतनी गहरी थी कि उसे एक प्रकार की दासता भी माना जा सकता है। जवाहरलाल नेहरू से अपने को पूरी तौर पर अलग करने में लोहिया को एक गहरी यातना से गुजरना पड़ा था। वे जवाहरलाल नेहरू का मूल्यांकन करते हुए कहते है कि उनमें चरित्र की बहुत बड़ी खूबी उनकी संवेदनशीलता थी।

अन्याय का प्रतिकार :

अन्याय के प्रति अकेले खड़े होने का साहस लोहिया में अंतिम सांस तक था। लेकिन जब वह छोटे थे और अकबरपुर के छोटे से मदरसे में पढ़ते थे तब भी उनमें यह अभूतपूर्व साहस था। एक दिन जब वह अपने स्कूल पढ़ने जा रहे थे तो देखा कि रास्ते में एक काफी बड़ी उम्र वाला आदमी एक बहुत ही छोटी उम्र वाले बच्चें को बड़ी बेहरमी के साथ पीट रहा है। लोहिया से बर्दाशत नहीं हुआ। उन्होंने अपने से दूने तिगुने उम्र वाले का हाथ पकड़ लिया। उस व्यक्ति को मारना बन्द करना पड़ा। बाद में लोगों ने लोहिया से पूछा वह अपराधी संस्कारों वाला आदमी तुम्हें पीटना शुरू कर देता तो तुम क्या करते, लोहिया ने कहा "तब की तब देखी जाती। उस समय तो उसको रोकना ही था।"[1]

डॉ. लोहिया में जहाँ अन्याय के खिलाफ विरोध करने का अदम्य साहस था वहीं अपनी गलतियों का एहसास होने पर क्षमा माँगने में भी उन्हें तनिक संकोच या डर नहीं लगता था। बहुत से लोग डॉ. लोहिया को बड़ा जिद्दी व्यक्ति मानते थे। लेकिन डॉ. लेहिया जिद्दी नहीं थे, वह तत्काल हर प्रकार के अन्याय के विरूद्ध संघर्ष करने वाले व्यक्ति थे।

डॉ. लोहिया का मानना था कि "अन्याय में देशी और विदेशी का भेद करना एक प्रकार की गूढ़ता है। अन्याय का सत्त प्रतिकार होना चाहिए।"[2] इसलिए लोहिया भारतीय इतिहास के प्रहलाद और द्रोपदी जैसे चरित्रों को रेखांकित करते रहते थे। प्रहलाद ने अपने पिता के ही अत्याचार को नहीं सहन किया और मान्यता पर अन्त तक दृढ़ रहें। इसी प्रकार द्रोपदी भी अपने ही परिवार वालों के अन्याय के सामने घुटने टेक कर खड़ी हो गयी।

सत्याग्रह का समर्थन :

डॉ. लोहिया गाँधीवादी विचार और दर्शन से गहरे रूप में प्रभावित थे और 'गाँधी की जिस बात से वे सर्वाधिक प्रभावित थे वह थी सत्याग्रह और सविनय अवज्ञा की पद्धति।'[3] इस प्रसंग में गाँधी के सत्य के सबसे आग्रही लोहिया ही थे, जिन्होंने अनेक बार बिल्कुल अकेला रहकर समस्त निहित स्वार्थ के विरूद्ध आवाज उठाई। लोहिया ने अपने प्रखर व्यक्तित्व और चिंतन से गाँधी के सत्याग्रह को न केवल सही अर्थ में ग्रहण किया है

---

1. लक्ष्मीकांत वर्मा- **डॉ. राममनोहर लोहिया**, पृष्ठ 14.
2. वही, पृष्ठ 15.
3. पुखराज जैन-**राजनीति विज्ञान**, पृष्ठ 232.

वरन उसे नए सन्दर्भों में प्रयुक्त करने की क्षमता और प्रतिभा का परिचय दिया है। लोहिया का लोकतांत्रिक प्रक्रिया में विश्वास था लेकिन वे इस बात से भी परिचित थे कि मतदान की प्रक्रिया पर्याप्त जटिल, अधिक व्यय वाली प्रतीक्षा साध्य होती है। मतदान के अवसर पर अनेक ऐसे तत्व और तथ्य भी कार्य करते हैं। जिन पर शक्ति और साधन सम्पन्न व्यक्तियों का अधिकार रहता है। अतः अनेक बार मतदान परिणाम जनता की इच्छा को सही रूप में व्यक्त नहीं करते। अतः न्याय की प्राप्ति के लिए मतदान के स्थान पर सत्याग्रह जैसे साधनों, को अपनाना आवश्यक हो जाता है। लोहिया सत्याग्रह जैसे प्रत्यक्ष कार्यवाही का इस आधार पर समर्थन करते हैं कि लोकतांत्रिक व्यवस्था अनेक बार शक्तिशालियों और साधन सम्पन्नों से नियन्त्रित हो जाती है।

अनेक बार अन्याय और अत्याचार के विरूद्ध तत्काल कुछ करने की आवश्यकता होती है और तत्काल तो सत्याग्रह और सविनय अवज्ञा जैसी 'प्रत्यक्ष कार्यवाही' के आधार पर ही कुछ किया जा सकता है। इसी आधार पर लोहिया ने बलपूर्वक इस विचार का प्रतिपादन किया कि जनता को सत्याग्रह का अधिकार होना ही चाहिए। सत्याग्रह ही एक मात्र साधन है जिससे जनता में प्रजातांत्रिक चेतना विकसित की जा सकती है। अन्याय के विरूद्ध संघर्ष करने की उनकी क्षमता को संगठित किया जा सकता है तथा उनकी आशाओं और आकांक्षाओं को अभिव्यक्ति मिल सकती है। लोहिया का प्रसिद्ध वाक्य था, "जिन्दा कौमें पांच वर्ष तक प्रतीक्षा नहीं करती।"[1]

लोहिया ने आजाद हिन्दुस्तान में दर्जनों बार सत्याग्रह किया और जेल गये। सन् 57 में उन्हें उत्तरप्रदेश की जेल में कैद ही नहीं किया गया था बल्कि जबर्दस्ती उनका अंगूठा पकड़कर एक सादे कागज पर उनका निशान लिया गया था। उनके कई साथी जिनमें प्रो. कृष्णानाथ जैसे लोग थे जिनके बचाव में इन्होंने लाठियों और डंडों की बौछार को अपने ऊपर सह लिए थे किन्तु लोहिया की सत्याग्रही मुद्रा अपनी जगह ज्यों की त्यों बनी हुई थी। उन्होंने फरूखाबाद में जाकर बढ़े हुए नहर शुल्क के विरूद्ध सत्याग्रह किया। हजारों साथियों के साथ जेल में बंदी हुए और बाद में कानूनी लड़ाई लड़कर न केवल अपने और अपने साथियों को जेल से मुक्त कराया बल्कि उस कानून को भी रद्द करवाने में सफल हुए जिसके तहत उनको गिरफ्तार किया गया था। वे मणिपुर में जाकर लोकशाही की लड़ाई लड़ते हुए

1. पुखराज जैन-**राजनीति विज्ञान**, पृष्ठ 233.

गिरफ्तार हुए। उर्वशी में प्रवेश करते हुए सत्याग्रह में बंदी बनाये गये। बिहार और उत्तरप्रदेश की सरकारों द्वारा गिरफ्तार किये गये। इतना ही नहीं सुदूर अमेरिका में जाकर उन्होंने रंगभेद के विरूद्ध सत्याग्रह किया।

सत्याग्रह में लोहिया की आत्मा बसती थी। वे इसे मात्र एक राजनीतिक अस्त्र ही नहीं मानते थे। मानवीय चरित्र को अनुशासित करने तथा और अधिक मानवीय बनाने को इसे वे एक माध्यम मानते थे। इसीलिए जहाँ भी अन्याय और उत्पीड़न जरा भी सर उठाते लोहिया की मान्यता थी की तुरन्त उसके विरूद्ध प्रतिकार और सत्याग्रह किया जाना चाहिए।

डॉ. लोहिया का विचार था कि "मनुष्य जाति का इतिहास सौ साल गाय का होता है तो एक साल शेर का।"[1] मनुष्य लगातार अन्याय बर्दाशत करता है तो जब यह स्थिति अपनी पराकाष्ठा पर पहुँचती है तो वह इसका हिंसक प्रतिकार करता है। यह एक गलत प्रक्रिया है। होना यह चाहिए कि जिस समय छोटा से छोटा अन्याय किया जाय तत्काल उसके विरूद्ध प्रतिकार भी होना चाहिए।

नैतिकता और आध्यात्मिकता का समायोजन :

डॉ. लोहिया के अनुसार-"आध्यात्मिकता स्थायी है शाश्वत है लेकिन हर युग को, हर समाज को किसी हद तक हर व्यक्ति को अपनी नैतिकता की खोज स्वयं करनी पड़ती है।"[2] आध्यात्मिकता अर्थात जीवन का वह क्षेत्र जहाँ न केवल मनुष्य और मनुष्य के बीच पूर्ण समता है बल्कि सम्पूर्ण सृष्टि में एकता है, अद्धैत है, यानी करूणा या ममता या अंहिसा। मनुष्य को किसी भी स्थिति में मनुष्य की हत्या नहीं करनी चाहिए- लोहिया की दृष्टि में यह एक शाश्वत सिद्धान्त है। लेकिन लोहिया ने एक ही जगह अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में अंहिसा को फिलहाल स्थगित रखने की बात भी कही है। कई बार विशिष्ट परिस्थितियों में वे युद्ध का समर्थन करते प्रतीत होते हैं।

इसके विपरीत नैतिकता का अर्थ है मनुष्य और मनुष्य के सम्बंधों का नियमन। लोहिया की दृष्टि स्वीकृत या प्रतिष्ठित नियमों में परिवर्तन की कई जगह आमूल परिवर्तन की है। सच बोलना भी एक नैतिक नियम है। लोहिया ने कम से कम इसके नकारात्मक रूप

---

1. रामकमल राय- **डॉ. राममनोहर लोहिया : आचरण की भाषा**, पृष्ठ 43.
2. ओमप्रकाश दीपक- **लोहियाः असमाप्त जीवनी**, पृष्ठ 121.

को झूठ बोलना चाहिये शाश्वत सिद्धांत की सी प्रतिष्ठा दी। उन्होंने कहा कि जो सच है, उसे हर हालत में कह ही देना जरूरी नहीं, लेकिन यह जरूरी है कि जो कहा जाये वह सच हो। खुद अपने बारे में उन्होंने कहा कि होश आने के बाद मैंने जान बूझकर कभी झूठ नहीं बोला, अतिश्योक्ति का इस्तेमाल भले ही किया हो।

एक दृष्टि से, लोहिया के सारे जीवन का भी वही मूल सूत्र है - नैतिकता और आध्यात्मिकता को जोड़ा, यानि एक ऐसी नैतिकता की खोज जो आध्यात्मिकता के अनुरूप हो। इस खोज के सन्दर्भ में ही हम उस अंतर्विरोध को समझ सकते हैं, जो लोहिया के विचारों में दिखायी देता है।

मिशाल के लिए लोहिया ने इतिहास के इस तथ्य को देखा कि दुनिया का कोई भी देश इतनी बार विदेशियों द्वारा जीता नहीं गया, कोई राष्ट्र इतनी देर तक गुलाम नहीं रहा, जितना कि हिंदुस्तान। उपयुक्त नैतिक नियमों और मूल्यों के अभाव में भारतीय आध्यात्मिकता स्वयं अपनी भी रक्षा करने में असमर्थ थी। भारतीय चरित्र मारना ही नहीं, स्वेच्छा से मरना भी भूल गया था और मजबूरी की मौत को बिना विरोध स्वीकार करना उसने सीख लिया था।

डॉ. लोहिया के विचार के विविध पक्ष :

डॉ. लोहिया अनोखी प्रकृति के जन-नेता थे। वे सबसे अधिक भीड़ खींचते थे पर भीड़ को कभी वे पुचकारते न थे, बल्कि भीड़ से जूझते थे। ऐसा एक प्रसंग वाराणसी में उपस्थित हुआ था जब जनवरी, 1965 में वहाँ सयुक्त समाजवादी पार्टी का स्थापना सम्मेलन हुआ था। लोहिया की प्रेरणा से प्रजा सोशलिस्ट और सोशलिस्ट दलों का एका हुआ था। संयुक्त सोशलिस्ट दल बना था। वहीं डॉ. लोहिया के विरूद्ध नारे भी लगे थे। तब भी लोहिया ने कहा था- "संयुक्त समाजवादी दल का उद्देश्य कांग्रेस को केवल चुनाव में पराजित करना नहीं बल्कि उसे जड़ से ही खत्म कर देना है।"[1]

इस प्रकार के जिद्दी स्वभाव के लिए प्रसिद्ध लोहिया सिद्धान्त के साथ वक्ती तौर पर समझौता भी करते थे। अगस्त, 1965 'भारत रक्षा कानून' के अन्तर्गत गिरफ्तारी

1. ओंकार शरद- **लोहिया : एक प्रमाणिक जीवनी**, पृष्ठ 21.

के बाद जब लोहिया का मुकदमा सर्वोच्च न्यायालय में शुरू हुआ तो न्यायमूर्ति माधोलकर ने कहा था- 'यदि आप अंग्रेजी में अपनी बात कहें तो अच्छा होगा इससे हमें सुविधा होगी।' हिन्दी के कट्टर समर्थक लोहिया ने तब अदालत की इच्छा का सम्मान किया और कहा था- "मैनें यह शपथ ली थी कि मैं सार्वजनिक मामलों में हिन्दी में ही अपनी बात कहूँगा। अब अगर मैं अपने वायदे को तोड़ता हूँ तो यह अपने विश्वास को धोखा देना होगा, लेकिन क्या किया जाय? मैं आजाद नहीं हूँ। मैं बन्दी हूँ और मेरे आत्मनिर्णय की स्वाधीनता पर बेड़ियाँ पड़ी हैं।"[1] और तब लोहिया ने अंग्रेजी में ही अपने मुकदमें की खुद पैरवी की थी।

हिन्दी को जनभाषा-राष्ट्रभाषा के पद पर बिठाना और अंग्रेजी को देश से निकाल देना भी लोहिया का एक सपना था। भारत में अंग्रेजी- मोह को लोहिया ने 'पापमय जीवन' की संज्ञा दी है। डॉ. लोहिया ने 'अंग्रेजी हटाओं' आन्दोलन चलाया। एक हद तक अंग्रेजी गिरी भी पर हिन्दी अपने उच्चासन पर नहीं पहुँच पाई। इसी खीझ को व्यक्त करते हुए लोहिया ने कहा था-"हिन्दी के मामले में तो हम लगातार पीछे हटते रहे हैं। हम कभी-कभी इस बात पर खुशी मनाया करते हैं कि केरल-बंगाल-तमिलनाडू में आज इतने लोग हिन्दी सीख गए और कल उतने सीख लेगें, लेकिन इस सबके बाबजूद भी अंग्रेजी-मोह कितना बढ़ा है यह भी देखना है।"[2]

डॉ. लोहिया ने सारी दुनिया में हथियारों के खत्म हो जाने की कल्पना भी की थी। उनकी राय थी कि मनुष्य ने संहारक अस्त्रों का विकास उस हद तक कर लिया है जहाँ अधिक समय तक दोनों का सह-अस्तित्व संभव नहीं। या तो हथियार खत्म होंगे या फिर मनुष्य खत्म हो जायेगा। इस पृष्ठभूमि में देखे तो राज्य के गोली न चलाने से लेकर दुनिया में हथियारों की समाप्ति तक की बात एक सूत्र में जुड़ी है। भारत का अनैतिक या नीतिविहीन आध्यात्मिकता और पश्चिम की कलही नैतिकता, दोनों की परिणति करता और अन्याय में होती हैं। और इसलिए पश्चिम में आध्यात्मिकता की प्रतिष्ठा जितनी जरूरी है, भारत में नैतिकता की प्रतिष्ठा उतनी ही जरूरी है, खासतौर पर सच की यानी निर्गुण सत्य और सगुण सत्य में परस्पर संबंध की।

भारत विभाजन के नकली व बनावटी बँटवारे को मिटाना भी लोहिया की एक महान कल्पना थी। लोहिया ने कहा था- "मैं नकली और बनावटी विभाजन को मिटाना चाहता

1. ओंकार शरद- **लोहिया : एक प्रमाणिक जीवनी**, पृष्ठ 21.
2. वही, पृष्ठ 23.

हूँ। मेरी राय में भारत और पाकिस्तान की जनता में एक हो जाने की इच्छा पैदा करना ही शांति का अकेला रास्ता है। जब मैं भारत और पाकिस्तान महासंघ की बात करता हूँ तो कोई गलतफहमी नहीं होनी चाहियें, क्योंकि मैं यह भी कहता हूँ कि महासंघ के संविधान में राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री दो में से एक पद भारत और दूसरा पाकिस्तान के पास रहे। मैं इस नतीजे पर पहुँच गया हूँ कि दोनों देश जान बूझकर एक दूसरे को कोसते रहें और दोनों में कभी खुलकर लड़ाई करने की इच्छा नहीं रही है।''[1] डॉ. लोहिया लिखते हैं ''हिन्दूस्तान और पाकिस्तान तो एक ही धरती के अभी-अभी दो टुकड़ें हुए है। अगर दोनों देश के लोग थोड़ी सी विधा बुद्धि से काम करते चले गये तो दस-पाँच वर्षो में फिर से एक होकर रहेगें। मैं इस सपने को देखता हूँ कि हिन्दुस्तान और पाकिस्तान फिर किसी न किसी इकाई में बंधे।''[2]

यद्यपि लोहिया का जीवन अजेय योद्धा का जीवन था, पर तमाम अजेयता के बाद भी उन्होंने सारा जीवन बनवास जैसा ही काटा। ओहदा लेकर सत्ता सुन्दरी का आलिंगन कभी पसंद नहीं किया। अपनी अन्तिम बीमारी में भी अचेतावस्था में वे बड़बड़ाये थे - ''मैं आजीवन विरोधी दल का ही नेता रहूँगा।''[3]

डॉ. लोहिया की चिन्तन धारा कभी देश-काल की सीमा की बन्दी नहीं रही। विश्व की रचना और विकास के बारे में उनकी अनोखी व अद्वितीय दृष्टि थी। इसलिए उन्होंने सदा ही विश्व नागरिकता का सपना देखा था। वे मानव को किसी देश का नहीं बल्कि विश्व का नागरिक मानते थे। उनको चाह थी कि एक से दूसरे देश में आने-जाने के लिए किसी तरह की भी कानूनी रूकावट न हो और सम्पूर्ण पृथ्वी के किसी भी अंश को अपना मानकर कोई भी कहीं आ-जा सकने के लिए पूरी तरह आजाद हो।

डॉ. लोहिया में संतुलन और सम्मिलन का समावेश था। उनका एक आदर्श विश्व-संस्कृति की स्थापना का संकल्प था वे हृदय से भौतिक, भौगोलिक, राष्ट्रीय व राजकीय सीमाओं का बन्धन स्वीकार न करते थे। इसीलिए उन्होंने बिना पासपोर्ट के ही संसार में घूमने को योजना बनाई थी और बिना पासपोर्ट वर्मा घूम भी आये थे।

लोहिया गाँधी के सत्याग्रह और अहिंसा के अखण्ड समर्थक थे लेकिन गाँधीवाद को वे अधूरा दर्शन मानते थे वे समाजवादी थे, लेकिन मार्क्स को एकांगी मानते थे, वे

1. ओंकार शरद- **लोहिया : एक प्रमाणिक जीवनी**, पृष्ठ 22.
2. ओंकार शरद- **लोहिया के विचार**, पृष्ठ 268.
3. ओंकार शरद- **लोहिया : एक प्रमाणिक जीवनी**, पृष्ठ 24.

राष्ट्रवादी थे, लेकिन विश्व सरकार का सपना देखते थे, वे आधुनिकतम आधुनिक थे, लेकिन आधुनिक सभ्यता को बदलने का प्रयत्न करते रहते थे, वे विद्रोही तथा क्रांतिकारी थे, लेकिन शांति व अंहिसा के अनूठे उपासक थे।[1]

लोहिया की विचार पद्धति रचनात्मक है वे पूर्णता व समग्रता के लिए प्रयास करते थे। लोहिया ने लिखा है- "जैसे ही मनुष्य अपने प्रति सचेत होता है, चाहें जिस स्तर पर यह चेतना आये और पूर्ण से अपने अलगाव के प्रति संताप व दुख की भावना जागे, साथ ही अपने अस्तित्व के प्रति संतोष का अनुभव हो, तब यह विचार प्रक्रिया प्रारम्भ होती है, कि वह पूर्ण के साथ अपने को कैसे मिलाये, उसी समय उद्देश्य की खोज शुरू होती है।"[2]

डॉ. लोहिया को भारतीय संस्कृति से न केवल अगाध प्रेम था बल्कि देश की आत्मा को उन जैसा हृदयंगम करने का दूसरा उदाहरण न मिलेगा। समाजवाद की यूरोपीय सीमाओं और आध्यात्मिकता की राष्ट्रीय सीमाओं को तोड़ कर उन्होंने एक विश्व दृष्टि विकसित की। उनका विश्वास था कि पश्चिमी विज्ञान और भारतीय अध्यात्म का असली व सच्चा मेल तभी हो सकता है जब दोनों को इस प्रकार संशोधित किया जाय कि वे एक दूसरे के पूरक बनने में समर्थ हो सकें।

लोहिया को मनुष्य मात्र से प्यार था। कोई भी उनके स्नेह सीमा में आ सकता था। हाँ वे अपने आसपास भी आई.सी.एस. या ऐसे लोगों की उपस्थिति पसन्द न करते थे। उसकी यह नापसन्दगी नफरत के हद तक थी। वे कहा करते थे कि यही वर्ग भारत की चतुर्दिक प्रगति का बाधक है।

लोहिया भीड़ के नेता न थे। वे सिद्धान्तों के लिए अकसर साथियों को छोड़कर अकेले ही चलते थे। वे सिद्धान्त के लिए सब कुछ झेलते थे। सत्ताहीन होकर भी लाखों लोगों को ललकार कर उनकी नफरत झेल लेने की असाधारण सामर्थ्य लोहिया में थी। लोकप्रिय होकर भी लोकप्रियता को ठुकरा कर वे आगे बढ़ जाते थे, अक्सर ऐसे अवसर भी आयें हैं। लोहिया के साथ कोई चल न सकता था। लोग उनके पीछे ही चल सकते थे। अगर वे सबको साथ लेकर चल ही सकते तो साधारण नेता हो जाते। इसी सन्दर्भ में लोहिया ने

1. ओंकार शरद- **लोहिया के विचार**, पृष्ठ 10.
2. डॉ. लोहिया- **इतिहास चक्र**, पृष्ठ 11.

कहा था – "कई बार मैं बहुत ज्यादा समझौता करता हूँ। मेरा ख्याल है कि जिस दिशा में जाना है, जिस नीति को अपनाना है अगर वह सही है, तो लोग कालांतर में सुधर जायेंगें, नहीं तो सुधरे हुए लोग आयेंगे। इसलिए मैं 51 फीसदीं वाला आदमी हूँ।"[1]

विश्वनाथ प्रसाद वर्मा लिखते हैं कि लोहिया की विशेषता इस बात में थी कि "उन्होंने समाजवादी चिन्तन की समस्याओं को एशियाई दृष्टिकोण से देखने का प्रयत्न किया। वे कोरे पंथवादी नहीं थे। उन्होंने कर्म तथा चिंतन के द्वारा मनुष्य के व्यक्तित्व के विकास की समस्या को सदैव ध्यान में रखा। वे चाहते थे कि मनुष्य के सम्पूर्ण जीवन और स्वभाव को अभिव्यक्ति हो। वे इस पक्ष में नहीं थे के व्यक्तित्व के किसी एक विशिष्ट पहलू की एकांगी और सीमित वृद्धि हो।"[2]

डॉ. लोहिया 28 सितम्बर, 1967 को अपने पौरूष ग्रंथि के आपरेशन के लिए दिल्ली के विलिग्ंटन अस्पताल में भरती हुए और 12 अक्टूबर, 1967 को अपनी लीला-समाप्त कर मौन हो गये। मृत्यु के प्रति उनके मन में कोई भय या आक्रोश नहीं था। वह उसे सहज ही रूप में लेना चाहते थे पर जिस भयंकर पीड़ा और वेदना में उनकी मृत्यु हुई वह भी उनके निरन्तर संघर्षरत रहने वाले जीवन के अनुरूप थी वहाँ भी कभी-कभी होश में आने पर सक्रियता की हालत में वह अपने विचारों की ही व्याख्या करते रहे। जीवन की अन्तिम साँस तक संघर्षशील जीवन निरन्तर वैसा ही चलता रहा।

डॉ. लोहिया करोड़ों व्यक्तियों के लिए जिये तथा एक ईमानदार समाजवादी का जीवन व्यतीत किया। वे अपने पीछे कोई सम्पत्ति तथा परिवार नहीं छोड़ गये लेकिन अनुसरण योग्य विचारों को अवश्य छोड़ गये।

लोहिया एक फिजा थे, साथ ही एक अनोखी व गर्म फिजा के निर्माता भी। वह फिजा कैसी थी? सम्पूर्ण आजादी, समता, सम्पन्नता, अन्याय के विरूद्ध जेहाद और समाजवाद की फिजा। आज वह फिजा भी नहीं है, लोहिया भी नहीं हैं। लेकिन दूसरों के लिए जीने वाला कभी मरता नहीं। लोहिया आज भी अपने विचारों में जीवित हैं। लगन ओजस्विता और उग्रता-प्रखरता को जब तक गुण माना जायेगा, लोहिया के विचार अमर

---

1. ओंकार शरद- **लोहिया : एक प्रमाणिक जीवनी**, पृष्ठ 21.
2. विश्वनाथ प्रसाद वर्मा- **आधुनिक राजनीतिक चिंतन**, पृष्ठ 448.

रहेंगे। मूलतः लोहिया राजनीतिक विचारक, चिंतक और स्वप्नदृष्टा थे, लेकिन उनका चिंतन राजनीति तक ही कभी सीमित नहीं रहा। व्यापक दृष्टिकोण दूरदर्शिता उनकी चिंतन धारा की विशेषता थी। राजनीति के साथ-साथ संस्कृति दर्शन साहित्य भाषा आदि के बारे में भी उनके मौलिक विचार थे।

अध्याय–दो

भारत में समाजवाद और समाजवादी राजनीति

(अ) समाजवाद का अभिप्राय

(ब) स्वतंत्रता पूर्व समाजवाद

(स) स्वतंत्र भारत और समाजवाद

(द) आधुनिक भारत में समाजवाद

2

भारत में समाजवाद और समाजवादी राजनीति :

भारत में समाजवाद की राजनीति का आरम्भ तीसरे दशक के आंरभिक वर्षों में माना जाता है। जब दो सामान्तर विकास समाने आये। आल इंडिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस (एटक) का जन्म और आधुनिक ग्रुपों का उदय। समाजवादी राजनीति के ये अग्रदूत कदम-कदम पर ब्रिटिश शासन के दमन का शिकार हुए। उन पर पेशावर, कानपुर, मेरठ षड़यन्त्र केस जैसे मुकद्दमें चलाये गये। इन अखिल भारतीय मुकद्दमों ने पार्टी के ढाँचे को इस तरह तोड़कर रख दिया कि पूरे चार वर्षो (1929-33) तक पार्टी का कोई अखिल भारतीय केन्द्र था ही नहीं। स्थापना के समय से ही कम्युनिस्ट पार्टी अन्तर्राष्ट्रीय आन्दोलन से जुड़ी हुई थी। उस समय तृतीय इंटरनेशनल, पांचवी कांग्रेस (जुलाई 1924) में स्वीकृत नीतियों का अनुसरण कर रहा था। कांग्रेस सोशलिस्ट ग्रुपों के गठनकाल में कम्युनिस्ट पार्टी की नीति ऐसी थी कि राष्ट्रवादी सोशलिस्ट उनके साथ नहीं आ सकते थे। विदेशों के नकल की भावना रूस से मिलने वाली आर्थिक सहायता एवं एम.एन.राय का प्रभाव कम्युनिस्टों एवं सोशलिस्टों को एक मंच पर आने में बाधक था। इसके अतिरिक्त सन् 1928 में कोमिन्टर्न की छठीं कांग्रेस की स्वीकृत नीति के अनुसार- "सही दांव-पेंच स्वराजिस्टों और खासकर इनके नेताओं के असली राष्ट्रवादी-सुधारवादी चरित्र को जनता के बीच पर्दाफाश करना स्वराजिस्टों, गाँधीवादियों आदि के शांतिपूर्ण प्रतिरोध की शब्दावली का विरोध करना था।"[1] सोशलिस्टों की पृष्ठभूमि उनकी सोच और समस्याओं के प्रति नजरिया भिन्न था।

मई 1934 में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की स्थापना इन सब वजहों का परिणाम थी ही एक महत्वपूर्ण कारण यह भी था कि 1931 के 'नमक सत्याग्रह' और 1932-33 के सविनय अवज्ञा आन्दोलन का अन्त एक तरफ महात्मा गाँधी और राष्ट्रीय नेतृत्व के और दूसरी तरफ संसदीय कार्य तरफदारों के समझौतावाद में हुआ था। इस कारण गाँधीवादी विचारधारा, कार्यक्रम इंटरनेशनल व गाँधी से बंधकर कार्य करने की बजाय जुझारू लोगों ने देश की संस्कृति, सभ्यता और परिस्थितियों के अनुरूप व्यवस्था परिवर्तन के लिए नये ढंग के समाजवादी आन्दोलन का सूत्रपात किया। जिनमें डॉ. लोहिया, जय प्रकाश नारायण, युसुफ

1. डॉ. सुरेन्द्र प्रताप, श्यामा प्रसाद यादव- **डॉ. लोहिया, विरासत का सवाल,** पृष्ठ 13.

मेहरअली, अच्युत पटवधर्न और एम.एस.जोशी आदि के नाम प्रमुख हैं। इनमें डॉ. लोहिया की भूमिका सर्वाधिक महवत्पूर्ण रही।

भारत के अग्रपंक्ति के समाजवादियों ने यद्यपि मार्क्स, एजिल्स, लेनिन और अन्य कम्युनिस्ट दार्शनिकों और विचारकों की विचारधारा और सिद्धान्तों का भली-भाँति अध्ययन किया था लेकिन वे अन्ततः भारत के स्वतंत्रता संग्राम के दौरान ही इस नतीजे पर पहुँच गये थे कि सोवियत मॉडल का क्रांतिकारी सामाजिक परिवर्तन जिसमें हिंसा और वर्ग संघर्ष अनिवार्य है। भारत की जनता के लिए न सिर्फ घातक होगा वरन् पूर्णतः अव्यवहारिक सिद्ध होगा। इसीलिए उन्होंने गाँधी के ग्राम विकास और भारत के पुननिर्माण कार्यक्रम को उचित ठहराया। भारत की परिस्थितियों में इटली, फ्राँस, जर्मनी और रूस का साम्यवाद व्यवहारिक तौर पर सर्वथा अनुपयुक्त था।

गैर कांग्रेसवाद :

सन् 1947 से 1967 के दौरान भारत में कांग्रेस की खूब चली। राजनीतिक तौर पर कांग्रेस के हाथ में वर्चस्व यानी सर्वोच्च्व सत्ता विराजमान रही। उसके पास दो तिहाई से अधिक बहुमत होता था और वह कभी भी संविधान में संशोधन कर सकती थी। प्रदेश में मुख्यमन्त्रियों की नियुक्ति करना और हटाना केन्द्रीय नेतृत्व के हाथ में था। विरोध पक्ष बहुत कमजोर था।

नेहरू ने सहकारी खेती, लचर रक्षा नीति, नौकरशाही-ठेकेदारी प्रथा से बोझिल विकास योजनाओं, सार्वजनिक उद्यम बनाम निजी उद्योग जैसे प्रश्नों पर देश के बुद्धिजीवियों में अपनी आलोचना के बीज बोये। समाजवादी नेताओं और अन्य विरोधी दलों का अब एक ही लक्ष्य था कि कांग्रेस को सर्वोच्च सत्ता से हटाया जायें। उसकी नीतियों और कार्यक्रमों की धज्जियाँ उड़ाई जाये। लेकिन विरोध पक्ष खुद विभाजित था और कांग्रेस का कुछ भी नहीं बिगाड़ सका। ऐसे वैचारिक संकट के समय समाजवादी और प्रगतिशील विचारधारा के नए नेतृत्व ने साझा सरकार के सिद्धान्त को बल दिया। मिली-जुली सरकार की स्थापना गैर कांग्रेसवादी विचारधारा में क्रांतिकारी परिवर्तन का आधार बनी। डॉ. लोहिया बहुत पहले कह चुके थे कि नौकरशाही के इजाफा होने से फिजूलखर्जी बढ़ती है। मंत्रीगण और अधिकारी

अनाप-शनाप सरकारी सुविधाओं के नाम पर खर्च करते हैं। इन लोगों का ध्यान सीमाओं की रक्षा और राष्ट्रीय हितों की ओर जाता ही नहीं। डॉ. लोहिया और उनके बाद मधुलिमये, राजनारायण, जनेश्वर मिश्र, मुलायम सिंह यादव जैसे समाजवादी नेता कागजी योजनाओं की आलोचना करते रहे।

मधुलिमये के शब्दों में "निराश समाजवादी जे.पी. ने तो 1948 में ही सिर पीट लिया था कि देश में भ्रष्टाचार, भाई-भतीजावाद और नैतिक पतन इस सीमा तक पनप सकता है। उन्होंने रमण महर्षि, अरविन्द घोष, और जे. कृष्णमूर्ति जैसे महान गुरू और दार्शनिकों से निवेदन किया था कि वे समाज को दिशा देने के लिए आगे आए। उनकी अपील पर इन गुरूओं ने ध्यान नहीं दिया। यह पता नहीं चल सका ये तथाकथित मार्गद्रष्टा अपने मिशन को कैसे चलाते हैं? हिन्दू संत मोक्ष पर ध्यान देते हैं इसके लिए वे आदमी को संसार छोड़ने की बातें करते हैं, लेकिन आदमी और समाज पर उनका कतई ध्यान नहीं होता।"[1]

स्वतंत्र पार्टी एवं राजगोपालाचारी :

भारत के अन्तिम गवर्नर जनरल और राजनीति में चाणक्य समझे जाने वाले चक्रवर्ती राजगोपालाचारी (राजाजी) ने छठें दशक में बुद्धिजीवियों सरमायेदारों, राजा-महाराजाओं, वकील बैरिस्टरों और जमींदारों की एक स्वतंत्र पार्टी गठित की। सन् 1959 में कांग्रेस के नागपुर अधिवेशन में सहकारी कृषि पर जोर दिया गया था। जिसका चौधरी चरण सिंह, प्रो. रंगा, अलगू राय शास्त्री जैसे नेता विरोध कर चुके थे। सहकारी खेती के प्रश्न पर गाँधी के समधी राजा जी कांग्रेस और नेहरू से क्षुब्ध हो गए। उनकी छत्रछाया में उद्योगपतियों, राजाओं जमींदारों और नव-धनाढ्यों को साथ लेकर स्वतंत्र पार्टी का गठन हुआ जिसके अध्यक्ष नेहरू से बेहद खफा, गाँधीवादी नेता प्रो. एन.जी.रंगा बनाए गए। राजाजी और प्रो. रंगा का पुराना राजनीतिक साथ था। छठें दशक के शुरूआती वर्षों (1951-1954) में जब प्रो.रंगा ने अखिल भारतीय हथकरघा बुनकर कांग्रेस के संस्थापक अध्यक्ष के नाते करोड़ों हथकरघा बुनकरों की आवाज उठाई, उनकी बेरोजगारी, गरीबी, सूत की तंगी और संगठित सूती वस्त्र उद्योग से भारी प्रतियोगिता की ओर सरकार का ध्यान खींचा तो राजगोपालाचारी ने प्रो.रंगा की माँगों के समर्थन में केन्द्र सरकार को आड़े हाथ लिया। तब नेहरू को झटका लगा।

---

1. मधुलिमेय- **पॉलिटिक्स आफ्टर फ्रीडम,** पृष्ठ 284.

इसलिए राजगोपालाचारी प्रो. रंगा की रचनात्मक और गाँधीवादी नीति के प्रशंसक बन गए। राजगोपालाचारी ने मद्रास में हथकरघा क्षेत्र के लिए कुछ नम्बर के सूत का प्रयोग सुरक्षित कर दिया। यह व्यवस्था धीरे-धीरे पूरे देश में लागू हुई और हथकरघा उद्योग को राहत पहुँची। राजगोपालाचारी और प्रो. रंगा छठें दशक के पूर्वार्द्ध में मद्रास एवं आंध्र ही नहीं पूरे भारत के बुनकरों में रहनुमा के रूप में मशहूर हो गए। बिहार में अब्दुल कयूम अंसारी और उत्तरप्रदेश में तुलसीप्रसाद सहयोगी ने बुनकर आंदोलन को नए आयाम दिए। नागपुर के नामदेवराव पाउनीकर और सहयोगी ने अखिल भारतीय स्तर पर बुनकर सम्मेलन आयोजित किए। डॉ. लोहिया ने भी उत्तर भारत में हथकरघा उद्योग को संरक्षण देने की बात की। समाजवादियों ने फिर देश भर में जगह-जगह हथकरघा बुनकरों की माँगों के समर्थन में जनसभाएं की।

दरअसल राजगोपालाचारी और रंगा द्वारा गठित अनुदार स्वतंत्र पार्टी जिसमें समाजवादी मीनू मसानी भी थे नेहरू विरोध के लिए उद्योगपतियों राजाओं-जमींदारों का सहयोग जुटाने के लिए विवश हुए थे। प्रो. रंगा पक्के गाँधीवादी, किसान-बुनकर नेता थे और समाजवादी नेताओं के प्रशंसक और सहयोगी रहे थे। समाजवादियों की तरह प्रो. रंगा भी नेहरू की उपेक्षा के शिकार थे, बाद में उनकी उपेक्षा से आहत कम्मा जाति के एन.टी. रामाराव आन्ध्र में सशक्त नेता के रूप में उभरे और कांग्रेस को अपने यहाँ जमीन दिखा दी। दरअसल आन्ध्र के महान फिल्मी अभिनेता रामाराव उत्तर दक्षिण में बननेवाली धार्मिक फिल्मों में विष्णु का रोल करते हुए विश्वविख्यात हुए है।

सन् 1962 में जब तीसरे आम चुनाव हुए स्वतंत्र पार्टी, कम्युनिस्ट पार्टी, प्रजा सोशलिस्ट पार्टी, समाजवादी पार्टी, जनसंघ विरोध पक्ष में थे। लेकिन विरोध पक्ष इतना मजबूत नहीं था। लन्दन से प्रकाशित अन्तर्राष्ट्रीय अर्थ और राजनीतिक जगत की प्रमुख साप्ताहिक पत्रिका 'इकानामिस्ट' ने लिखा कि "भारत अभी तक विरोधी दल विकसित नहीं कर पाया।"[1] दरअसल, सन् 1962 से उनकी संख्या में 30 से अधिक इजाफा नहीं हुआ। कम्युनिस्टों के बाद स्वतंत्र पार्टी, गणतन्त्र परिषद और स्वतंत्र सदस्यों को मिलाकर 26 संसद सदस्यों वाला दल था। प्रजा सोशलिस्ट पार्टी और समाजवादी पार्टी के सदस्यों की संख्या

---

1. कन्हैयालाल चंचरीक, डॉ. नरेन्द्र चन्द्रा, ममता यादव- **समाजवादी चिंतन और मुलायम सिंह यादव,** पृष्ठ 14.

नगण्य थी। आसाम से हेम बरूआ सांसद थे। 1951-52 में जब चुनाव हुए थे क्षेत्रीय दलों ने राष्ट्रीय दलों के मुकाबिले जीत हासिल करने में बाजी मारी थी। 1957 में स्वतंत्र पार्टी ने इन क्षेत्रीय दलों को अपने में विलय कर लिया और अपनी स्थिति मजबूत कर ली । सन् 1950 तक सरदार पटेल का कांग्रेस और राज्य मन्त्रिमण्डलों पर दबदबा था, लेकिन 1950 के अन्तिम दिनों में उनकी मृत्यु के बाद जवाहरलाल नेहरू सरकार और संगठन दोनों पर हावी हो गए। मधुलिमये के शब्दों में "डॉ. लोहिया को छोड़कर नेहरू का शायद ही कोई प्रभावी आलोचक हो। नेहरू के आखिरी वर्षो में सिर्फ राजगोपालाचारी और किसान बुनकर नेता प्रो. रंगा ने उनकी जमकर आलोचना की।"[1]

पुराने समाजवादी इन्दिरा गाँधी के पक्ष में :

कांग्रेस के अन्दर सन् 1966-67 में परिवर्तन की ऐसी हवा चली कि मोहन धारिया, कृष्णकांत और चन्दशेखर जैसे समाजवादी इंदिरा गाँधी के पक्ष में बोलने लगे। सन् 1971 के मध्यावधि चुनाव में इंदिरा गाँधी ने पुनः सत्ता हथिया ली। असली समाजवादी, साम्यवादी और क्रांतिकारी पार्टियों की नीतियों की जनता ने परवाह नहीं की। जगजीवनराम को कहा गया वे मंत्री पद या कांग्रेस अध्यक्ष में से एक का चुनाव करें। जबकि कांग्रेस जगजीवनराम नाम से लोकसभा चुनाव में जीती थी, उल्टे जगजीवन बाबू को संगठन से चलता कर दिया गया। वे सिर्फ मंत्री पद से संतुष्ट किए गए। 1972-73 के बाद पूरे देश के जुझारू समाजवादी नेता इंदिरा गाँधी की नीतियों के कटु आलोचक बन गए।

सम्पूर्ण क्रांति का आवाह्न :

लोकनायक जयप्रकाश नारायण ने सम्पूर्ण क्रांति का नारा यकायक नहीं दिया था। पुराने कांग्रेसियों को हाशिए पर लाकर सन् 1971-72 में जब इंदिरा और जगजीवनराम कांग्रेस को आसमान की ऊँचाई तक ले गए, तब विपक्ष क्षोभ और निराशाजनक स्थिति में था। सन् 1973 में बंगलौर में समाजवादी पार्टी की आमसभा की बैठक हुई। उसमें एक सुदृढ़ राष्ट्रीय विकल्प की आवश्यकता पर बहस हुई। चौधरी चरण सिंह उत्तरप्रदेश में गैर कांग्रेसवाद का झण्डा उठाये हुए थे। ऐसे में निश्चय किया गया कि संयुक्त विधायक दल (एस.बी.डी.) जैसा साझा सरकार का विकल्प कारगर नहीं है। इसके लिए संयुक्त सामाजिक

---

1. मधुलिमेय- **पॉलिटिक्स आफ्टर फ्रीडम**, पृष्ठ 272-273.

आर्थिक कार्यक्रम की जरूरत है। यह सोचा गया कि कांग्रेस (संगठन) और बी.के.डी. आदि से समझौता किये जा सकते हैं।

बंगलौर अधिवेशन के बाद दिल्ली में सी.पी.आई. (मार्क्सवादी) और समाजवादी पार्टी के प्रतिनिधियों के मध्य विचार-विमर्श का दौर चला। बाद में एक साझा कार्यक्रम के लिए रिवोल्यूशनरी सोशलिस्ट पार्टी, फारवर्ड ब्लॉक, पीजेन्ट्स एण्ड बर्कर्स पार्टी, आर.पी. आई. आदि से भी विचार विमर्श हुआ।[1]

इधर बिहार समेत पूरे उत्तर भारत में जे.पी. के बढ़ते प्रभाव से कांग्रेस में खलवली मची हुयी थी। अब तक के सर्वोदय, भूदान-ग्रामदान और राजनीति में नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठापना, युवा शक्ति की रचनात्मक भागीदारी के आन्दोलन से अहिंसक क्रांति और नये समाज की रचना का अलख जगाते रहे थे। समाजवादी नेताओं और क्रांतिकारी विचारों के संगठनों ने सन् 1974 में रेलवे कर्मचारियों की माँगों के संघर्ष के लिए एक संयुक्त प्लेटफार्म बनाया। रेलवे कर्मचारी संघर्ष के लिए एक राष्ट्रीय समन्वय समिति का भी निर्माण किया गया। सरकार इससे घबरा गई।

इसी बीच गुजरात के विद्यार्थियों के आन्दोलन ने सफलता हासिल की और चिमन भाई पटेल सरकार को जाना पड़ा। यह संघर्ष बिहार में भी फैला। बिहार के विद्यार्थियों ने 14 मार्च, 1974 को पटना विधानभवन के आगे जमकर प्रदर्शन किया। पुलिस ने लाठी चार्ज किया, गोली चलाई। पटना के सर्च लाईट प्रेस को गुण्डों ने आग लगा दी। बहुत से विद्यार्थी और नौजवान घायल हुए। लूट और आगजनी से पूरा पटना जलने लगा। होटल और दुकानों मे आग लगा दी गई। पुलिस का कहर प्रदर्शनकारियों पर अगस्त क्रांति को याद दिलाने वाला दृश्य था।

अगले दिन 15 मार्च, 1974 को पूरे बिहार में निहत्थे छात्रों पर पुलिस की गोलीबारी की निंदा की गई। विरोध स्वरूप भागलपुर मण्डल में उग्र प्रदर्शन और बन्द हुआ। शीघ्र ही भारत में समाजवाद के जनक और लोकनायक जयप्रकाश नारायण इस आन्दोलन से अपने को पृथक नहीं रख सके। अप्रैल 1974 के शुरूआती दिनों में जयप्रकाश ने शान्तिपूर्ण जुलूस का नेतृत्व किया और पुलिस लाठीचार्ज एवं गोलीबारी की निन्दा की।

---

1. मधुलिमेय- **पॉलिटिक्स आफ्टर फ्रीडम,** पृष्ठ 240.

इसका प्रभाव पूरे राज्य में पड़ा । वैल्लौर में अपनी चिकित्सा के लिए जाने से पूर्व उन्होंने संघर्ष जारी रखने के सम्बंध में अपने अनुयायियों को विस्तृत हिदायतें दी। इस प्रकार अपरिहार्य कारणों से समाजवादी पार्टी ने इस संघर्ष में बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया।

मधुलिमये के अनुसार-"बिहार से प्रारम्भ इस आन्दोलन में समाजवादी पार्टी की सर्वप्रथम भागीदारी ने इसे क्रांतिकारी स्वरूप प्रदान कर दिया। समाजवादी पार्टी के नेतागण और कार्यकर्त्ता सबसे पहले उन स्थानों पर सहानुभूति के लिए पहुँचे जहाँ पुलिस ने गोलियाँ बरसाई थी। इन स्थानों के नाम है - लखी सराय, जमुई, मुंगेर, देवगढ़ तथा अन्य जगहें। समाजवादी पार्टी ने ही सबसे पहले धारा 144 का उल्लंघन किया, कर्फ्यू तोड़ा और गिरफ्तारियाँ दी। समाजवादी पार्टी के प्रत्येक विधायक ने पुलिस की बर्वरता और नृशंसता के विरोध में विधानसभा से त्याग पत्र दे दिये।"[1]

जब जयप्रकाश नारायण वैल्लौर से इलाज कराके पटना वापिस आए तो यह संघर्ष और भी उग्र हो गया। इसी दौरान जयप्रकाश इलाहाबाद गए और समाजवादी पार्टी के साथियों से विचार-विमर्श किया। इस बैठक में जोशीले समाजवादियों ने जे.पी. से आग्रह किया कि वे मार्गदर्शन प्रदान करें इस संघर्ष को किस प्रकार जारी रखें। जे.पी. ने कहा ऐसे समय में क्रांति के उद्देश्यों की विस्तृत व्याख्या नहीं की जा सकती, समय ही सच्चा निर्णायक हो सकता है।

अक्टूबर, 1974 में बिहार में तीन दिन का बन्द बहुत सफल रहा। यह स्वतंत्रता पूर्व के दिनों की तरह था। 4 नवम्बर, 1974 को पटना में अभूतपूर्ण रैली आयोजित की गई। जिसमें आसामाजिक लोगों ने जयप्रकाश नारायण पर हमला किया, इसमें और भी बहुत से लोग घायल हुए। सरकार ने प्रदर्शनकारियों को रोकने के लिए पूरी ताकत लगा दी, फिर भी पटना में हजारों लोग पहुँच गए। इन्हीं दिनों साम्यवादी दल और कांग्रेस ने भी अपने विरोधस्वरूप जवाबी प्रदर्शन आयोजित किए जो बुरी तरह असफल सिद्ध हुए।

---

1. मधुलिमेय- **पॉलिटिक्स आफ्टर फ्रीडम**, पृष्ठ 241.

राजनारायण की चुनाव याचिका या आपातकाल का आमंत्रण :

1975 में इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा समाजवादी नेता राजनारायण की चुनाव याचिका के निर्णय पर प्रधानमंत्री इंदिरा गाँधी, राजनारायण के विरूद्ध रायबरेली से चुनाव में भ्रष्ट तरीके अपनाने की दोषी सिद्ध हुई। मामले को दबाने, विरोध पक्ष को पूर्णतः दिग्भ्रमित करने जे.पी. के सम्पूर्ण क्रांति आह्वान को असफल बनाने के लिए प्रथम बार भारत जैसे लोकतंत्रीय देश में आपातकाल का उन्होंने जिस तरह से इस्तेमाल किया इससे देश में असंतोष फैल गया। लोकतंत्र की जगह तानाशाही स्थापित हो गई। ऐसा तो ब्रिटिश उपनिवेशवाद के जमानें में भी नहीं हुआ था। विरोध पक्ष के सभी नेता जेलों में डाल दिये गये थे। 1977 में जब आपातकाल हटा सभी नेता रिहा कर दिये गये। लेकिन फरवरी में हुए लोकसभा चुनावों में कांग्रेस पराजित हो गई और जनता पार्टी और सहयोगी घटक सत्ता में आए।

लेकिन मोरारजी के नेतृत्व में जनता पार्टी और सहयोगी घटक अधिक दिन तक सत्ता में नही रह सकें। 'जे.पी. की अन्तिम इच्छा जगजीवनराम को प्रधानमंत्री बनबाने की थी। वह पूरी न हो सकी।'[1] चरण सिंह सत्ता में टिक नहीं पाये। सन् 1980 में इंदिरा गाँधी पुनः सत्तासीन हुई। 1984 में श्रीमती गाँधी की हत्या हो गई। ऐसे राष्ट्रीय विपद्काल में राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह ने राजीव गाँधी को प्रधानमंत्री पद की शपथ दिलाई। कांग्रेस लगभग एक दशक तक सत्ता में रही।

लोकनायक जे.पी., डॉ. लोहिया और मधुलिमये राष्ट्रीय जीवन की पुनरर्चना छोटी जातियों, छोटे किसानों के विकास पर जोर देते रहे। समाजवादी जहाँ वोट से सत्ता हासिल करने के पक्षधर थे, वहीं रचनात्मक कार्यो द्वारा समन्वित विकास के भी समर्थक थे। उन्होंने सभी कार्यो के लक्ष्य निर्धारण में जनता की इच्छा-आंकाक्षाओं को पूरा करने पर बल दिया।

(अ) समाजवाद का अभिप्राय (व्यत्पत्ति एवं अर्थ) :

समाजवाद शब्द के प्रारंभिक प्रयोग के संबंध में एक रोचक विवाद का ज्ञान हुआ है। फ्रांसीसी और ब्रिटिश भाषा-शास्त्रियों के मध्य इस शब्द के प्रारंभिक प्रयोग के संदर्भ में तीव्र मतभेद रहा है। फ्रांसीसियों के अनुसार यह शब्द सर्वप्रथम लुई रेयबाड ने अपनी 1840

---

1. कन्हैयालाल चंचरीक, डॉ. नरेन्द्र चन्द्रा, ममता यादव- **समाजवादी चिंतन और मुलायम सिंह यादव,** पृष्ठ 18.

में प्रकाशित पुस्तक 'स्टीट्युडस सर लेस रिफोरमेटर्स' में प्रस्तुत किया। राबर्ट ओवन के एक विरोधी मि.जे.मेटर ने 1836 में एक पुस्तक लिखी जिसका शीर्षक है -''सोशलिज्म एक्सपोज्ड'' इसके माध्यम से अंग्रेजों ने प्रत्युत्तर दिया कि यह शब्द सबसे पहले अंग्रेजों द्वारा प्रयोग में लाया गया। पुनः इसके प्रत्युत्तर में फ्रांसीसी विद्वानों की ओर से दावा किया गया कि रेयबाड ने अपने एक लेख में 1836 में इसका प्रयोग किया।

पुनः इस चुनौती का उत्तर ब्रिटेन ने राबर्ट ओवन की पत्रिका ''द न्यू मोरल वर्ल्ड'' के माध्यम से दिया जिसके अनुसार इसमें अगस्त 1835 में इस शब्द का प्रयोग हुआ था। इस फ्रेंच-ब्रिटिश विवाद में निर्णय ब्रिटेन के पक्ष में जाता प्रतीत होता है। किन्तु इसके विपरीत फ्रांसीसियों ने नवीन एवं प्रभावशाली तथ्यों का अन्वेषण किया, जिसके अनुसार पियेर लरू ने सर्वप्रथम 13 फरवरी, 1832 को एक दैनिक समाचार पत्र ''द ग्लोब'' में अपने एक लेख में इस शब्द का प्रयोग किया। ओवनवादी इसका तत्काल उत्तर देने में असमर्थ रहे, किन्तु मि. मैक्सबीर जब ब्रिटिश संग्रहालय में अपनी पुस्तक के सम्बंध में विषय वस्तु संग्रह कर रहें थे, तब उन्हें ''को-ओपरेटिव मैगजीन-1827'' में प्रयुक्त सोशलिस्ट शब्द का ज्ञान हुआ। ''इससे पुनः एक बार फिर ब्रिटिश प्राथमिकता स्थापित हुई, जिसके साथ ही यह विवाद समाप्त हुआ।''[1]

इस विवाद के संदर्भ में दो प्रमुख टिप्पणियाँ निर्मित हुई। प्रथम फ्रांस में जिस शब्द को मूल्य प्राप्त हुआ वह शब्द है - ''समाजवाद'' और ब्रिटेन में ओवनवादियों ने जिस शब्द को प्रचलित किया वह एक ठोस एवं मूर्त शब्द है - ''समाजवादी''। द्वितीय इन दोनों का केवल शब्द प्रयोग में अंतर नहीं हैं, वरन् दोनों ने उन्हें पृथक-पृथक अर्थों में भी लिया है। फ्रांसीसी शब्द ''समाजवाद'' व्यक्तिवाद के प्रतिवाद के रूप में लिया गया है, फ्रांस में समाजवाद एक समाजशास्त्रीय अभिव्यक्ति है, जो यह अर्थ प्रकट करता है कि समष्टि अपने समग्र में समाज के पृथक व्यक्ति की अपेक्षा अधिक मूल्यवान है। जबकि ब्रिटेन में ''समाजवादी'' शब्द एक अर्थशास्त्रीय अभिव्यक्ति है, जो कि भूमि और पूँजी के व्यक्तिगत स्वामित्व के विरोध में सामूहिक स्वामित्व की अर्थ सूचक है।

1- Hearnshaw.F.J.C.- **A survy of Socialism : Analytical Historical and Critical** (1928), P. 21-22.

इस प्रकार ''समाजवाद'' और ''समाजवादी'' शब्द में मूलतः अन्तर है। ''समाजवाद'' शब्द का प्रचलन फ्रांस में हुआ। जबकि ''समाजवादी'' शब्द का अन्वेषण इंग्लैण्ड में हुआ।[1] समाजवाद की व्युत्पति से स्पष्ट है कि समाजवाद में व्यष्टि की अपेक्षा समष्टि को अधिक महत्वपूर्ण माना जाता है।

समाजवाद अनोपार्जित धन तथा मजदूरों की जीविका के साधनों पर व्यक्तिगत अधिकार के निराकरण का समर्थक है। पूर्ण रूप से सफल होने के लिए इसका अन्तर्राष्ट्रीय होना आवश्यक है।[2]

'आधुनिक समय में समाजवाद की उत्पत्ति पूँजीवाद के विरूद्ध प्रतिक्रिया के रूप में हुई।'[3] पूँजीवाद ने सामंतवादी सामाजिक, राजनीतिक ढांचे को तहस-नहस कर दिया और मनुष्य के लिए प्रगति के नये द्वार खोले पूँजीवाद ने सम्पत्ति का उत्पादन काफी बढ़ाया किन्तु उसका वितरण असमान रूप में किया। पूँजीवादी-व्यवस्था में उत्पादन के साधनों पर मालिक जो समाज का बहुत छोटा अल्पमत है, अपार लाभ अर्जित करते हैं, जबकि श्रम करने वाला वर्ग नितान्त निर्धनता का जीवन व्यतीत करता है।

यह सही है कि समाजवादी प्रवृत्तियाँ प्राचीन काल से राजनीतिक विचारों में और राजनीतिक ढांचे में रही हैं। यह कहना उचित ही होगा कि समाजवादी विचार इन्हीं समानतावादी विचारों की विस्तृत और परिष्कृत स्वरूप हैं। इतिहास इस बात का गवाह है कि हर युग में थोड़े व्यक्तियों द्वारा बहुसंख्यक लोगों पर नैतिक और भौतिक अत्याचार होता रहा है, किन्तु समाज में ऐसे विचारशील व्यक्ति भी रहें हैं, जो इस दुखद स्थिति का निदान खोजने का प्रयास करते रहे।

समाजवाद समाज के इस विस्फोटक स्थिति के विरूद्ध प्रतिक्रिया है। यह मनुष्य के अन्तः करण की अपील करता है और उसे इस बुराई से मुक्ति पाने के लिए प्रेरित करता है जो विभिन्न शोषण प्रणालियों के अन्तर्गत मानवता को गुलाम बनाये हुए है। समाजवाद मनुष्य को मुक्त करना चाहता है ताकि वह भौतिक, नैतिक और आध्यात्मिक पूर्णता की ओर अग्रसर हो सके। इस सन्दर्भ में समाजवाद की परम्परा शानदार है। एलेक्जेन्डर ग्रे के अनुसार-''यद्यपि प्राचीन काल के समाजवाद को स्वयं के लिए समाजवाद के इतिहास के

1- F.J.C.Hearnshaw.- **A survy of Socialism : Analytical Historical and Critical** (1928), P. 22-23.
2- Don Griffiths - **What is socialism ?,** (1924), P. 61.
3- M. Paul - Sweezy and Hurbman Leo- **Indtroduction to Socialism**, P. 7.

अभिन्न अंग होने का दावा करने का अधिकार भी न हो फिर भी इसके प्रतिनिधि अगली शताब्दियों में ओरों के लिए अपने को समाजवाद के प्रेरक के रूप में माने जाने का दावा करते है।"[1]

समाजवाद आधुनिक युग की महत्वपूर्ण विचारधारा है इसके अभ्युदय के साथ-साथ एक ऐसे नवीन दृष्टिकोण का उदय हुआ है। जो सामाजिक शोषण के अन्त तथा सभी क्षेत्रों में न्याय की स्थापना का समर्थक है। इस नवीन दृष्टिकोण का महत्व केवल राजनीतिक चिन्तन के लिए ही नहीं है। अपितु इसके कारण व्यावहारिक राजनीति, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध समाज की आर्थिक व्याख्या तथा साहित्य और संस्कृति तक प्रभावित हुए हैं। यही कारण है कि अपने विकास की प्रक्रिया में समाजवाद ने अनेक स्वरूप ग्रहण किये हैं।

समाजवाद का अर्थ है एक शोषण मुक्त समाज। पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में उत्पादन के साधनों पर थोड़े से पूँजीपतियों का स्वामित्व होता है। उत्पादन व्यवस्था का संचालन, नियमन और वितरण पूँजीपतियों के हाथ में केन्द्रित होने से श्रमिकों की स्थिति अत्यन्त दयनीय हो जाती है। इस शोषक-शोषित के भेद को समाप्त करके एक वर्ग विहीन समाज की स्थापना समाजवाद का लक्ष्य है।

ए.सी.पीगू ने समाजवाद की परिभाषा देते हुए कहा- "समाजवादी व्यवस्था वह है, जिसमें उत्पादन के साधनों का प्रमुख भाग समाजीकृत उद्योगों में लगा होता है। समाजीकृत उद्योग वह है जिसके उत्पादन के भौतिक औजारों का स्वामित्व लोकसत्ता या ऐच्छिक परिषदों के हाथ में होता है और जिसका प्रयोग दूसरे लोगों को विक्रय के द्वारा लाभ कमाने की दृष्टि से नहीं बल्कि प्रत्यक्ष रूप से उनकी सेवा के लिए होता है, जिनका प्रतिनिधित्व वह लोकसत्ता या परिषद करता है।"[2]

समानता समाजवाद का मूल है। डी लेविले ने इसी विचार को अभिव्यक्त किया है कि- "प्रत्येक सामाजिक सिद्धान्त का उद्देश्य सामाजिक दशाओं में समानता समाविष्ठ करना है, समाजवाद समाज के धरातल को समान तथा समतल करने वाला है।"[3] समानता से समाजवादियों का तात्पर्य है, सब व्यक्तियों को अपनी नैसर्गिक शक्तियों, क्षमताओं और योग्यताओं के अनुसार कार्य करने और अपने व्यक्तित्व के विकास का "समान अवसर"

---

1. ग्रे एलेक्जेन्डर- **दि सोशलिस्ट ट्रेडीशन,** पृष्ठ 11.
2. ए.सी.पीगू- **कैपिटलिज्म बर्सेस सोशलिज्म,** पृष्ठ 2.
3. Leaveleye E.de.- Socialism of Today, P. 15.

प्राप्त होना चाहिए। जार्ज बर्नार्डशा के अनुसार- "समाजवाद केवल आय की समानता के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।"[1]

सी.ई.एम. जोड ने समाजवाद का मुख्यतः तीन कार्यक्रमों से सम्बन्ध बताया है-

1. उत्पादन के साधनों के व्यक्तिगत स्वामित्व का उन्मूलन और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए महत्वपूर्ण उद्योगों और सेवाओं को सार्वजनिक स्वामित्व एवं नियंत्रण के अधीन करना।

2. उद्योगों का संचालन समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति के उद्देश्य से किया जाता है, न कि व्यक्तियों को लाभ पहुँचाने के उद्देश्य से, अतएव उत्पादन की सीमा तथा स्वरूप का निर्धारण व्यक्ति विशेष के लाभ का पूर्वानुमान लगाकर नहीं किया जाता है। बल्कि समाज की आवश्यकता का अनुमान लगाकर किया जाता है।

3. पूँजीवादी उद्योग व्यवस्था, जिसने व्यक्तिगत लाभ को प्रेरित किया है, के स्थान पर समाज सेवा की भावना को स्थानापन्न किया जाना चाहिए।[2]

सिद्धान्त लक्ष्य एवं उद्देश्य की दृष्टि से समाजवाद एक अत्यधिक भ्रमात्मक एवं असमंजसपूर्ण शब्द है।[3] उसकी कार्य योग्य किसी एक परिभाषा को स्वीकार करना असम्भव है। 'क्योंकि यह बहुत से लोगों द्वारा इतने ही अस्पष्ट और विरोधाभासपूर्ण अर्थ में प्रयुक्त हुआ है कि यह अपने तर्क संगत से वंचित हो गया है।'[4]

समाजवाद के अर्थ के सम्बन्ध में इतनी विभिन्नता होते हुए भी यह स्पष्ट है कि यह सिद्धान्त पूँजीवाद का विरोधी है और व्यक्तिगत सम्पत्ति की समाप्ति तथा उत्पादन के साधनों के सामाजिक स्वामित्व की स्थापना का समर्थक है। ऐसा करने का इसका उद्देश्य यह है कि समाज से शोषक वर्ग का उन्मूलन हो जाय, राष्ट्रीय सम्पत्ति का सब व्यक्तियों के बीच न्याय संगत वितरण सम्भव हो सके तथा आर्थिक असमानता, जिसके कारण समाज के विविध वर्गों में विषमता और वैमनस्य की उत्पत्ति होती है, समाज से दूर हो सके। दूसरे शब्दों में समाजवाद वह सिद्धान्त है जिसका उद्देश्य आर्थिक जीवन के नियमन द्वारा उस

---

1. के.एल. कमल-**समाजवादी चिंतन,** पृष्ठ 5.
2. C.E.M. Joad- Introduction to Modern Political Theory, (1997), P. 54.
3. J.E. Arker- British Socialism, (1908), P. 1.
4. W.H. Mallock- Studies of contemporary superstition, (1895), P. 232.

व्यक्तिगत असमानता को दूर कर देना है, जो अधिकतर सामाजिक बुराइयों की जड़ है तथा जिसकी समाप्ति से समाज का सामूहिक कल्याण हो सकता है।

सार रूप में समाजवाद अर्थ यह है कि यह उत्पादन के साधनों-पूँजी, भूमि तथा सम्पत्ति पर समस्त समाज का स्वामित्व एवं नियंत्रण मानता है। मनुष्य के सामाजिक रूप से समान स्तर का पक्षधर है। समाजवाद, वैमनस्य का निवारण करके स्वतंत्रता, समानता, बंधुत्व एवं न्याय की वास्तविक स्थापना करना चाहता है। इसी धुरी के चारों ओर समाजवाद के असंख्य चिन्तकों का दर्शन घूमता है, और समाजवाद की अनेक धारायें इसी बिन्दु से विकसित हुई हैं।

ब - स्वतंत्रता पूर्व समाजवाद :

भारत में समाजवाद के बीज अति प्राचीनकाल से ही पाये जाते हैं और ऋग्वेद तथा धर्मग्रन्थों में विशेषकर 'धम्मपद' में मानव एकता, भातृत्व और आध्यात्मिक समानता के सिद्धांतों के दर्शन होते हैं। भारत में समाजवादी चिन्तन का विकास लगभग पूर्वतः शताब्दी की घटना है। 'आर्थिक तथा सामाजिक पुर्ननिर्माण के दर्शन के रूप में समाजवाद भारत के पश्चिम के प्रभाव से ही विकसित तथा लोकप्रिय हुआ है।'[1] पश्चिम के आधुनिक समाजवादी विचारों को भारतीय समाजवादी विचारकों ने भारतीय परिस्थितियों वातावरण और चिन्तन के अनुरूप ढालने की कोशिश की।

भारत में आधुनिक समाजवाद के उदय चिन्ह को ले तो कहना होगा कि समाजवादी तत्वों का प्रथम दर्शन हमें अरविन्द घोष के उन सात लेखों में होता है। जिन्हें 1893 में उन्होंने 'इन्द्रप्रकाश' नामक पत्र में 'पुराने के बदले नवीन दीपक' शीर्षक के अन्तर्गत प्रकाशित कराया था। इन लेखों में अरविन्द ने कांग्रेस की मध्यमवर्गीय मनोवृत्ति की आलोचना करते हुये सर्वहारा की दशा को सुधारने का आग्रह किया था। 1908 में तिलक ने भी 'केसरी' में कुछ लेखों में रूसी सर्वखण्डवादियों की चर्चा की। लाला लाजपत राय प्रथम भारतीय थे जिन्होंने 'समाजवाद' और 'बोल्शेविकवाद' के विषय में कुछ लिखा था। बोल्शेविकवाद के प्रति लाला लाजपत राय का कोई सहानूभुति पूर्वक दृष्टिकोण नहीं था, तथापि अपनी पुस्तकों में उन्होंने कांग्रेस पर पूँजीपति आधिपत्य की कटु अलोचना की।

---

1. विश्वनाथ वर्मा-**आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिंतन**, पृष्ठ 527.

1920 में 'इण्डियन ट्रेड यूनियन कांग्रेस' के अधिवेशन पर सभापतित्व भी लालाजी ने किया। मानवेन्द्र नाथ राय ने जिन पर मार्क्सवाद का प्रभाव था, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के बुर्जुआ वर्ग द्वारा संचालन की आलोचना की थी। 1926 में मोतीलाल नेहरू तथा जवाहरलाल नेहरू ने सोवियत संघ की यात्रा की। जवाहरलाल नेहरू ने अपनी छोटी सी पुस्तक "सोवियत एशिया" में रूस की नवीन आर्थिक नीति से 1926 तक की उपलब्धियों का प्रशंसात्मक चित्र प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया। अपनी 'विश्व इतिहास की झलक' तथा 'आत्मकथा' में जवाहरलाल नेहरू ने मार्क्स की वैज्ञानिक तथा आर्थिक पद्धति की भूरि-भूरि प्रशंसा की है।

भारत में समाजवादी चिन्तन का आरम्भ तो काफी पहले ही हो गया लेकिन समाजवादी आंदोलन की वास्तविक शुरूआत मई 1934 से हुई जब 'कांग्रेस समाजवादी दल' की स्थापना हुई। यह 'भारत में समाजवाद के संगठनात्मक विकास में एक महत्वपूर्ण घटना थी और इसकी स्थापना से सभी प्रांतीय संगठनों और गुटों को अखिल भारतीय आधार तथा मंच मिल गया।'[1] 1931 में बिहार में, 1932-33 में नासिक के केन्द्रीय कारावास में और 1933-34 में उत्तर प्रदेश तथा बम्बई प्रांतों में समाजवादी गुट स्थापित हो चुके थे, और इन्हीं गुटों ने वास्तव में कांग्रेस समाजवादी दल के बीच कार्य किया। समाजवादियों का प्रथम अखिल भारतीय सम्मेलन 17 मई, 1934 को पटना में आचार्य नरेन्द्रदेव की अध्यक्षता में हुआ। 'कांग्रेस समाजवादी दल के प्रमुख प्रतिपादकों में जयप्रकाश नारायण, डॉ. राममनोहर लोहिया, अशोक मेहता, आचार्य नरेन्द्रदेव, अच्युत पटवर्धन, एम.आर.मसानी, कमला देवी चट्टोपाध्याय, पुरूषोत्तम विक्रमदास, युसुफ मेहर अली और गंगाशरण सिंह थे, अत्यन्त ही योग्य नवयुवक, उत्तर भारत के कांग्रेसी और मुख्यतः शहरी मध्यमवर्ग के व्यक्ति थे जिनमें से अनेकों ने अपनी राजनीतिक विचारधारा के कारण परिवार या विवाह तक का त्याग कर दिया था।'[2]

'समाजवादियों ने देश के स्वाधीनता संघर्ष में कांग्रेस के साथ सहयोग किया। देश के राजनीतिक चिन्तन को उसकी मुख्य देन यह रही कि उन्होंने मार्क्सवाद के उद्देश्यों तथा तकनीकों का राष्ट्रीय स्वाधीनता संघर्ष के साथ तालमेल बैठाने का प्रयास किया । इस संदर्भ में समाजवादी चिन्तक साम्यवादी चिन्तकों से अधिक सफल हो सके।'[3] फिर भी समाजवादी राजनेताओं के राजनीतिक व्यवहार और कांग्रेस की व्यवहार शैली में सामजस्य-सूत्र शिथिल

---

1. विश्वनाथ वर्मा-**आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिंतन,** पृष्ठ 528.
2. रामचन्द्र गुप्त-**भारतीय समाजवादी दल के बदलते आयाम : एक विश्लेषण लोकतंत्र समीक्षा** (लेख), पृष्ठ 117.
3. डॉ. अमरेश्वर अवस्थी एवं डॉ. रामकुमार-**आधुनिक भारतीय सामाजिक राजनीतिक चिंतन,**पृष्ठ 561.

होते चले गये। संगठन के क्षेत्र में समाजवादी नेताओं ने ठोस संगठन क्रिया कलापों को बजाय संघर्ष और प्रचार पर अधिक जोर दिया। उन्होंने लगातार संसदीय क्रियाकलापों की आलोचना की तथा कांग्रेस द्वारा निर्मित सरकारों में भाग लेने से इंकार किया उन्होंने संविधान सभा का बहिष्कार भी किया। इससे उनकी स्थिति कमजोर हुई।

स – स्वतंत्र भारत और समाजवाद :

स्वतंत्रता प्राप्ति के सर्वप्रथम भारतीय संविधान के अन्तर्गत प्रजातांत्रिक समाजवाद के तत्वों को अपनाया गया। इन तत्वों को भारतीय संविधान की प्रस्तावना, नीति निर्देशक तत्वों और मौलिक अधिकारों में देखा जा सकता है। संविधान में उल्लिखित निर्देशक तत्व समाजवादी व्यवस्था के सामान्य सिद्धान्त व उद्देश्य हैं। इन्हीं उद्देश्यों को बाद में कांग्रेस दल और सरकार द्वारा अधिक स्पष्ट रूप से व्यक्त किया गया है। भारतीय शासन द्वारा अपनायी गयी पंचवर्षीय योजनाओं का लक्ष्य समाजवाद की स्थापना ही रहा है।

भारतीय संविधान में समाजवाद :

सर्वप्रथम संविधान की आधारशिला के रूप में 13 दिसम्बर, 1946 को जवाहरलाल नेहरू ने अपना उद्देश्य प्रस्ताव प्रस्तुत किया। यह 22 जनवरी, 1947 को पारित हुआ। उस उद्देश्य प्रस्ताव में समाजवाद को समुचित स्थान दिया गया। इसमें भारत के सभी निवासियों को सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक न्याय प्रदान करने एवं राजनीतिक पद, अवसर एवं कानून के सम्बंध में समता की बात कही गयी।[1]

संविधान सभा के बुनियादी लक्ष्य की चर्चा करते हुए नेहरू ने भावनापूर्ण शब्दों में स्पष्ट किया कि, "वह नये संविधान द्वारा भारत को मुक्त बनायें, भूख से पीड़ित लोगों को भोजन दें, वस्त्रहीन लोगों को कपड़ा दें और प्रत्येक भारतवासी को उसकी क्षमतानुसार विकास करने के पूर्ण अवसर दें।"[2] नेहरू के इस वक्तव्य में समाजवाद के महान्तम आदर्श निहित हैं।

संविधान सभा एक स्वर में समाजवाद की समर्थक नहीं थी। समाजवाद के अतिरिक्त अन्य विचारधाराओं के पक्षधरों की भी संविधान सभा में प्रचुरता थी। संविधान के आदर्शों पर विभिन्न विचारधाराओं और विभिन्न राष्ट्रीय नेताओं का प्रभाव था। अतः

---

1. संविधान सभा, वादविवाद खण्ड 1, पृष्ठ 59-60.
2. J.L. Nehru - **Independence and After**, P. 375.

संविधान सभा की मुख्य समस्या संविधान के आधारभूत सिद्धांतों पर सभी पक्षों की सहमति प्राप्त करनी थी। विभिन्न राजनीतिक विचारधाराओं के समन्वय से संविधान निर्माताओं ने समस्या का समाधान किया। उदारवाद, समाजवाद, साम्यवाद और गाँधीवाद के तत्वों को सम्मिलत करके भावी संविधान के लिए आधार-भूमि तैयार की गई। संविधान का आधार कोई एक विचारधारा नहीं है।

सभा के कुछ सदस्य भारतीय राज व्यवस्था को एक विचारधारा विशेष से सम्बद्ध करना चाहते थे और इस दृष्टि से प्रस्तावना में संशोधन हेतु यह सुझाव रखा गया था कि "प्रभुत्व-सम्पन्न-लोकतांत्रिक- समाजवादी गणराज्य" बनाने की व्यवस्था होनी चाहिए। किन्तु इस संशोधन को अस्वीकार कर दिया गया। इसके विरूद्ध डॉ. अम्बेडकर ने तर्क दिया कि-"आने वाली पीढ़ियों को एक विशेष प्रकार की अर्थव्यवस्था के साथ नहीं बाँध दिया जाना चाहिये, हमारे द्वारा यह कार्य बाद में चुनकर आने वाली संसद पर छोड़ दिया जाना चाहिये।"[1] इस प्रकार संविधान सभा में वाद-विवाद के इन पहलुओं से स्पष्ट है कि संविधान सभा में समाजवादी लक्ष्यों को अधिकाधिक प्राप्त करने के लिए व्यापक स्तर पर वाक्‌युद्ध चलता रहा। किन्तु अनेकानेक विचारधाराओं के अस्तित्व में समाजवादी दृष्टिकोणों को निवेदन रूप से आगे नहीं आने दिया।

निःसंदेह हमारा संविधान किसी सामाजिक या आर्थिक विचारधारा की ओर औपचारिक रूप से प्रतिबद्ध नहीं है, तो वह है लोकतांत्रिक समाजवाद का अत्यधिक लचीला सिद्धांत जैसा कि ग्रानविले आस्टिन ने कहा है- "संविधान सभा के अधिकांश सदस्यों के लिए जो चीज सबसे अधिक महत्व की थी वह यह नहीं थी कि संविधान में समाजवाद को स्थान दिया जायें, बल्कि यह थी कि ऐसा लोकतांत्रिक संविधान बनाया जाये जो समाजवाद की ओर झुका हुआ हो, जो राष्ट्र को इस योग्य बना सकें कि वह भविष्य में उतना समाजवादी सिद्ध हो सके जितना इसके नागरिक चाहे या उनकी आवश्यकताओं की माँग हो। इसी प्रकार के संविधान को संविधान सभा के सदस्यों ने बनाया।"[2]

संविधान सभा के वाद-विवादों पर दृष्टि डालने से ज्ञात होता है कि जो चीज मुख्य रूप से मान्य हुई वह नेहरू का लोकतांत्रिक समाजवाद था, किन्तु उसका अर्थ यह नहीं था कि वही सब कुछ हुआ जो कि नेहरू जैसा व्यवहारिक क्रमिक सुधारवादी चाहता था।[3]

1. संविधान सभा, वादविवाद खण्ड 2, पृष्ठ 302.
2. G. Austin - **The Indian Constitution, Corner Stone of a Nation**, P. 43.
3. W.H. Morris Jones : **The Explotation of Indian Political Life**, P. 415.

भारतीय संविधान की प्रस्तावना में समाजवाद :

भारतीय संविधान की प्रस्तावना सुन्दर और सारगर्भित है। अर्नेस्ट बार्कर ने इसकी प्रशंसा इस प्रकार की है- "जब में उसे पढ़ता हूँ तो मुझे लगता है कि उसमें इस पुस्तक का अधिकांश तर्क संक्षेप में वर्णित है, अतः उसे इसकी कुंजी माना जा सकता है। मैं उसे उद्धृत करने के लिए इसलिए लालायित हूँ, क्योंकि मुझे इस बात पर गर्व है कि भारत के लोग अपने स्वतंत्र जीवन का आरंभ राजनीतिक परम्परा के उन सिद्धांतों के साथ कर रहें हैं जिन्हें हम पश्चिम के लोग पाश्चात्य कहकर पुकारते हैं, परन्तु जो अब पाश्चात्य से कहीं अधिक हैं।"[1] इस दृष्टि से प्रस्तावना को हमें समाजवादी परिप्रेक्ष्य में देखना होगा। प्रस्तावना के समाजवादी तत्वों के विश्लेषण करने से पूर्व संविधान की प्रस्तावना बताना आवश्यक है, जो इस प्रकार है-

हम भारत के लोग, भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न समाजवादी धर्मनिरपेक्ष, लोकतांत्रिक गणराज्य बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त करने के लिए तथा उन सब में व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता और अखण्डता सुनिश्चित करने वाली बन्धुता बढ़ाने के लिए दृढ़-संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में आज तारीख 26 नवम्बर, 1949 ई. (मिति मार्गशीर्ष शुक्ल सप्तमी, संवत् 2006 विक्रमी) को एतद् द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।

संविधान की प्रस्तावना में सारे संविधान का सार है, दर्शन है। संविधान के सभी उपबंध प्रस्तावना में निहित भावनाओं से स्फूर्ति ग्रहण करते हैं। प्रस्तावना में जिन तथ्यों, सिद्धांतों तथा आदर्शों का निरूपण हुआ है, वे समूचे संविधान में विद्यमान हैं। सच तो यह है कि प्रस्तावना के आधार पर हमारे समूचे संविधान का अध्ययन ही नहीं, अपितु पुर्ननिर्माण तक किया जा सकता है। प्रस्तावना की शब्दावली में अनेक शब्द और पद ऐसे हैं, जिनमें प्राचीन तथा नवीन सभी परम्पराओं के सर्वश्रेष्ठ तत्वों का निचोड़ है और जो प्रयोग की दृष्टि से सार्वभौम है - उनकी चाहें किसी भी दृष्टि से व्याख्या की जाये। 'प्रस्तावना पर आधुनिक

---

1. E. Barker - **"Principles of Social and Political Theory". Preface**.

युग की तीन महान क्रांतियों का प्रभाव पड़ा है- फ्रांसीसी, अमरीकी और रूसी। फ्रांसीसी क्रांति में स्वतंत्रता, समानता और बंधुता पर जोर दिया गया था, अमरीकी क्रान्ति में राजनीतिक स्वतंत्रता तथा व्यक्ति स्वातंत्र्य पर और रूसी क्रांति में आर्थिक समानता पर भारतीय क्रांति के सूत्रधारों ने आरम्भ से ही इन तीनों में समन्वय स्थापित करने का प्रयत्न किया।'[1]

रूसी और फ्रांसीसी क्रांति से प्रभावित इस प्रस्तावना में समाजवाद के उच्चतम, राजनैतिक, सामाजिक आर्थिक, नैतिक मूल्य निहित है। अमरीकी अवधारणा स्वतंत्रता से भी समायोजन इन मूल्यों को करना पड़ा है। अतः अनेक अवसर ऐसे भी आयें जब इन समाजवादी मूल्यों का स्थान गौण होने लगा। अतः संविधान का मूल दर्शन 'समाजवाद' है और यह स्मरणीय रहे इस दृष्टि से 42वें संवैधानिक संशोधन द्वारा प्रस्तावना में 'समाजवादी' शब्द को जोड़ा गया। समाजवादी शब्द का जब स्पष्ट प्रयोग प्रस्तावना में नहीं किया गया था तब भी इसका निहितार्थ वही था जो कि 'समाजवादी' शब्द जोड़ने के बाद है। किन्तु प्रत्यक्ष रूप से इस शब्द को इसलिए स्थान दिया गया है कि संविधान को क्रियान्वित करते समय यह ध्यान रहे कि समाजवाद का लक्ष्य पूर्ण हो रहा है या नहीं।

अंत में हम कह सकते हैं कि प्रस्तावना का आरम्भ और अंत समाजवाद के संदर्भ में ही हुआ है। हम भारत के लोगों में जो समग्र भारतीय नागरिकों के प्रति समभाव की जो भावना छुपी हुई है वह समाजवाद की उच्चतम सीमा है।

संवैधानिक संशोधन एवं समाजवाद :

42वाँ संवैधानिक संशोधन 11 नवम्बर, 1976 को भारतीय संसद द्वारा स्वीकृत किया गया। यह संशोधन देश के संवैधानिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक विकास में महत्वपूर्ण है। यह राष्ट्रीय विकास को नयी दिशा प्रदान करने वाला संकेत है।

यह संवैधानिक संशोधन अब तक के हुए संशोधनों में सर्वाधिक व्यापक एवं विस्तृत है। इस संशोधन में कुल 59 धारायें हैं, जिनमें संविधान की 35 पूर्व धाराओं का संशोधन और 16 नयी धाराओं का समावेश हुआ है। ये धारायें मुख्यतः केन्द्र तथा राज्य सरकारों, संसद और विधानसभाओं, न्यायपालिका तथा नागरिकों के कर्तव्यों आदि से सम्बंधित हैं इनमें समाजवादी व्यवस्था का विशेष ध्यान रखा गया है।

---

1. सुभाष कश्यप- **संविधान की आत्मा प्रस्तावना, लोकतंत्र समीक्षा,** (लेख) (अप्रैल-जून 1969), पृष्ठ 99.

इस विस्तृत संशोधन के हम उन्हीं प्रावधानों पर गौर करेंगे जिनका सम्बंध समाजवादी व्यवस्था से है। सर्वप्रथम 42 वें संशोधन द्वारा संविधान की प्रस्तावना में संशोधन करके सम्प्रभु समाजवादी लोकतांत्रिक गणराज्य की स्थापना का लक्ष्य घोषित किया गया है। मूल संविधान में भारत को प्रभुसत्ता सम्पन्न, लोकतांत्रिक गणराज्य घोषित किया गया था, इस संशोधन के द्वारा उसे प्रभुसत्ता सम्पन्न, समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष, लोकतांत्रिक गणराज्य बताया गया है।

अब तक संविधान में लोकतांत्रिक गणराज्य की स्थापना का लक्ष्य ही उल्लेखित था। 42वें संशोधन द्वारा उस लक्ष्य को और अधिक विस्तृत कर दिया गया है। अब संविधान का लक्ष्य ऐसे सम्प्रभु लोकतांत्रिक गणराज्य की स्थापना करना घोषित किया गया है, जो अपने चरित्र में समाजवादी और धर्मनिरपेक्ष होगा।[1]

42 वें संशोधन द्वारा भारतीय नागरिकों के 10 मौलिक कर्तव्य निर्धारित किये गये।[2] मौलिक कर्तव्यों की व्यवस्था भी इसी उद्‌देश्य से ही गई कि समाज के दुर्बल और शोषित वर्ग के लिए भी सामाजिक न्याय प्राप्त करना कठिन न रहे।

42 वें संशोधन द्वारा संविधान वास्तविक रूप से पुनः एक जीवित प्रगतिशील और उपयोगी दस्तावेज बन गया जिसका प्रयोग भारतीय समाज का अधिसंख्य दुर्बल वर्ग अपने उत्पीड़न और शोषण मुक्ति के युद्ध में एक सबल अस्त्र के रूप में कर सकता है, और सामाजिक न्याय के लक्ष्य को प्राप्त कर एक समृद्ध और प्रतिष्ठित जीवन स्तर प्राप्त कर सकता है। एच.आर. गोखले ने इसके सम्बंध में उचित ही कहा था "यह संशोधन विधेयक देश के सामाजिक एवं आर्थिक लक्ष्यों की प्राप्त करने के लिए एक ऐतिहासिक कदम है।"[3] इस प्रकार भारतीय संविधान के लागू होने के उपरांत से अब तक इसमें कई सुधार किये गये हैं। यह प्रयास किया गया है कि संविधान निर्माताओं की जो समाजवादी सद्‌भावनायें थीं उन्हें मूर्तरूप प्रदान किया जायें।

---

1. दिनमान (पत्रिका)- 31 अक्टूबर, 1976, पृष्ठ 7.
2. S.P. Sathe - **Forthy Fourth Constitution Amendment, Economic and Political Weekly,** Vol. XI, No. 43, P. 1705.
3. लोकसभा, वाद विवाद, 25 अक्टूबर, 1976, स्तम्भ 5.

(द) आधुनिक भारत में समाजवाद :

सैद्धान्तिक दृष्टि से भारत में समाजवाद को अत्यधिक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। भारतीय सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक चिंतन में इस अवधारणा की महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

कांग्रेस ने व्यापक रूप से समाजवाद का अपने प्रचार-प्रसार के लिए उपयोग किया। स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व और स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् अपने प्रत्येक अधिवेशन के पारित प्रस्तावों में समाजवादी गाथा गायी, अपने चुनाव घोषणा-पत्रों में बारम्बार समाजवादी नीतियाँ दोहराई।

पं. नेहरू के नेतृत्व में भारत में समाजवाद :

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत का नेतृत्व पं. नेहरू के हाथ में आया और पं. नेहरू अपने सार्वजनिक जीवन के प्रारम्भ से ही समाजवाद में विश्वास करते थे। अतः उनके नेतृत्व में कांग्रेस दल और भारत ने समाजवाद की दिशा में आगे बढ़ने का प्रयत्न किया। 1955 के अबाड़ी कांग्रेस अधिवेशन में राष्ट्रीय कांग्रेस ने 'समाजवादी ढ़ाँचे' के समाज की स्थापना को अपना लक्ष्य घोषित किया। प्रस्ताव में ऐसे उपाय करने का निर्देश किया गया जिससे उत्पादन के प्रमुख साधनों पर समाज का स्वामित्व और नियन्त्रण रहे, उत्पादन में वृद्धि हो और राष्ट्रीय सम्पत्ति का समुचित वितरण सम्भव हो सके।

1962 के भावनगर अधिवेशन में इसी आशय का प्रस्ताव दुहराते हुए कहा गया कि "भारत में मूल समस्या जीवन स्तर को ऊँचा उठाना ही नहीं वरन् उत्तरोत्तर सामाजिक और आर्थिक समानता की स्थापना करना।"[1]

राष्ट्रीय कांग्रेस के 68 वें अधिवेशन द्वारा गोपबन्धुनगर (भुवनेश्वर) में 9 जनवरी 1964 को पुनः एक अत्यन्त व्यापक प्रस्ताव पारित कर प्रजातान्त्रिक समाजवाद को राष्ट्रीय नीति का आधार स्वीकार किया गया। इस क्रान्ति के उद्देश्य बतलाये गये - आर्थिक सम्पन्नता सभी के लिए समान अवसर, विशेषाधिकारों का अन्त, रहन-सहन और विचारों के सम्बन्ध में नवीन दृष्टिकोण तथा नैतिक उत्थान। अधिवेशन में तत्कालीन अध्यक्ष श्री कामराज ने कहा था "हम आशा करते हैं कि वर्गीय संधर्ष के बिना ही हम एक समाजवादी समाज

---

1. डॉ. पुखराज जैन- आधुनिक राजनीतिक विचारधारा, पृष्ठ 122.

की स्थापना करने में सफल होंगे और इस धारणा को दूर कर देंगे कि समाजवादी राष्ट्र में व्यक्ति अपनी प्राकृतिक स्वतंत्रता को खो देते हैं।"[1]

नेहरू काल में समाजवादी व्यवस्था की दिशा में कुछ प्रगति भी हुई। जमींदारी प्रथा की समाप्ति और जीवन बीमे का राष्ट्रीयकरण किया गया। सारे देश में सामुदायिक विकास योजनाओं का एक जाल सा बिछाया गया और विकास कार्यों में सहयोग प्राप्त करने व राज्य की शक्ति को विकेन्द्रित करने के लिए पंचायती राज्य की स्थापना की गयी। सामाजिक संरक्षण और श्रम के क्षेत्र में भी अनेक कानूनों के निर्माण कर श्रमिक कल्याण की दिशा में कुछ महत्वपूर्ण कदम उठाये गये।

श्रीमती इन्दिरा गाँधी और भारतीय समाजवाद :

भारत में समाजवाद की स्थापना की दिशा में प्रधानमंत्री इन्दिरा गाँधी का नाम सदैव ही प्रमुख रूप से लिया जाता रहेगा। 1969 में गुटबन्दी के परिणाम स्वरूप कांग्रेस का जो दो पक्षों में विभाजन हुआ, उसके पूर्व ही इन्दिरा गाँधी के द्वारा समाजवाद की दिशा में महत्वपूर्ण कदम उठाने शुरू कर दिये थे। 1969 के मध्य में 14 प्रमुख बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया गया। 1971 के लोकसभा चुनाव और 1972 के पाँचवें आम चुनाव में कांग्रेस का सबसे प्रमुख नारा 'गरीबी, बेरोजगारी और सामाजिक असमानता की समाप्ति था। और चुनाव के आधार पर लोकसभा में दो तिहाई बहुमत प्राप्त कर लेने के बाद इन्दिरा गाँधी के द्वारा सम्पत्ति के मौलिक अधिकार को सीमित किया गया, राजाओं के प्रिवीपर्स समाप्त किये गये, जोत की भूमि के समीकरण आदि से सम्बन्धित कदम उठाये गये।

20- सूत्रीय आर्थिक कार्यक्रम और समाजवाद :

भारत में 26 जून, 1975 को आन्तरिक अव्यवस्था के कारण जो आपातकाल घोषित किया गया, उसमें 20- सूत्रीय आर्थिक कार्यक्रम को अपनाया गया है जो निश्चित रूप से समाजवाद की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है। इस आर्थिक कार्यक्रम में भूमिहीन श्रमिकों को भूमि देने, गरीब जनता के ऋण की माफी, ठेका मजदूरी प्रथा और बेगार को अवैध घोषित करने आदि से सम्बन्धित कदम उठाये गये हैं और साधारण जनता के हित में सम्पत्ति के अधिकार को और अधिक सीमित किया गया है। सन् 1976-77 के वार्षिक बजट में

1. डॉ. पुखराज जैन- आधुनिक राजनीतिक विचारधारा, पृष्ठ 122.

औद्योगिक श्रमिकों के लिए नवीन सामाजिक सुरक्षा को अपनाया गया है। जिसके अन्तर्गत औद्योगिक श्रमिकों से बिना कोई भी धनराशि लिए उनके बीमे की व्यवस्था की गयी है।

समाजवाद का राजनीतिक दलों द्वारा नारों के रूप में प्रयोग :

1977 में जनता पार्टी ने 'गाँधीवादी समाजवाद' का नारा दिया।[1] बाद में गाँधीवादी समाजवाद का नारा देकर अटल बिहारी बाजपेयी भारतीय जनता पार्टी पर कब्जा करने में सफल हुए। इससे स्पष्ट है कि बाजपेयी भी समझते हैं कि सफलता की कुंजी "गाँधीवादी समाजवाद" नारा ही सिद्ध हो सकता है, कुछ और नहीं।

भारतीय राजनीतिक दलों का अध्ययन करने से एक सामान्य तत्व हमें प्राप्त हुआ वह यह कि दल में फूट का मूल कारण सैद्धान्तिक नहीं वरन् सत्ता संघर्षपरक होता है। लड़ाई सिद्धान्तों की नहीं सत्ता की होती है। सभी दलों की कुछ शब्दों के फेरबदल के साथ वही नीतियाँ होती हैं। जिन पर सभी में समाजवाद का लेपन किया हुआ है।

समाजवाद को अपना लक्ष्य प्रायः सभी दल घोषित करते हैं। सब समाजवाद समाजवाद चिल्लाते रहे हैं परंतु समाजवाद की परिभाषा भी सम्भवतः नहीं जानते।दल किस वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है यह भी उसकी नीतियों से स्पष्ट नहीं होता है। उनके नारे सुन कर यही लगता है कि वे एक साथ ही श्रमिक वर्ग, मजदूर वर्ग, खेतिहर मजदूरों और साथ ही पूँजीपति वर्ग के हितों की रक्षा करेंगे। इनके द्वारा घोषित नीतियाँ प्रचारित नारों की वाक्जाल में उलझकर मतदाता यह भी भूल जाता है कि इनकी कौन सी बातें अन्र्त विरोधों से ओतप्रोत हैं।

नीतियों को नारों की शक्ल देना आवश्यक होता है क्योंकि नारे आसानी से मनमस्तिष्क को स्पर्श करते हैं। भारत जैसे देश में जहाँ कि अधिकांश जनसंख्या अशिक्षित है, नारे उन्हें चुम्बकीय शक्ति के समान अपनी ओर आकर्षित कर सकते हैं। ग्रामीण अशिक्षित जनता प्रचार और नारों से प्रभावित होकर अपना मत देती है। समाजवाद सिद्धांततः निर्विवाद रूप से एक श्रेष्ठ विचार है जिसमें मानव मात्र और समाज के कल्याण की भावना निहित है।

---

1. इंदु मेहता-**नई दुनिया**, पृष्ठ 4.

प्रारंभ से ही भारत के राजनीतिज्ञों ने इसे अपना लक्ष्य घोषित करके निश्चित रूप से उचित कार्य किया है लेकिन जब भारतीय राजनीति में समाजवाद के वर्तमान स्वरूप के तटस्थ मूल्यांकन का नाजुक और गंभीर दायित्व निर्वाह करना है तो स्पष्टतः यह कहना होगा कि कानून, संविधान, नीति आदि साधनों के द्वारा समाजवाद की दिशा में प्रयास किये गये किंतु उपलब्धि अभी संतोषजनक नहीं है।

वर्तमान समय में भारत में सभी समाजवाद की जोर-शोर के साथ बात कर रहे हैं, किंतु अब तक इस दिशा में जिस प्रकार की व्यवहारिक सफलता अपेक्षित थी, वह सम्भव नहीं हो सकी है। भारत में समाजवाद की स्थापना में अभी बहुत कुछ किया जाना शेष है।

आधुनिक भारत में समाजवादी चिंतन :

आचार्य नरेंद्रदेव और समाजवाद :

आचार्य नरेंद्र देव एक ऐसे मार्क्सवादी थे जो गाँधीवादी मूल्यों से भी प्रभावित दिखे। बाद के दिनों में जब सोवियत व्यवस्था में खामियाँ दृष्टिगोचर होने लगी तो उनका मार्क्सवाद के प्रति वह झुकाव नहीं रहा जो शुरू के दिनों में था। फिर भी मार्क्सवाद उनके दिल व दिमाग से समाप्त नहीं हुआ बल्कि बदले हुए रूप में हमेशा नवीन रूप लेता रहा। आचार्य नरेंद्रदेव के बदले हुए मार्क्सवादी दृष्टिकोण का नाम ही लोकतांत्रिक समाजवाद है जिसमें एक साथ लोकतांत्रिक तथा समाजवादी दोनों मान्यताएँ दृष्टिगोचर होती हैं।

प्रजा समाजवादी दल ने अपनी दूसरी सालाना बैठक जो गया में हुई थी, में अपनी नीति प्रकाशित की। उस नीति में आचार्य जी के लोकतांत्रिक समाजवाद जो भारत के अनुकूल है, का वर्णन किया। आचार्य जी तंगदिल राष्ट्रवादी नहीं थे और न ही वह अपने आपको लोकतंत्र समाजवाद के निर्माता कहलाने के इच्छुक थे। उन्होंने लोकतंत्र के विरूद्ध रीति-रिवाजों को नहीं अपनाया। उन्होंने महसूस किया कि भारत का भविष्य लोकतंत्रीय समाजवाद से ही उज्जवल हो सकता है। दूरदर्शी होने के नाते उन्होंने कहा, " जैसे- जैसे रूसी नागरिक का सांस्कृतिक स्तर बढ़ता है और लोहे का परदा उठता है, रूसी साम्यवाद

उतना ही उदार बनेगा जबकि कुछ समय पश्चात् चीन अपनी प्राचीन सभ्यता और अपनी अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति में परिवर्तन के कारण वह स्वयं अपने आपको स्वतंत्र समझेगा और महसूस करेगा कि उसे वही करना चाहिए जो वह हृदय से चाहता है तो उस समय इस प्रकार की स्थिति उत्पन्न होगी जो लोकतंत्रीय समाजवाद के साथ मिलती-जुलती हो।"[1] रूस में इनकी भविष्यवाणी सच साबित हुई। आचार्य नरेन्द्रदेव के भारतीय लोकतंत्रीय समाजवाद के महत्वपूर्ण अंश निम्नलिखित हैं-

1. शोषित वर्ग के अगुवा :

भारतीय समाजिक आन्दोलन में श्रमिक वर्ग के लोगों जिन्होंने एक नया संसार बनाने का संघर्ष किया एक नई दिशा दिखाई। श्रमिक वर्ग में किसान ओर मजदूर दोनों सम्मिलित थे। उनका यह कहना था कि कृषि, अर्थव्यवस्था, औधोगिक अर्थव्यवस्था के अधीन नहीं है।

2. जाति रहित ढाँचा-

जाति पदक्रमिक सामाजिक ढाँचा जो जाति पर आधारित है लोकतंत्र के रास्ते में बाधा है और सामाजिक परिवर्तन को रोकता है। श्रम के गौरव को कम करता है। लोकतंत्र के रीति-रिवाजों को बढ़ावा देता है। श्रमिक वर्ग को सामाजिक सम्मान से वंचित रखता है। इससे स्पष्ट होता है कि जाति रहित समाज लोकतंत्र और समाजवाद के लिए आवश्यक है।

3. लोकतंत्रीय विकेन्द्रीकरण-

लोकतंत्रीय समाजवाद तानाशाही और नौकरशाही का विरोधी है इसीलिए वह शक्ति तथा जिम्मेदारी के विकेन्द्रीकरण के पक्ष में थे। उनका कहना था कि स्थानीय स्तर पर लोकतंत्रीय केन्द्र अपनाये जाए और कार्य संघ लोकतंत्रीय ढंग से संघटित किये जाए। उन्हें स्वतंत्रता दी जाए। ग्रामों में लोकतंत्रीय ढाँचा अपनाया जाए। सांस्कृतिक और भाषा की स्वतंत्रता को महत्व दिया जाए। प्रशासनिक और आर्थिक क्षेत्रों में विकेन्द्रीकरण ही राज्य को तनाशाही से सुरक्षित रख सकता है। उन्होंने इस बात पर बल दिया कि विकेन्द्रीकरण सीमित होना चाहिए। उन्होंने ग्राम पंचायत को राज्य शक्ति का एक मुख्य अंग बताया है।

---

1. Chandrodaya Dixit : **Democratic Socialism in India**, P. 62.

4. उद्योगों का सामाजिककरण -

उनका कहना था कि देश की पूँजी को बढ़ाने और जनता की भलाई के लिए उद्योगों का सामाजिककरण और अर्थव्यवस्था का योजनाबद्ध होना आवश्यक है आचार्य के शब्दों में "सामाजिककरण इस प्रकार होना चाहिए कि वह उद्योगों के साथ ऐसा ताल-मेल करे जिससे उत्पादन बढ़े और उसके वितरण में सुधार आए और मजदूरों को अधिक सुरक्षा और स्वतंत्रता प्रदान हो।"[1]

आर्थिक योजनाएँ संसद द्वारा विद्वानों और सामाजिक संस्थाओं की सहायता से बनाई जाए। बड़े उद्योगों के मालिक जनता स्वयं हो परन्तु भारतीय सरकार, राज्य सरकारें और स्थानीय सरकारें इन उधोगों का शासन चलायें। देश की संतुलित अर्थव्यवस्था जिसमें बेरोजगारी न हो, रोजगार प्रदान करने के लिए छोटे उद्योगों को अपनाना होगा। मजदूरों की इन उद्योगों में भागीदारी आवश्यक हो, उन्हें शासनिक बोर्ड में प्रतिनिधित्व मिलना चाहिए। परन्तु मजदूरों को मानना होगा कि सरकार का उन पर नियंत्रण होगा।

5. सरकारी समितियों का होना :

समाजवादी ढ़ाँचे में सहकारी समितियाँ अति आवश्यक हैं क्योंकि उनके द्वारा घरेलू वस्तुओं का वितरण प्रशंसनीय है। उनके अनुसार पूँजीवादी ढ़ाँचे में उपभोक्ता सहयोग उद्योगपतियों की शक्तियों का विरोध करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। इसी प्रकार ग्राम अर्थव्यवस्था में सहयोग को बुनियादी नियम माना जाएगा। सहकारी खेती-बाड़ी और बहुकार्य सहकारी समितियों के द्वारा सिंचाई, अच्छे बीज, खाद्य और औजारों का वितरण होना चाहिए।

6. सम्पत्ति का अधिकार राष्ट्रीय हितों के अनुकूल :

सम्पत्ति का अधिकार समाजवादी ढ़ाँचे में अपनाया जाता है परन्तु यह मौलिक नहीं होता और इसे छीना भी नहीं जा सकता। सम्पत्ति एक सामाजिक संस्था है जिसका प्रयोग सामाजिक नियमों, आवश्यकताओं और शर्तों के अनुसार होता है। सम्पत्ति का प्रयोग जनता के हित के विरूद्ध नहीं किया जाना चाहिए। इसका प्रयोग जनता की भलाई और उन्नति के लिए होना चाहिए ।

---

1. Chandrodaya Dixit : **Democratic Socialism in India**, P. 65.

7. उद्योग में लोकतंत्र :

समाजवाद उद्योगों में लोकतंत्र में विश्वास रखता है यही कारण है कि वह उद्योग में किसी प्रकार की तानाशाही का विरोध करता है। यही कारण है कि सामाजिक अर्थव्यवस्था स्थापित करने के लिए समाजवाद विचारधारा के अनुसार मजदूरों, मैनेजरों और इंजीनियरों के आपसी सहयोग आवश्यक है। नरेन्द्रदेव के शब्दों में "ज्ञान और श्रम दोनों का इकठ्ठा पाया जाना समाजवाद का महत्वपूर्ण नियम है। बुद्धिजीवी और श्रमिकों का सामाजिक मेल होना प्रशंसनीय है और इसका बढ़ावा सामाजिक एकता ला सकता है।"[1]

8. अहिंसक उपायों को मानना :

मजदूरों के शोषण और उन पर अत्याचार को समाप्त करने के लिए गाँधी के बताये हुए सत्याग्रह और हड़तालों के साधनों को अपनाना चाहिए, नरेन्द्रदेव के शब्दों में "सामाजिक आंदोलन के समर्थन में लोकतंत्रीय शक्तियों को जुटाने में हमें अहिंसावादी, शान्ति के समर्थक और लोकतंत्र का पुजारी बनना होगा। हमें लोकतंत्रीय नियमों को स्वीकार करने वाले भारतीयों को विश्वास दिलाना होगा कि हम लोकतंत्रीय समाजवाद को चाहते है और हम किसी प्रकार की तानाशाही उन पर थोपना नहीं चाहते।"[2] उन्होंने कृषक, उद्योगों, मजदूर और दूसरे श्रमिक वर्ग का आपस में घनिष्ठ सहयोग देने की राय दी है।

जयप्रकाश नारायण और समाजवाद :

लोकनायक जयप्रकाश नारायण भारत में अग्रपंक्ति के समाजवादी चिन्तन के जनक और सामाजिक राजनीतिक क्रांति के पुरोधा हैं। जयप्रकाश नारायण भारतीय समाजवाद के प्रमुख नेता, प्रचारक और प्रवक्ता रहे थे। उन्होंने 1934 में भारतीय कांग्रेस समाजवादी दल की स्थापना में प्रमुख भूमिका निभाई थी और दल तथा उसके कार्यक्रम को लोकप्रिय बनाने के काम में अद्‌भुत प्रतिभा का परिचय दिया था।

एक समाजवादी मनीषी के रूप में जयप्रकाश नारायण की शक्ति इस बात में थी कि उन्हें राजनीति के आर्थिक आधारों का स्पष्ट ज्ञान था। महात्मा गाँधी उन्हें समाजवाद का

---

1. Chandrodaya Dixit : **Democratic Socialism in India**, P. 68.
2. Idid, P. 70.

सबसे बड़ा भारतीय विद्वान मानते थे। उन पर ब्रिटेन और अमेरिका के समाजवादी विचारों का प्रभाव था। वे समाजवाद को सामाजिक-आर्थिक पुर्ननिर्माण का एक सम्पूर्ण सिद्धान्त मानते थे। उनके अनुसार यह व्यक्तिगत आचार नीति के सिद्धान्त से भी बहुत बड़ा है।

जयप्रकाश नारायण ने मुनष्य की जैविक असमानता के सिद्धान्त का भी खण्डन किया। समाजवादी होने के नाते जयप्रकाश नारायण ने इस बात को स्पष्ट किया कि सामाजिक तथा आर्थिक क्षेत्रों में व्याप्त असमानता का मुख्य कारण यह है कि कुछ लोगों का उत्पादन के साधनों पर बहुत अधिक नियंत्रण है और बहुसंख्यक लोग उनसे वंचित हैं। इसलिए उनका आग्रह था कि समाज ऐसी व्यवस्था करे जिससे मनुष्य को शक्ति और क्षमताओं को निष्फल करने वाली बाधाएँ दूर हो सकें। वे सामाजिक तथा आर्थिक समानता के समर्थक हैं उनका कहना यही था कि "सब मनुष्यों का मानसिक स्तर समान हो। समाजवाद व्यापक नियोजन का सिद्धान्त तथा कार्यप्रणाली है। उसमें समाज के समग्र पहलुओं के प्रावधिक पुर्ननिर्माण की धारणा निहित है। उसका उद्देश्य सम्पूर्ण समाज का सामजस्य पूर्ण और संतुलित विकास है।"[1]

जयप्रकाश नारायण का स्पष्ट मत था कि समाजवाद की स्थापना उत्पादन के साधनों के सामाजीकरण द्वारा की जा सकती है। समाजवाद ही विशाल जन समुदाय के आर्थिक शोषण की कूट-प्रक्रिया का अन्त कर सकता है। जयप्रकाश नारायण ने कराची कांग्रेस के मूल अधिकारों से सम्बंधित प्रस्ताव की आलोचना भी की थी। 1940 में जयप्रकाश नारायण ने रामगढ़ कांग्रेस में एक प्रस्ताव रखा जिसका आशय था कि वृहद उत्पादन संस्थानों पर सामुहिक स्वामित्व तथा नियंत्रण किया जाए।

जयप्रकाश नारायण के अनुसार "समाजवाद उन प्रमुख मूल्यों के विरूद्ध नहीं है, जिसका भारतीय संस्कृति ने पोषण किया।"[2] वस्तुओं को मिल बाँट कर उपयोग करना भारतीय संस्कृति का प्रमुख आदर्श रहा है। इसलिए यह आरोप उपहासप्रद है कि समाजवाद का सिद्धान्त पश्चिम से लिया गया है।

जयप्रकाश नारायण ग्राम जीवन के पुर्नसंगठन के पक्ष में थे। वे चाहते थे कि गांवों को स्वायतशासी तथा स्वावलम्बी इकाईयाँ बनाया जाये। इसके लिए भूमि सम्बंधी

---

1. जयप्रकाश नारायण-**टुवर्ड स्ट्रगल**, यूसुफ मेहरअली द्वारा संपादित, पृष्ठ 65.
2. वही, पृष्ठ 85-86.

कानूनों में आमूल परिवर्तन करने की आवश्यकता थी। भूमि पर किसान का वास्तविक स्वामित्व होना चाहिए।

जयप्रकाश नारायण ने सहकारी खेती का समर्थन किया उन्होंने कहा कि वास्तविक समाधान यह है कि उन सभी निहित स्वार्थो का उन्मूलन कर दिया जाए जिनसे किसी भी रूप में भूमि जोतने वालों का शोषण होता है, किसानों के सभी ऋण निरस्त कर दिये जायें, जोतों को एकत्र करके सहकारी और सामूहिक फार्मों की तथा राजकीय और सहकारी ऋण व्यवस्था तथा हाट व्यवस्था और सहकारी सहायक उद्योगों की स्थापना की जाए। उनका कहना था कि सहकारी प्रयत्नों से ही कृषि और उद्योगों के बीच संतुलन स्थापित हो सकता है। जीवन में अनके राजनीतिक सामाजिक उतार चढ़ाव देखने वाले जे.पी.सन् 1954 में विनोबा के भूदान यज्ञ आन्दोलन में शामिल हो गए। उन्हें यह एक अंहिसक क्रांति लगी जिसने तेलंगाना के नरसंहार के विरोध में भारतव्यापी भूदान और भूमि सुधार आन्दोलन का रूप ग्रहण कर लिया। अपनी स्वतंत्र मानवतावादी सोच, अहिंसक क्रांति के दर्शन और समाजवादी विचारधारा के कारण वे भारत के इतिहास में अमर हो गये हैं।

मुलायम सिंह और समाजवाद

डॉ. लोहिया के पक्के अनुयायी, लोकतंत्र में पूर्ण आस्था रखने वाले मुलायम सिंह यादव किसान के बेटे हैं। इसीलिए उन्हें ग्रामीणों, किसानों, खेतिहर, मजदूरों, ग्रामीण युवाओं, शिल्पियों, विद्यार्थियों की समस्याओं की पूरी जानकारी और उनके हल की चिन्ता रहती है। वे वामपंथी दलों से तालमेल के समर्थक रहे हैं।

वे सन् 1967 से आम जनता की आवाज उठाने के लिए जूझ रहे हैं। जब भी अवसर मिलता है देश के योजनाकारों, अर्थशास्त्रियों और शिखर नेतृत्व के समक्ष इन समस्याओं की चर्चा करना वे नहीं भूलते। यह सभी जानते है कि भारतीय समाजवादी चिन्तन में आम जनता, कृषकों और मजदूरों की भलाई सर्वोपरि रही हैं। देश के अर्थतंत्र को सुधारने और औद्योगिक विकास को प्राथमिकता प्रदान की गई है। मुलायम सिंह यादव की यही व्यवहारिक सोच उनके समाजवादी दर्शन का आधार है। उनका राजनीतिक-सामाजिक संघर्ष

भरा जीवन समाजवादी चिन्तन की खुली किताब है।

उन्होंने कभी नहीं कहा कि वे राजनीतिक चिंतक है। राजनीति में किसी दर्शन या वाद के उद्‌गाता हैं वे तो अत्यंत सरल भाषा में जनता की बोली में लोगों की समस्यायें रखते हैं। परिस्थितियों के अनुसार आंकलन करते है और संसाधनों के चलते समाधान खोजते हैं।'वे सबसे कामयाब रचनात्मक समाजवादी हैं और चिंतन में गाँधी जी के विचारों के निकट है।'[1]

भारत की जनता के समन्वित विकास की दिशा में लोकतांत्रिक समाजवादी व्यवस्था को स्वीकार किया है। आज की दुनिया में तानाशाही को तिरस्कृत किया जाता है। मुलायम सिंह अपने पूर्व के भारतीय समाजवादी चिन्तकों की तरह लोकतंत्र में पूरी आस्था रखते हैं। उनका मानना है कि लोकतंत्र का समाज में वही स्थान है जो कि शरीर में आत्मा का है। गाँधी, आचार्य नरेन्द्रदेव से अशोक मेहता और नेहरू से लेकर लोहिया तक सभी के लोकतांत्रिक पद्धति को बहुभाषा-भाषी, हजारों जातियों में बँटे हुए भारतीय समाज लेकिन राष्ट्रीयता, सांस्कृतिक कलात्मक और भावनात्मक दृष्टि से एक भारत जननी की संतानों के लिए उपयुक्त माना है।

मुलायम सिंह यादव ने जातीयता को नकार दिया है। पिछड़े-उपेक्षित वर्गों के सामाजिक-आर्थिक विकास को गतिशीलता प्रदान की है। सदैव साम्प्रदायिकता, संकीर्णता, धार्मिक अलगाववादी प्रवृत्तियों से सावधान रहने की बात की हैं।

वे विपक्ष में हो या सत्ता में रहे हों, किसान और मजदूर वर्ग के आर्थिक और बौद्धिक उन्नयन के लिए प्रयास किए हैं। सच्चे अर्थो में वर्ग विहीन, जाति विहीन, समाजवादी समाज की संरचना के लिए उन्होंने अनेक व्यवहारिक कार्य किये हैं।

उन्होंने अपने बलबूते पर सन् 1992 में समाजवादी पार्टी को अखिल भारतीय स्वरूप प्रदान किया और ठोस राजनीतिक दल बनाकर खड़ा किया है। यह दल उत्तरप्रदेश में पिछले एक दशक में तीन बार वैकल्पिक सरकार बनाने में सक्षम रहा है। मुलायम सिंह यादव अपनी लोकतांत्रिक आस्था और समाजवादी विचारधारा को लेकर कभी भी मूल्यों और नीतियों से समझौता करने के लिए नहीं झुके। मार्क्सवाद और समाजवादी सिद्धान्तों तथा बोल्शेविक क्रांति से प्रभावित कांग्रेस के अन्दर क्रांतिकारी युवकों ने 1934 में कांग्रेस

1. कन्हैयालाल चंचरीक डॉ.नरेन्द्र चन्द्रा, ममता यादव -**समाजवादी चिंतन और मुलायम सिंह यादव**,पृष्ठ 161.

समाजवादी पार्टी बनाई थी, उसे बीसवीं सदी के अन्तिम दशकों और नई सहस्त्राब्दि में मुलायम सिंह यादव ने नया मार्ग दिखाया। नए आयाम, नये क्रांतिकारी स्तर दिये हैं। उसे संघर्षशील बनाया है।

केन्द्र में नरसिंह राव सरकार के बाद जब वे राष्ट्रीय राजनीति में आये, और देश के रक्षामंत्री भी बने तो उन्होंने अपनी समाजवादी सोच एवं प्रगतिशील विचारधारा को और भी व्यवहारिक बनाया।

भारत में समाजवाद के जन्मदाताओं और समाजवाद के लड़ाकू नेताओं की पुरानी पीढ़ी खत्म हो गई। बीसवीं सदी के अंतिम दशकों और नई सहस्त्राब्दि में भारत में सच्चे लोकतांत्रिक समाजवाद को जीवित रखने में मुलायम सिंह यादव की भूमिका को कोई नकार नहीं सकता। कांग्रेस नीतिगत तरीके से नेहरूवादी समाजवादी विचारधारा का पोषण करती रही है। यह नेहरू, इंदिरा गाँधी के जमाने से ही हो रहा है। जब वामपंथी ताकतें लोकतान्त्रिक संवैधानिक और लोकान्मुखी कार्यक्रमों के द्वारा जनता के निकट पहुँच रही हैं। लेकिन उनका वर्चस्व पश्चिम बंगाल, केरल तक ही है।

मुलायम सिंह यादव ने गाँधी, जयप्रकाश और डॉ. लोहिया के विचारों से बहुत कुछ सीखा है और उनके सपनों को क्रियान्वित करने की चेष्टा की है। लेकिन राजनीतिक जीवन में बढ़ते हुए हिन्दू राष्ट्रवाद और घोर जातिवादी दवाब ने उनकी आशाओं पर तुषारपात किया है। लेकिन वे अपने समाजवादी सिद्धान्तों और व्यापक लोकहित के कार्यों से कभी भी विमुख नहीं हुए। भारत में समाजवाद का ध्वज उनके कारण लहराता दिखाई देता है। साम्प्रदायिकता, जातीय कट्टरता और जातिवाद समाजवाद के रास्ते में काँटे की तरह हैं निसन्देह मुलायम सिंह यादव एक नए समाज की रचना के लिए पूरे प्रदेश में ही नहीं देश की राजनीति में क्रांतिकारी दस्तक दे रहे हैं। वे जातिवादी, सम्प्रदायवादी और अलगाववादी ताकतों के नापाक गठबन्धन से जनता को बराबर आगाह करते आ रहे हैं।

अध्याय–तीन

डॉ. लोहिया के राजनीतिक विचार तथा भारतीय समाज

(अ) धर्म और राजनीति

(ब) राजनीति और जनशक्ति

(स) राजनीतिक व्यवस्था और संस्थान

(द) स्वतंत्रता व समानता

(य) राजनीति में ग्रामीण व स्त्री

(र) जातीय राजनीति

(ल) भारतीय समाज की दशा और दिशा

3

डॉ. लोहिया के राजनीतिक विचार तथा भारतीय समाज

डॉ. लोहिया उन राजनीतिज्ञों में से एक थे जिन्होंने राजनीतिक परंपराओं को भारतीय संस्कृति और सभ्यता से सम्बद्ध करते हुए रचनात्मक राजनीति की दिशाएं उद्घाटित की थीं। उनका चिंतन व्यवहारिक राजनीति का पक्ष सुदृढ़ करता था। लोकसभा में और लोकसभा से बाहर रहकर उन्होंने सदैव यह प्रयत्न किया कि राजनीति को खुशहाल जीवन की ओर विवर्तित किया जाए। यही कारण है कि उन्होंने पाश्चात्य समाजवाद की अपेक्षा भारतीय समाजवाद की संरचना में सदैव नवीन सिद्धान्त दिये। भारतीय राजनीति के पाँच आधारभूत तत्व हैं - लोकतंत्र, विकेन्द्रीकरण, समानता अंहिसा तथा समाजवाद। इन पाँच तत्वों का अब तक कोई सुदृढ़ तथा सुनिश्चित रूप सामने नहीं आ सका था। परन्तु डॉ. लोहिया ने इन पाँचों तत्वों को व्यवहार के माध्यम से प्रकट होने के लिए जिन सिद्धान्तों को निरूपित किया था वे सिद्धान्त ही रचनात्मक राजनीति के आधार स्तम्भ सिद्ध हुए। उन्हीं के आधार पर उन्होंने विश्व-मानवता, संस्कृति, सभ्यता तथा व्यवस्था की पहल की है। वे एकतामूलक धर्म संभावनाओं को महत्व देते थे। उनकी राजनीति जीवननीति का एक अंग थी, उससे भिन्न कुछ और नहीं।

डॉ. लोहिया ने जिस समय राजनीति में प्रवेश किया था, विश्व की अनेक घटनाओं से लोहिया ने समझा था कि मनुष्य विचारों का मुख्य केन्द्र है। पूर्व अर्द्धशास्त्रियों ने धन को महत्व दिया था। परिवर्तनशील समाज में उनकी आलोचना हुई। राजनैतिक व आर्थिक विचार धारणायें विरोधी होते हुए भी मनुष्य को सभ्यता के प्रांगण में पहुँचा रही थीं परन्तु उन्होंने देखा कि समाज में ऊँच-नीच का भेद, होने वाले अन्याय, बड़े नगरों की गंदगी, असमान्य आय वितरण, ग्रामीण का निम्न जीवन स्तर आदि देखकर लोहिया का मन करूणा से भर गया। उन्होंने कहा था कि "इस घिनौने वर्तमान के विरूद्ध हमारा युद्ध अविराम चलना चाहिए।"[1]

---

1. राममनोहर लोहिया - **भारत चीन और उत्तरी सीमायें**, प्रस्तावना से

डॉ. लोहिया जिस समय भूमिगत थे। स्वतंत्रता आंदोलन के सिलसिले में इसी आंदोलन के दौरान उन्होंने भारतीय कम्युनिस्ट की आंदोलन विरोधी भावना देखी तभी उन्होंने मार्क्सवाद पर गंभीर चिंतन किया। भूमिगत स्थिति में भी उन्होंने "इकॉनामिक्स आफ्टर मार्क्स" नामक पुस्तिका लिखी।

तत्कालीन राजनैतिक व आर्थिक स्थितियाँ और भारत जैसे अर्द्ध विकसित अवस्था वाले देश में जहाँ वर्ग जाति, व्यवस्था अपनी विकास की सीमा में है, मार्क्स के सिद्धान्त भारतीय पृष्ठभूमि में सही नहीं होगें। उनकी राय थी कि अर्द्धविकसित पिछड़ी हुई तीसरी दुनिया के लिए मार्क्सवादी कार्य प्रणाली व व्यवस्था उपयुक्त नहीं है। मार्क्सवाद की कमियाँ बताकर उन्होंने समाजवाद की रचना की।

डॉ. लोहिया के समाजवादी कार्यक्रम में तीव्रता आलोचना में कटुता का ऊँचा स्तर, न्यायिक प्रश्नों पर जिद करने का स्वभाव, हर बुराई और अन्याय का कठोर और तीखे शब्दों में प्रहार तथा नीतियों में उग्रवादिता के पीछे सरकार द्वारा किये गये उपेक्षा के व्यवहार से बनी हुई इनकी मनोदशा थी। स्वतंत्र भारत के एक अकेले ऐसे नेता थे, जिन्हें अपने जीवनकाल में सबसे अधिक जेल यात्राएँ करनी पड़ी।

डॉ. लोहिया का विचार था कि राजनीति में व्यक्ति को उदारता सीखना चाहिए और अपना कर्म सद्भाव के साथ करना चाहिए। राजनीति का लक्ष्य लोकप्रियता प्राप्त करना नहीं होना चाहिए। उन्हें किसी विशेष वर्ग, समुदाय, धर्म व प्रदेश के हितों को ध्यान में रखकर या स्वयं अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए सामान्य जनता का अहित नहीं करना चाहिए। लोहिया ने कहा -"आज की राजनीति की सबसे बड़ी चीज यह हो गई है, आप लोग उसके शिकार हैं, वह यह कि कहीं ऐसा काम न करो जिससे लोकप्रियता खत्म हो जाये। तब फिर राजनीति में क्यों आये।"[1]

डॉ. लोहिया का सुझाव था कि जिन लोगों को लोकप्रियता की परवाह है उन्हें राजनीति में प्रवेश नहीं करना चाहिए क्योंकि राजनीति में कई ऐसे समय आते हैं, जबकि लोकप्रियता पर बट्टा लगता है। राजनीति में बदनाम भी हो सकते हैं, अगर कुछ परिवर्तन करना चाहोगे तो लोग मारते-पीटने भी आ सकते हैं। महात्मा गांधी तक को लोग लाठी

---

1. राममनोहर लोहिया - **सच, कर्म प्रतिकार और चरित्र निर्माण आवाह्न,** पृष्ठ 21.

लेकर मारने के लिए दौड़ पड़ते थे। यह निश्चित है कि जो राजनीतिज्ञ समाज को बदलना चाहेगा, तो लोगों का गुस्सा उसके ऊपर उतरेगा। उनके अनुसार ''आज जो हिन्दुस्तान का युग है इसमें आदमी अपनी लोकप्रियता को हमेंशा बचाकर रखना चाहता है और तब कुछ है और तब कुछ करता है में समझता हूँ यह सबसे खतरनाक चीज है।''[1]

'वे क्रांतिकारी संगठन बनाना चाहते थे।'[2] उसमें उलट पुलट होगी, इसी से विकास का मार्ग खुलेगा। लोहिया चाहते थे पहले लोगों का मन तो हिले, उनमें विश्वास तो जगे कि अंदर से भी राज्य को बदला जा सकता है।

डॉ. लोहिया को 'सेक्युलरिज्म' शब्द के प्रयोग पर आपत्ति थी।[3] हिन्दू-मुसलमान सम्बंधों पर धर्म को लेकर इन शब्दों का प्रयोग विशेषतया चल रहा है। धर्मनिरपेक्षता 'सेक्युलरिज्म' का अर्थ है- लोकवादी। लोकवादी होने का अर्थ हिन्दु-मुस्लिम मसले से क्या है? इससे तो यही ध्वनित होता है कि हिन्दु-मुस्लिम एकता भंग हो और वे परस्पर उलझ जाएँ। वे परस्पर संदेह की दृष्टि से देखें। यदि संविधान लागू होने के बाद से आज तक के भारतीय इतिहास पर एक नजर डालें तो यह बात सिद्ध हो जाती है कि हिन्दु- मुसलमान आपस में दिन-रात झगड़ते-लड़ते जा रहे हैं। जबकि डॉ. लोहिया चाहते थे कि दोनों में गहरा मेंल पनपे। दोनों एक हों। तभी हिन्दुस्तान सही अर्थों में सामने आ सकेगा।

यथार्थतः 'धर्मनिरपेक्षता' शब्द का प्रयोग बड़ा बेमानी है। इसका संविधान में उल्लेख नहीं होता तो बहुत ठीक होता। 'निरपेक्षता के सामने न हिन्दू रह पाता है, न मुसलमान जबकि हिन्दु और मुसलमान बराबर रहेगा। डॉ. लोहिया का कहना था कि 'साम्प्रदायिक समरसता' के माध्यम से हिन्दू और मुसलमान दोनों एक हो सकते हैं। धर्म के आधार पर दोनों में वह समझ दृष्टि पैदा करती है जिसमें सेवा-समरसता की तड़प है, त्याग की गरिमा है और अपनाने की ललक है।

डॉ. लोहिया की मान्यता थी कि लोकभाषा के बिना लोकतंत्र अधूरा ही नहीं अपितु पंगु भी है। 'अंग्रेजी हटाओं' आंदोलन उन्होंने इसीलिए शुरू किया था। उनका कहना था कि ''अंग्रेजी का सार्वजनिक इस्तेमाल फौरन बंद हो जाना चाहिए। विधायिकाओं, सरकारी दफ्तरों, अदालतों, दैनिक समाचार पत्रों और नाम-पतों में अंग्रेजी का इस्तेमाल नहीं होना

---

1. डॉ. राममनोहर लोहिया - **क्रांति के लिए संगठन भाग - 1,** पृष्ठ 197.
2. डॉ. लोहिया - **सरकार से सहयोग और समाजवादी एकता,** पृष्ठ 15.
3. राजेन्द्र मोहन भटनागर - **अवधूत लोहिया,** पृष्ठ 219.

चाहिए और अंग्रेजी की लाजिमी पढ़ाई बंद होनी चाहिए।"[1] कुछ राजनीतिज्ञों ने उन पर यह आरोप लगाया है कि इसीलिए दक्षिण में हिन्दी का विरोध शुरू हुआ था। यदि डॉ. लोहिया आंदोलन न उठाते तो दक्षिण में हिन्दी का विरोध नहीं होता। दक्षिण ने भाषा को लेकर जवावी हमला किया। वस्तुतया यह तथ्य निराधार है। कारण डॉ. लोहिया ने दक्षिण भारतीय भाषाओं का कभी विरोध नहीं किया था। वे समझते थे, भाषा का माध्यम एकता, सभ्यता, संस्कृति, समानता और चरित्र के निर्माण में अत्यधिक सहयोग करता है। उनका विरोध अंग्रेजी के सार्वजनिक क्षेत्र में प्रयोग पर था। दक्षिण में हिन्दी का विरोध इस निर्णय की कार्यान्विति के विलंब का प्रतिफल है, जिसके द्वारा लगातार हिन्दी की उपेक्षा की जाती रही और सत्ता पक्ष अपने राजनीतिक स्वार्थ में लगा रहा।

डॉ. लोहिया का विचार था कि राजनीति का उद्देश्य देश की समस्त जनता का कल्याण करना होना चाहिए। सभी व्यक्तियों को कानून के समक्ष समानता व स्वतंत्रता का अधिकार होना चाहिए। लोहिया कुछ प्रशासनिक अधिकारियों और सरकारी नौकरियों में सम्पत्ति के सम्बंध में विशेषाधिकार का विरोध करते थे। वे मानते थे कि उच्च्व नौकरियों में मिलने वाले विशेषाधिकार जैसे - निःशुल्क निवास, यातायात भत्ते आदि इन लोगों को वेतन के अलावा और कोई विशेषाधिकार नहीं दिया जाना चाहिए। उन्होंने कहा- "में जब यह सवाल उठाता हूँ कि इन नियमों को खत्म करो, लोक विभाग के इन मकानों को खुला करो, सबको वहाँ रहने दो सबको वहीं रहना चाहिए और परतंत्रता के कानून बदलने चाहिए, तो सत्ताधारी नाराज होते हैं। जब कई लोग जाकर वहाँ रहना शुरू करेगे तो गिरफ्तार होंगे, जेल जायेंगे तब गलत कायदे-कानून टूटेंगे।"[2]

डॉ. लोहिया का विचार था कि बड़े अधिकारी विशेषाधिकारों के समाप्त करने के प्रस्ताव का विरोध करेगें क्योंकि इनके समाप्त होते ही उनकी सारी सुविधाओं का अंत हो जायेगा। वर्तमान समय में हिन्दुस्तान में बड़े प्रशासनिक अधिकारियों को रहने की सुविधा, शान-सुविधा, ठाठबाट की सुविधा, हर तरफ से आदर सम्मान की सुविधा प्राप्त होती है। करोड़ों रूपयें इनकी शान-शौकत के लिए खर्च किये जाते हैं। दूसरी ओर हिन्दुस्तान में साधारण व निम्न वर्ग है जो आवश्यक जरूरतों को भी पूरा असमर्थ रहता है। हिन्दुस्तान में प्रत्येक वर्ग के लिए समान नियमों की व्यवस्था नहीं है। लोहिया के अनुसार- "छोटे और बड़े

---

1. डॉ. राममनोहर लोहिया - **भाषा**, पृष्ठ 75-76.
2. डॉ. राममनोहर लोहिया - **निजी और सार्वजनिक क्षेत्र**, पृष्ठ 5.

का फर्क हिन्दुस्तान में बड़ा जबर्दस्त है और खाई बड़ी भारी है। इसके कारण हर एक कायदा-कानून, नियम बिगड़ा हुआ है। सरकार का सब इन्तजाम बिगड़ गया है।"[1]

डॉ. लोहिया का विचार था कि अपराध के सम्बंध में भी छोटे व बड़े लोगों के लिए समान कानून की व्यवस्था होनी चाहिए। मधुलिमये ने लिखा है कि "स्व.डॉ. राममनोहर लोहिया हमेंशा कहते थे नजरबंदी कानून जिसकी विशेष बुराई होती है बड़े लोगों के खिलाफ कानून लागू किया जाता है मगर जो बहुत गरीब लोग हैं, उनके लिए मीसा या नजरबंदी की जरूरत भी नहीं पड़ती है उनके लिए साधारण कानूनों का दुरूपयोग ही पर्याप्त हो जाता है।"[2]

डॉ. लोहिया ने राजनीति के द्वारा आम जनता को देश की प्रगति के साथ साझीदार बनाना चाहा था। परन्तु सत्ताधारी दल जिस तरह की राजनीति कर रहा था, उससे वे अत्यधिक पीड़ित थे। उनके विद्रोही होने का भी यह कारण था। वे राजनीति में क्रांति को नहीं विद्रोह को देखना चाहते थे और वे उसके लिए सवज्ञा आंदोलन पर विश्वास करते थे। उनकी राजनीतिक दृष्टि अत्यन्त व्यापक थी। वे समूचे विश्व की सोचते थे और चाहते थे कि समग्र विश्व परस्पर मित्रवत् बने, समस्त मानवजाति को दुःख व यातनाओं से मुक्ति मिलें और एक नया समाज जन्म लें। प्रशासन जनोन्मुख हो और सरकारी तथा गैर सरकारी योजनायें जनता के लिए हों- विशेषतया उनसे किसान व मजदूर को लाभ मिले और पूँजीवादी व्यवस्था का दिनोंदिन ह्यास हों। जब राजनीति पूँजीवादियों की गोद में जा बैठती है तब समाज में विषमतायें बढ़ती हैं और आदमी का जीवन दूभर हो जाता है। डॉ. लोहिया गरीबी मिटाने के लिए निरन्तर प्रयत्न करते रहे थे। उनके लिए समाज व्यवस्था संतुलन नहीं खोये और उसमें कोई कमजोर पक्ष नहीं रहे, यह उनके राजनीतिक कर्म का मर्म था। प्रशासन से उन्हें शिकायत थी कि वह अभी तक स्वतन्त्रता पूर्व जैसा बना हुआ है और उससे आम आदमी को कोई लाभ नहीं है। उसमें यथोचित सुधार होना उनकी दृष्टि में जरूरी था।

डॉ. लोहिया जनवादी राजनीतिज्ञ थे। उनका जनवाद समाजवाद था। वे मानते थे कि समाज के बिना व्यक्ति का और व्यक्ति के बिना समाज का विकास नहीं हो सकता है। दोनों परस्पराश्रित हैं। जब तक जन भूखा है या अधभूखा है तब तक राजनीति की कर्मनीति

---

1. डॉ. राममनोहर लोहिया - **निजी और सार्वजनिक क्षेत्र**, पृष्ठ 6.
2. मधुलिमये - **समस्यायें और विकल्प**, पृष्ठ 70.

जन-जन को स्वालम्बी बनाने की दिशा में पहल करने की होनी चाहिए। राजनीति से सेवा भावना का उदय होना ही श्रेयस्कर है। राज्य करने की नीति बेमतलब है यदि जन शोषित तथा उपेक्षित है। जन-चेतना को जार्गत करना ही राज्यधर्म है, राजनीति है। वे राजनीति को कर्मवादी बनाने के पक्ष में अंत तक कर्म करते रहें थे। कर्मवाद ही राजनीति की रीढ़ की हड्डी है, ऐसी उनकी मान्यता थी।

डॉ. लोहिया की राजनीति स्वार्थरहित थी क्योंकि उन्हें सत्ता से मोह नहीं था और न लोकप्रियता प्राप्त करने की इच्छा रखते थे। उन्होंने दूसरे दल के व्यक्तियों को समान कार्यक्रम लेकर कार्य करने को इच्छुक हुए उनको सहयोग प्रदान किया। वे सिद्धांतवादी थे। वे राजनीति में कभी अपने सिद्धांतों से विचलित नहीं हुए। उन्होंने कहा- "में एक कैदी हूं। सिद्धांत का कैदी हूँ। कुछ समझा हूँ। कहीं ऐसा काम नहीं करता जिससे बाद में लोग कहें कि देखा इसने अपने संविधान को तोड़ा।"[1]

डॉ. लोहिया का विश्वास था कि राजनीतिक व्यवस्था में उन्हीं व्यक्तियों को आना चाहिए जो उत्तम लक्ष्य की प्राप्ति के सिद्धांतों को अधिक महत्व देते हैं। राजनीतिज्ञों को देश की समस्याओं को सुलझाने के लिए सत्त संघर्ष करना चाहिए। उन्होंने सत्त संघर्ष के बारे में कहा है कि -"कोई चीज न हो पावे तो उस पर दुःखी मत हुआ करों, दूसरे मार्ग पर चल पड़ो। कभी रचनात्मक पर चल पड़ो। कुछ सफलता हासिल हुई, कभी मामला ठप्प हो रहा है तो आन्दोलन पर चल पड़ो। प्रचार पर चल पड़ो। विचार और बैठक पर चल पड़ो। कोई न कोई, कुछ न कुछ करते रहो।"[2]

डॉ. लोहिया मानते थे भारतीय राजनीति में चारों ओर झूठ का वातावरण है, सच्चाई की कोई परवाह नहीं करता। सभी अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए कार्य करने में लगे रहते हैं। राष्ट्र के हितों को ध्यान में रखकर कोई भी व्यक्ति कार्य नहीं करना चाहता। वे राजनीति को स्वार्थ से ऊपर उठाना चाहते थे। वे मानते थे कि दलदल की राजनीति में कोई अच्छा सिद्धांत कायम या स्थिर नहीं रह सकता।

डॉ. लोहिया ने अपने विचारों को देश की परिस्थिति के अनुसार ही रखा। वे एक राष्ट्रवादी नेता थे। उनकी राजनीतिक और राष्ट्रीय नीतियाँ देश के हित में रहती थीं। उन्होंने

1. डॉ. राममनोहर लोहिया - **क्रांति के लिए संगठन भाग -1**, पृष्ठ 197.
2. डॉ. राममनोहर लोहिया - **देश विदेश नीति के कुछ पहलू**, पृष्ठ 61.

कहा- "मेंरा ही कर्तव्य है कि कभी देश-विदेश नीति के मामले में हिन्दुस्तान मुसीबत में फंसे तो हमारे जैसे आदमियों से जितना बन पड़े हम जनता के मन को मजबूत रखेंगे। देशभक्ति के रास्ते में डिगने नहीं देंगे। यही हमारा कर्त्तव्य है उस रास्ते चलते हुए जो कुछ भी तकलीफ, त्याग, जिंदगी और मौत का सामना करना पड़े तो उसके लिए खुद भी तैयार रहेंगे।"[1]

डॉ. लोहिया सिद्धांतवादी राजनीतिज्ञ थे। वे जीवन भर अपने सिद्धांतों पर चले। उनसे डिगे नहीं न उन्होंने किसी भी सूरत में अपने सिद्धांतों से समझौता किया चाहे उससे उन्हें घाटा ही क्यों न हुआ हो। यही कारण है अनेक बार उनके घनिष्ठ मित्र भी उनका साथ छोड़कर अलग हो गये और वे मौन बने रहे परन्तु उन्होंने कभी गलत समझौता नहीं किया और न वे अकेले रह जाने के परिणाम से कभी घबरायें।

डॉ. लोहिया देश के बड़े नेताओं, धनपतियों तथा उच्च प्रशासनिक अधिकारियों तथा देश की बहुसंख्यक गरीब जनता के बीच जो खाई बन चुकी है, उससे अधिक चिंतित थे। इसी कारण उन्हें यह सोचना पड़ा कि भारत जैसे गरीब देश में किस प्रकार की राजनीतिक व्यवस्था होनी चाहिए। उनके राजनीतिक विचार न तो कार्लमार्क्स से मिलते थे और न ही पूर्णरूपेण गांधी से उनकी विचारधारा अपने में एक अलग ही विचारधारा थी जिसे हम लोहिया का समाजवाद कह सकते है। यह एक नवीन दर्शन है।

समाज में व्याप्त वर्ण व जातिगत विषमता डॉ.लोहिया की विचारधारा से मेंल नहीं खाती थी। वह चाहते थे कि समाज में समानता का वातावरण बने और इसीलिए वर्ण तथा जातिगत भेदभाव जो परंपरा से चले आ रहे हैं, समाप्त हो, तभी देश में विकास की गति मिल सकती है। इसके लिए उन्होंने जीवनभर संघर्ष किया और भेदभाव रहित तथा रंग-भेद विहीन राजनीति के स्वरों को उभारने में उन्होंने देश को एक नया तथा स्वतंत्र वातावरण देना चाहा। उन्होंने चाहा कि ऐसी राष्ट्रीय लहर देश में पैदा हो जिसका सम्बंध विश्व मानव से स्वतः सम्बद्ध हो जाये और वैज्ञानिक विकास से मानवता लाभांवित हो सके।

डॉ. लोहिया प्रजातांत्रिक समाजवाद के पोषक थे अतः जनशक्ति के प्रबल समर्थक थे। उनका विश्वास था कि जिस प्रकार स्वचेतना की भावना से मुनष्य अपना पूर्ण

---

1. डॉ. राममनोहर लोहिया - **भारत चीन उत्तरी सीमायें,** पृष्ठ - 177.

विकास करने में समर्थ होता है उसी प्रकार स्वतंत्रता जनशक्ति राज्य को विकसित नहीं करती अपितु सशक्त बनाती है। वे दंड व्यवस्था के समर्थक थे किन्तु वह विधि-विधान के अनुसार होनी चाहिए। अतः लोहिया का विचार था। कि राज्य में चाहें आंतरिक मामले हो अथवा बाह्य दोनों में शक्ति का प्रयोग जन-इच्छा से करना चाहिए।

जन-इच्छा का वास्तविक प्रतिनिधित्व व्यवस्थापिका करती है। इस आधार पर डॉ. लोहिया ने हमारे देश की व्यवस्थापिका की कड़ी आलोचना की। उनका कहना था कि भारत में राजनीतिक स्थिति दयनीय है। हम एक नेता का प्रारम्भ में चुनाव करते हैं। बाद में वह इतना सशक्त हो जाता है। उसका परिणाम यह होता है कि हमें अपने निर्णय लेने में उसकी ओर ताकना पड़ता है। यह स्थिति हमारे अस्तित्व को समाप्त कर देती है। अतः उनका कहना था कि ''शक्ति का स्रोत नीचे से ऊपर की ओर बहना चाहिए न कि ऊपर से नीचे की ओर।''[1] हमारे देश में स्थिति विपरीत है। इसको बदलने के लिए वे जन जाग्रति पैदा करना चाहते थे। वे ऐसे काम हाथ में लेना चाहते थे जिनका मानव जीवन पर सीधा प्रभाव पड़ सके और उसके विचारों में क्रांतिकारी परिवर्तन आ सकें। ताकि फिर नेता जनता से आदेश प्राप्त कर ही आगे कार्य कर सकें, मात्र नेता जन-बल का स्वामी न बन जाए।

डॉ.लोहिया ने इस संदर्भ में दो स्तम्भों वाली व्यवस्था (केन्द्र व राज्य) के स्थान पर चार स्तम्भों वाली योजना प्रस्तुत की जिसे उन्होंने चौखंभा योजना के नाम से संबोधित किया। इस दृष्टि से वे देश में आर्थिक तथा राजनीतिक विकेन्द्रीकरण के पक्ष में थे।

डॉ. लोहिया के राजनीतिक चिन्तन में चौखम्भा राज्य की योजना एक महत्वपूर्ण स्थान रखती है। 'चौखम्भा राज्य की इस योजना के माध्यम से उन्होंने केन्द्रीकरण और विकेन्द्रीकरण की परस्पर विरोधी अवधारणाओं के मध्य समन्वय और संतुलन स्थापित करने का प्रयास किया है।'[2] इस योजना के अन्तर्गत गांव, मण्डल (जिला) प्रान्तीय और केन्द्रीय सरकार के महत्व और अस्तित्व को बनाये रखते हुए उन्हें एक कार्यमूलक संघीय व्यवस्था के अन्तर्गत एकीकृत कर दिया जायेगा। तथा वे अपने-अपने जिम्में के उत्तरदायित्वों का निर्वाह करते हुए स्वायत्ता के आधार पर एक सूत्र में बंधे रहेंगे। यह चौखम्भा राज्य की योजना सिर्फ विकेन्द्रित प्रशासन की योजना नहीं है वरन आर्थिक शक्ति के विकेन्द्रीकरण की योजना भी है। अतः प्रशासन के संचालन के साथ-साथ इसमें उत्पादन के साधनों का

1. राजेन्द्र मोहन भटनागर-**अवधूत लोहिया,** पृष्ठ -233.
2. पुखराज जैन, डॉ. जीवन मेहता-**राजनीति विज्ञान,** पृष्ठ 197.

स्वामित्व और संचालन कृषि, विकास, शिक्षा, स्वास्थ्य आदि सभी योजनाओं का कार्यान्वयन सम्मिलित है। डॉ.लोहिया द्वारा प्रतिपादित यह विकेन्द्रित चौखंभा राज्य की योजना गांधीवादी ग्राम स्वराज्य योजना की मूर्तरूप है। तथा इसका प्रमुख अंग ग्राम पंचायत है तथा वहीं से जिला प्रान्तीय और केन्द्रीय प्रशासन अपनी शक्ति और प्रेरणा प्राप्त करता है। अतः यह एक शुद्ध पंचायती राज्य का साकार रूप है तथा ग्राम पंचायत सम्पूर्ण प्रशासन में बुनियादी महत्व रखती है। डॉ. लोहिया का मत था, ऐसे राज्य में ही सभी नागरिकों को प्रजातांत्रिक भागीदारी सम्भव हो सकती है। यह योजना उनके अनुसार सिर्फ स्वायत्तशासी स्वावलम्बी एंव जीवन्त गांव की योजना है।

डॉ. लोहिया राजनीतिक विकेन्द्रीकरण को राजनीतिक समता और सम्पन्नता का द्योतक मानते थे और इसलिए राजनीतिक केन्द्रीकरण के विरूद्ध थे क्योंकि ऐसी व्यवस्था में शासक, सेठ और सरकारी अधिकारियों का एक जन शोषक त्रिकोंण स्थापित हो जाता है। तथा सामान्य व्यक्ति उनके उत्पीड़न का शिकार हो जाता है। ऐसी स्थिति में जनता शासन के हाथ में एक कठपुतली मात्र रहकर अपंग हो जाती है। जिससे प्रजातांत्रिक व्यवस्था का मूल उद्देश्य ही नष्ट हो जाता है अतः ऐसे प्रजातन्त्र को सही प्रजातंत्र बनाने हेतु उनके द्वारा द्विस्तरीय प्रजातंत्रीय संघीय व्यवस्था की योजना प्रस्तुत की गयी तथा उसके अन्तर्गत चार समान शक्ति प्रस्तुत करते हुए उन्होंने कहा कि ''बड़े स्तर की राज-व्यवस्था देश के कूड़े को बुहारेगी और छोटे स्तर की राज-व्यवस्था गली मोहल्ले और गांव के कूड़े को साफ करेंगी।''[1]

प्रशासन में डॉ.लोहिया विकेन्द्रीकरण के समर्थक थे अतः उनका कहना था कि जिलाधीश का पद समाप्त कर उसके सारे अधिकार मंडल अधिकारियों को सौंप दिये जाये। इतना ही नहीं विधायी शक्ति का विकेन्द्रीकरण कर दिया जाना चाहिए।

डॉ. लोहिया की धारणा थी कि राज्यों से राज्यपाल पद भी समाप्त कर दिया जाये। न्याय व्यवस्था में भी परिवर्तन होना आवश्यक है, ताकि जनता को सस्ता व शीघ्र न्याय मिल सकें। वे यह भी चाहते थे कि वर्तमान कानूनों में परिवर्तन कर या उनमें संशोधन कर लोकतंत्र के अनुकूल बनाया जाये। प्रशासन के खर्च को कम करने के लिए दो-तीन राज्यों के बीच एक न्यायालय होना चाहिए। साथ ही एक लोकसेवा आयोग से काम चलाया जा सकता है। इससे समानता रहेगी और न्याय भी हो सकेगा।

---

1. पुखराज जैन, डॉ. जीवन मेहता-**राजनीति विज्ञान** पृष्ठ 198.

डॉ. लोहिया की धारणा थी कि किसी भी देश का विकास उसकी नागरिक क्षमता तथा चेतना पर निर्भर है। नागरिक क्षमता विकेन्द्रित शासन के बिना संभव नहीं है। अतः व्यवस्थापिका तथा कार्यपालिका सम्बंधी शक्तियों का विकेन्द्रीकरण करके ही देश का निर्माण करने में सामान्य नागरिक को सहयोगी बनाया जा सकता है। इस प्रकार चौखंभा योजना के द्वारा समुदाय के द्वारा समुदाय के लिए समुदाय का शासन स्थापित किया जा सकता है। जो कि डॉ. लोहिया की कल्पना का समाजवाद होगा।

अपनी चौखंभा योजना की सफलता के लिए डॉ. लोहिया का विचार था कि छोटी मशीनों वाले उद्योग भूमि का समान पुर्नवितरण, स्वभाषा का विकास, रूढ़िवादिता का अंत, शिक्षा का प्रसार, जाति-बंधन विहीन समाज, नर -नारी समानता तथा समाज में बुराईयों की समाप्ति द्वारा चौखंभा योजना को सफल बनाया जा सकता है।

लोहिया राजनीति में सैद्धांतिक दृढ़ता पर बहुत बल देते थे। 'उन्हें चरित्र की वह राजनीति पंसद थी, जो कि नीति पर हो।'[1] उन्होंने राजनीतिक अस्थिरता व असंतुलन आदि के लिए सत्ता की राजनीति के बढ़ते व्यापक महत्व को जिम्मेंदार ठहराया। सत्ता की राजनीति होगी तो निःसंदेह चरित्र का ह्रास होगा और चरित्र का ह्रास होगा तो देश का पतन सुनिश्चित है। उससे लोकतंत्र को खतरा बढ़ता है जनता का लोकतंत्र पर से विश्वास भी उठता है। वे राजनीति को चरित्र से ऊपर नहीं मानते थे, प्रत्युत चरित्र की स्थापना हेतु राजनीति का प्रयोग होना उनकी दृष्टि में समाचीन था। सरकार का अपना एक चरित्र होता है। उसके चरित्र पर उसके मतदाताओं की दृष्टि स्थिर रहती है। वे उससे अपेक्षायें रखते हैं।

जब हम लोहिया की समग्र राजनीतिक आस्था की अवचेतना का संविश्लेषण करते हैं, तब यह निष्कर्ष निकलता है कि लोहिया की राजनीतिक विचारधारा मानव मूल्यों को संस्थापित करने में थी। वे स्वतंत्र राजनीतिक मूल्यों के पक्षधर थे। चरित्र को राजनीति में सर्वाधिक महत्व देते थे। अनीश्वरवादी होते हुए भी वे मानव में गहरी आस्था रखते थे। उसे ही वे ईश्वर मानते थे। उनका ईश्वर मनुष्य से अलग नहीं था। वे राजनीति को घटकों से ऊपर भेदभावों से परे, सामान्य जन का राज्य। उनकी सुविधाओं का ख्याल रखना तथा उन्हें जीने के नए मूल्यों के प्रति आस्थावान बनाना ही उनकी दृष्टि में लोकतंत्र था। वे राजनीतिज्ञ को लोकतंत्र का प्रहरी मानते थे, जिसे जनता व देश की अनुपालना करनी है

1. राजेन्द्र मोहन भटनागर - **अवधूत लोहिया** पृष्ठ 235.

और जिसमें शासक का अंह पैदा नहीं होने देना है। उनकी राजनीति किसी देश की सीमाओं में आबद्ध नहीं थी, अपितु अंतर्राष्ट्रीय राजनीति की संस्थापना की दृष्टि से विस्तृत एवं गहरी थी। वे समग्र विश्व तथा विश्व के समस्त उपेक्षित, शोषित तथा दीनहीन समाज के लिए जिए। राजनीति में डॉ. लोहिया ने एक ऐसी परंपरा को जन्म दिया था जो अभागों तथा शोषितों को अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करने की प्रेरणा दे सकती थी।

राजनीति को डॉ. लोहिया ने जीवन नीति बनाया था। जीवन-जगत के संबंधों की तरह उनके लिए राजनीति थी। कैसे सामतावादी समाज की स्थापना हो और उसके लिए राजनीति क्या करे, वे लगातार इसी महाप्रश्न पर विचार करते रहे थे। उनकी राजनीति समाजनीति पर आधारित थी। वे चरखे से फावड़े पर जनता को लाने के लिए प्रयत्नशील रहे थे। राजनीतिक दलों को वे राज्य या सत्ता की अपेक्षा समाजोन्नमुखी बनाना चाहते थे। तभी तो उन्होंने बुद्धिजीवियों से अपील की थी। वे राजनीति में आयें और वह भी विपक्ष की राजनीति में ताकि राजनीतिक प्रदूषण को दूर किया जा सके। बिना विपक्ष के सशक्त हुए सत्ताभिमुख दल जनोन्मुखी नीति को सामने लाने के लिए प्रति उत्सुक नहीं हो सकेंगे। जनशक्ति को जागृत बनाये रखना ही राजनीति का धर्म है।

(अ) धर्म और राजनीति :

धर्म और राजनीति पर लोहिया के विचार जानने से पहले आवश्यकता इस बात की है कि हम सर्वप्रथम धर्म और राजनीति को समझें।

धर्म :

भारतीय संस्कृति में धर्म का सर्वाधिक महत्वूर्ण स्थान रहा है। वास्तव में यदि देखा जाये तो यह भारतीय संस्कृति का प्राण है। अति प्राचीनकाल से धर्म को एक पवित्र प्रेरक तत्व के रूप में स्वीकार किया गया हैं। भारत भूमि अनेक धर्मों तथा सम्प्रदायों की क्रीड़ास्थली रही है। 'धर्म बुनियादी तौर पर एक ऐसा दर्शन है जो जीवन के लिए लाभदायक

हो और व्यक्ति तथा समाज के लिए एक ऐसी कोई सोच निकाले जो दोनों के लिए कल्याणकारी हों।'[1] मनुष्य सदा से संसारिक घटनाओं को बड़े रहस्यपूर्ण ढ़ंग से देखते आया है। कुछ समस्यायें ऐसी होती हैं जिनके ऊपर मनुष्य का यह विश्वास रहा है कि एक अलौकिक शक्ति है जो सृष्टि की समस्त घटनाओं का संचालन करती है। ऐसी शक्ति को प्रसन्न करके संकटों को टाला जा सकता है। अलौकिक शक्ति के प्रति इस विश्वास को ही मनुष्य ने "धर्म" के नाम से सम्बोधित किया है।

हिन्दू धर्म ग्रंथों के अनुसार "धर्म शब्द की उत्पत्ति शिष्टाचार के सूत्र अथवा मानवता के मूल तत्व से हुई है। धर्म का अर्थ "धारणाद् धर्म" अर्थात जिस आचरण से व्यष्टि तथा समष्टि अपने यथार्थ जीवन को धारण कर सकता है, उस आचरण विशेष का नाम धर्म है।"[2]

धर्म शब्द का प्रयोग यहाँ मनुष्य की ऐसी व्यापक अभिवृप्ति के लिए किया जा रहा हैं, जो उसके सम्पूर्ण जीवन को प्रभावित करती है, जिसका आधार तर्क बुद्धि न होकर श्रद्धा या आस्था है और जो ऐसी सर्वोच्च्व सत्ता अथवा शक्ति में विश्वास के फलस्वरूप उत्पन्न होती है जिसे मुनष्य अपने जीवन में सर्वाधिक मूल्य एवं महत्व प्रदान करता है और जिसकी वह उपासना व पूजा करता है।[3]

धर्म शब्द की उत्पत्ति संस्कृत भाषा के "धृ" धातु से मानी जाती है, जिसका अर्थ है - "धारण करना" अर्थात् किसी वस्तु को धारण करना व उसके अस्तित्व को बनाये रखना ही धर्म है। प्रायः धर्म को रिलीजन (Religion) शब्द का पर्याय माना जाता है। जो उचित नहीं है। रिलीजन लेटिन भाषा के रिलीजर (Religiar) से बना है, जिसका अर्थ है बांधना। अर्थात मनुष्य को ईश्वर से सम्बंधित करना। इस व्युत्पत्ति के आधार पर रिलीजन वह है जो आराध्य तथा आराधक, उपासक एवं उपास्य, व्यक्ति तथा समाज को बांधता है।

इस प्रकार रिलीजन एक निश्चित धर्म शास्त्र पर आस्था की ओर संकेत करता है और साथ ही निश्चित धार्मिक उत्सवों व संस्कारों, धर्म सम्बंधी क्रमिक पदों का संस्थाकरण और सामान्य बंधन की भावना का भी निहितार्थ है।

"धर्म को मानव समाज को संगठित और एकीकृत करने वाला तत्व मानते हैं।"[1]

---

1. असली भारत- हिन्दी मासिक पत्रिका, अप्रैल 1989, नई दिल्ली, पृष्ठ 15.
2. कल्याण (हिन्दी पत्रिका)-मई 1988, गोरखपुर, पृष्ठ 629.
3. डॉ. वेदप्रकाश शर्मा-**समकालीन विश्लेषणात्मक धर्मदर्शन**, पृष्ठ 8.
4. जार्ज सिमेल-**सोशियोलॉजी ऑफ रिलीजन**, पृष्ठ 8.

"धर्म आलौकिक शक्ति में विश्वास पर आधारित है जिसमें आत्मवाद और मानववाद दोनों सम्मिलित है।"[1]

धर्म में धारण करने का भाव है। यह वस्तुओं की व्यवस्था एवं संतुलन का नाम है, इसका अर्थ वस्तुओं के तत्वों को समन्वित रखने की शक्ति और क्रिया है। जीवन से आनन्द करने की प्यास ही धर्म है।

"धरति इति धर्मः"[2]

जो सबको धारण करता वह धर्म है। अर्थात् यथावत् पदार्थो को चिरकाल तक जो अपने परिवेश में सुरक्षित रखता है, उसके योग क्षेम को पूर्णतया वहन करता है उस अनुपम शक्ति को धर्म कहा जाता है।

"धर्मेण हीनाः मानव पशुभि समानाः।[3]

धर्म तो जीवन का शाश्वत् सत्य है, जीवन की नैतिक बुनियाद है, इसके बिना मानव पशु के समान है।

इस प्रकार श्रेष्ठ कार्य करना और उसके अनुसार आचरण करना ही धर्म है। और यही मोक्ष प्राप्ति का साधन है। धर्म वास्तव में समग्र सत्ता के प्रति सम्पूर्ण मानव की प्रतिक्रिया है। निश्चय ही इस सम्पूर्णता के भाव में तन-मन जीवन आ जाते हैं।

धर्म से मानव में सद्‌गुणों का विकास होता है। धर्म से ही मानव नैतिक कर्त्तव्यों का पालन एवं कर्म करने के लिए प्रेरित होता है। धर्म को मानने से व्यक्ति में यह भाव पैदा होता है कि विश्व में वह अकेला नहीं है, उसके साथ ईश्वर है जो समय-समय पर उसकी रक्षा करेगा। इस प्रकार धर्म का जीवन में महत्वपूर्ण स्थान है।

'मानव सभ्यता और संस्कृति के विकास में धर्मो की बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका रही है।'[4] अन्त में यही कहा जा सकता है कि धर्म व्यक्तिक समृद्धि तथा सामाजिक प्रगति के सूत्रधार बन सकते हैं। मानव धर्म से दूर नहीं जा सकता, क्योंकि धर्म के बिना जीना असम्भव है। अतः हम कह सकते हैं कि धर्म मनुष्य की वह आस्थामूलक सर्म्पण विशेष

1. ई.एच. हार्बल-**मेन इन दा प्रीमिटिव वर्ल्ड,** पृष्ठ 405.
2. डॉ. चमनलाल गौतम-**मनुस्मृति (टीका)**,पृष्ठ 32.
3. विष्णु शर्मा-**हितोपदेश,** पृष्ठ 32.
4. मनोरमा ईयर बुक- **केरल**, 1989, पृष्ठ 306.

अभिव्यक्ति है, जो सभी दृष्टियों से उच्चतम समझी जाने वाली किसी सत्ता या शक्ति में श्रद्धापूर्ण विश्वास के परिणाम स्वरूप उत्पन्न होती है।

राजनीति :

राजनीति शब्द अंग्रेजी भाषा के 'Politics' शब्द का हिन्दी अनुवाद है। यह शब्द ग्रीक भाषा के 'पोलिस' (Polis) शब्द से बना है जिसका अर्थ ग्रीक भाषा में नगर राज्य होता है।

पहले लेखकों ने सम्पूर्ण राज्य विज्ञान के लिए पॉलिटिक्स या 'राजनीति' शब्द का प्रयोग किया है। अरस्तु ने सर्वप्रथम 'राजनीति' शब्द का प्रयोग अपनी 'नगर राज्य' से सम्बंधित पुस्तक के शीर्षक के रूप में किया था। अरस्तु के पश्चात् जेलीनेक, सिजविक, हॉल्टजन-डॉर्फ आदि लेखकों द्वारा भी 'राजनीति' शब्द का प्रयोग किया गया । उनके अनुसार राज्य और सरकार से सम्बन्धित समस्त विषय सामग्रियाँ राजनीति के अन्तर्गत आती है।

वर्तमान समय में 'राजनीति' शब्द का प्रयोग अति संकुचित अर्थों में किया जाता है। राज्य के सैद्धांतिक पक्ष से उसका कोई सम्बंध नहीं रह गया है। उससे राज्य के केवल क्रियात्मक पक्ष का ही बोध होता है। आज 'राजनीति' से हमारा अभिप्राय उन राजनीतिक समस्याओं से है जो ग्राम, नगर, प्रान्त, देश और विश्व के सम्मुख हैं। इसी धारणा के कारण गार्नर ने कहा कि "राजनीति शब्द का अर्थ राज्य के कार्यकलापों के उस भाग तक सीमित है जो दैनिक गतिविधि के संचालन से सम्बंध रखता है।"[1]

गिलक्राइस्ट का विचार है कि "राजनीति का अभिप्राय आजकल सरकार की वर्तमान समस्याओं से होता है जो अक्सर वैज्ञानिक दृष्टि से राजनीतिक ढंग से होने की बजाए आर्थिक ढ़ंग की होती हैं। अब हम किसी मनुष्य के बारे में यह कहते है कि वह राजनीति में रुचि रखता है, तो हमारा आशय यह होता है कि वह वर्तमान समस्याओं, आयात-निर्यात कर प्रश्न, श्रम समस्याओं, कार्यकारिणी का विधानमण्डल के साथ सम्बन्ध और वास्तव में किसी अन्य ऐसे प्रश्नों पर रुचि रखता है, जिसकी ओर देश के कानून निर्माताओं को ध्यान देना आवश्यक हो अथवा ध्यान देना चाहिए।"[2]

अतः प्रत्येक देश की राजनीति दूसरे देश की राजनीति से भिन्न होती है क्योंकि

---

1. डॉ. एस.सी. सिंघल- **राजनीति सिद्धांत**, पृष्ठ 2.
2. आर.सी. अग्रवाल-**राजनीतिशास्त्र के सिद्धांत**, पृष्ठ 11.

हर देश के सामने भिन्न-भिन्न समस्याएं होती हैं। उदाहरण के लिए भारत की राजनीति इंग्लैण्ड, रूस, फ्रांस, अमेंरिका इत्यादि से बिलकुल भिन्न है क्योंकि भारत ने एक स्वतंत्र वैदेशिक नीति अपनाई है और 20 अक्टूबर, 1962 के चीनी आक्रमण के बावजूद हम किसी भी सैनिक गुट में शामिल होने के लिए तैयार नहीं हैं। इस हेतु हमारे राष्ट्रपति डॉ. राधाकृष्णन तथा भूतपूर्व प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने कई बार महत्वपूर्ण भाषण दिये। भारत सरकार ने उद्जन बमों के परीक्षणों का भी घोर विरोध किया है। भारत ने संसार में युद्ध की सम्भावना को कम करने के लिए पंचशील का मार्ग दिखाया है। यह दुख की बात है कि चीन ने चाहे तिब्बत के बारे में 1954 में सबसे पहले भारत के साथ पंचशील पर हस्ताक्षर किये थे परन्तु इसका पालन नहीं किया और आक्रमण करके 1962 तक लगभग 14,000 वर्ग मील क्षेत्र भारत से छीन लिया है। इससे पता चलता है कि चीन की राजनीति भारत से बिल्कुल भिन्न है। जहाँ भारत पंचशील, अंहिसा तथा तटस्थता की नीति में विश्वास करता है। रूस तथा पश्चिमी देशों की नीतियाँ भी एक दूसरे से भिन्न है। रूस साम्यवाद का पक्षपाती है, तो अमेंरिका, इंग्लैण्ड, फ्रांस इत्यादि पश्चिमी देश लोकत्रंत, पूँजीवाद, साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद के पक्षपाती है। दोनों गुट (रूसी तथा पश्चिमी या अमेंरिका) विस्तारवाद और सैनिक शक्ति में विश्वास रखते हैं, अतः वे दोनों नए से नए आणविक अस्त्र उत्पन्न करने की होड़ में लगे हुए हैं। इससे पता चलता है कि प्रत्येक देश की राजनीति एक दूसरे से भिन्न होती है।

सर फ्रेडरिक पोलक राजनीति के दो भाग करता है। सैद्धान्तिक राजनीति तथा प्रयोगात्मक राजनीति[2]

धर्म और राजनीति पर लोहिया के विचार :

डॉ. लोहिया ने राजनीति और धर्म की व्याख्या करते हुए कहा है कि ''राजनीति अल्पकालिक धर्म है और धर्म दीर्घकालिक राजनीति''[2] धर्म और राजनीति की इस अल्पकालिक और दीर्घकालिक व्याख्या में काल की आवधारणा नितान्त वैज्ञानिक हो जाती है। साथ ही इस अवधारणा के आधार पर राजनीति और धर्म में कोई द्वन्द नहीं रह जाता। सच, कर्म और मर्यादा में सच तो अल्पकालिक भी है और दीर्घकालिक भी इस क्षण भी है और सुदूर आने वाले भविष्य में भी रहेगा। उस सच के अवरूद्ध हो जाने पर जो तात्कालिक कर्म

---

1. आर.सी. अग्रवाल-**राजनीतिशास्त्र के सिद्धांत**, पृष्ठ 12.
2. लक्ष्मीकांत वर्मा- **समाजवादी दर्शन और डॉ. लोहिया**, पृष्ठ 158.

है वह धर्म का रूप ले लेता है और इस धर्म के पालन से जो परिणाम निकलता है वह व्यवस्था है। अल्पकालिक धर्म से जो व्यवस्था निकलती है वही राजनीति का रूप ले लेती है।

यह तो डॉ. लोहिया के अन्तर से निकला हुआ एक काव्य है जिसकी बड़ी लम्बी व्याख्या की जा सकती है। किन्तु समाजवादी राजनीति के संदर्भ में भी धर्म और राजनीति का एक परम्परागत अर्थ है। इन राजनैतिक और धार्मिक सम्बन्धों की एक व्याख्या मनुष्य और उसके विश्वास और सामाजिक दायित्व को दृष्टि में रखकर करने की और समझने की जरूरत है। धर्म का भी एक रूढ़ अर्थ है। और राजनीति का भी एक रूढ़ अर्थ है। इन रूढ़ स्वरूपों को भी जानना - समझना उतना ही जरूरी है जितना काव्य की सूक्ष्म संवेदना को। इसलिए डॉ. लोहिया जब धर्म और राजनीति को अल्पकालिक और दीर्घकालिक रूप में व्याख्यायित करते है तो वह काल के अनुभूत स्वरूप और मेंकेनिकल स्वरूप दोनों को सापेक्षता में ही देखते हैं। काल को वह चक्र के रूप में मानते ही हैं इसलिए वह दीर्घकाल और अल्पकाल की व्याख्या भी उसी संदर्भ में प्रस्तुत करते हैं। उनकी इस अवधारणा के आधार पर राजनीति और धर्म एक बिन्दु से दूसरे बिन्दु तक के बीच घटित होने वाली स्थितियां हैं।

राजनीति और धर्म जब एक क्रम में जुड़ते हैं तो वे राज्य और धर्म के रूप में ही व्याख्यायित किये जा सकते हैं। परम्परा से इसीलिए कुछ चिन्तकों ने धर्म को राज्य का अविभाज्य अंग मान लिया था। या राज्य धर्म प्रधान ही होते थे। कहीं-कहीं तो राज्य को धर्म प्रधान संस्थान के रूप में ही प्रतिष्ठित किया गया है। राजा इस पृथ्वी पर ईश्वर का प्रतिरूप है, राजा को प्रजा पर राज्य करने का ईश्वरी अधिकार है, राजा का व्यक्तित्व ही न्याय का मूलस्रोत है, आदि अवधारणायें आदिमकाल से मध्यकाल तक निरन्तर अनेक रूपों में व्याख्यायित होती रहीं है। एक प्रकार से देखा जाय तो पूरा मध्य युग ही इस विवाद में फसा दिखता है कि राज्य को धर्म प्रधान संस्था या राजनीति को धर्मनिरपेक्ष मान कर के केवल मानव मात्र के अभ्युदय की संस्था माना जाय। काफी दिनों बाद मेंकियावली ही एक ऐसा राजनीतिक चिन्तक है जिसने खुलकर कहा कि राजनीति अथवा राज्य को धर्म से अलग करना चाहिए।

डॉ. लोहिया व्यक्तिगत रूप से ईश्वर की सत्ता में विश्वास नहीं करते थे। लेकिन सर्वात्म भाव या सर्व भूतेषु में जब कुछ कहते थे, तो ऐसा बराबर लगता था कि वह प्रत्यक्ष रूप से ईश्वर को भले नकारें पर भाव रूप में वह ईश्वरमय है। भारतीय चिन्तन में ईश्वर या भगवान को पुरूषार्थ, ऐश्वर्य, यश, करूणा आदि का पुंज माना गया है। डॉ. लोहिया का यह सर्वात्मभाव का दर्शन अपने मूलभाव में 'में सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवन्त' का पर्याय बन जाता है। डॉ. लोहिया दो चीजों को संसार में बड़ा मोहक मानते थे और कहते थे- "ईश्वर की कभी मुझे जरूरत महसूस नहीं हुई और स्त्री की कृपा मुझे मिली नहीं, इसलिए में दोनों से वंचित ही रहा।"[1] उनके इस वाक्य में भी उनके दार्शनिक उदारवाद का ही प्रमाण मिलता है। ईश्वर की व्यक्ति सत्ता को वह भले ही न मानते रहे हों पर वे उसके सर्वव्यापक जगत को एक औपनिषदिक मर्म से देखते थे। सर्वात्मभाव में ईश्वर को अस्वीकार करते रहने पर भी उसकी व्याप्ति परोक्ष रूप में रहती ही है।

वस्तुतः भारत में रहकर डॉ. लोहिया ने जिस प्रकार राम, कृष्ण और शिव की व्याख्या की है, वह उनके गहरे चिन्तन की ही अभिव्यक्ति नहीं है, वह सर्वात्मभाव में मर्यादा, उन्मुकता और असीमता के गुणात्मक स्वरूप में उनके विश्वास की परिचायक है। इन निर्गुण अवधारणाओं को सगुण रूप देना वह जरूरी समझते थे। वह धार्मिक संप्रदायों की तो निन्दा करते थे, पर धर्म की बुनियादी जिज्ञासा और आध्यात्म तत्व चिन्तन के विरोधी नहीं थे। वह चाहते थे कि ईश्वर धर्म, आध्यात्म तथा दर्शन के निर्गुण रहस्य प्रधान क्षेत्रों में मनुष्य का मन और उसका दिमाग खूब रमें, पर सारी रमणीयता के बाद कर्म के स्तर पर उसके सगुण साकार भी होना चाहिए। केवल निर्गुण की व्याख्या और वैचारिक उड़ान के वे समर्थक नहीं थे। उनका कहना था कि भारतीय दार्शनिक चिन्तन की यही विडम्बना रही है। शंकराचार्य का अद्वैत दर्शन सृष्टि के हर जीव में उसी ब्रह्म की सत्ता की काव्यात्मक कल्पना तो करता है, पर जीव-जीव में भेद भी पैदा करता है। चातुर्वर्ण की अवधारणा में वही उदार दार्शनिक चिन्तन शूद्र को पशु से भी खराब जीवन व्यतीत करने के लिए विवश करता है।डॉ. लोहिया धर्म की इस विडम्बना के कटु आलोचक थे। उन्होंने कहा कि ब्राह्मण और शूद्र से जन्मी संतान भी शुद्ध और पवित्र हो सकती है। ठीक उसी तरह शूद्र पिता और ब्राह्मणी माँ से जो संतान होगी वह भी उतनी ही शुद्ध और पवित्र होगी । शंकर के अद्वैत सिद्धान्त के

---

1. लक्ष्मीकांत वर्मा- **समाजवादी दर्शन और डॉ. लोहिया,** पृष्ठ 159.

तहत भी यह तर्क ठीक बैठता है, पर कर्म और व्यवहार में ठीक इसके विपरीत आचरण किया जाता है।

डॉ. लोहिया के लिए इस अद्वैत का दूसरा ही अर्थ था। संसार में सम्पूर्ण मानव जाति में समत्व की भावना के वह समर्थक थे। समता पर आधारित आचरण, भावना और कर्म को वह एक दूसरे से जुड़ा हुआ मानते थे। भाव और कर्म के इस अद्वैत को ही डॉ. लोहिया सच्चा अद्वैत मानते थे। उनके लिए मानव मात्र में एकता देखना ईश्वरी सत्ता की अभिव्यक्ति हो सकती है। इसी प्रकार प्रत्येक कर्म में निर्गुण को सगुण रूप में प्रतिष्ठा करना भी ईश्वरीय सत्ता का पर्याय हो सकता है। इसलिए डॉ. लोहिया मानते थे कि ईश्वरी मानवीय सृजनशील कल्पनाओं का पूँजीभूत प्रतीक है। वे कर्म और गुण के समन्वय के पक्षधर थे।

धर्म के सम्बन्ध में भी डॉ. लोहिया किसी विशेष सम्प्रदाय का एकाधिकार नहीं मानते थे जहाँ ईश्वर को वह मनुष्य की सृजनशील उदान्त कल्पना का प्रतीक मानते थे, वहीं धर्म को उस प्रतीक का क्रियाशील रूप। गाँधी के समान वह भी दरिद्र में ही भगवान और धर्म को प्रतिष्ठित मानते थे। गाँधी तो दरिद्र में ही भगवान के दर्शन करते थे। इसलिए देश की गरीबी हटाना, भूखे को रोटी और आवास हीन को आवास उपलब्ध कराना भगवान की सेवा मानते थे, और इस सेवा को ही जीवन का सबसे बड़ा धर्म। डॉ. लोहिया धर्म को मनुष्य के अन्तर्जगत् की उदान्त चेतना भी मानते थे। यह सत् और असत् की यही सूक्ष्म अवधारणा है। इसे कर्म के माध्यम से साकार किया जा सकता है।

जहाँ तक धर्म के नाम पर सम्प्रदायों के विभिन्न रूपों का प्रश्न है उसे वह महत्व नहीं देते थे। वैसे वह कहीं न कहीं इस सम्पूर्ण दृश्य जगत् को ही ईश्वरीय भावना की अभिव्यक्ति मानते थे। जहाँ ईश्वर की सत्ता को वह निरर्थक वहस मानते थे, वहीं दृश्य जगत् और मनुष्य के अन्तर्जगत् को जाग्रत शिव एवं उदान्त चेतना का केन्द्र मानते थे। वह मूलतः मानव धर्म के प्रतिपादक थे। यह मानव धर्म जाति, रंग, भेद और सम्प्रदाय से परे हैं। ये सब वाह्य भेद हैं। इनसे ऊपर उठकर सबको समता और एकता के भाव से देखना ही धर्म का मुख्य उद्देश्य है।

कर्मकाण्ड के वह विरोधी थे, पर कर्म के प्रति उनकी असीम निष्ठा थी। मन और कर्म में वह एक निरन्तरता के पक्षधर थे। वस्तुतः मन के भावों को सर्वात्मवाद के आधार पर कर्म में आचरित करना ही उनके लिए सबसे बड़ा धर्म था। वह मनुष्य की इच्छा शक्ति के प्रबल समर्थक थे और इस इच्छा-शक्ति के आधार पर वह मानवीय ऐश्वर्य और पुरूषार्थ को शीर्शस्थ देते थे। डॉ. लोहिया मन के सूक्ष्म जगत और वाह्य दृश्य जगत में निरन्तर संवाद और गतिशीलता को बनाये रखना चाहते थे। धर्म की अवधारणा, कर्म और आचरण की निष्ठा तथा सर्वात्मभाव द्वारा समता और एकता की लक्ष्य सिद्धि और उनकी पूरी मानसिक बनावट के अविभाज्य अंग थे। उनकी एक ही प्रार्थना थी- "हे भारत माता, हमें शिव का मस्तिष्क दो, कृष्ण का हृदय दो, राम का कर्म और वचन दो। हमें असीम मस्तिष्क, उन्मुक्त हृदय और साथ-साथ जीवन की मर्यादा से रचो।"[1]

धर्म और धर्मनिपेक्षता को लेकर देश में चल रही निरन्तर चिन्तन परम्परा से सर्वथा भिन्न डॉ. लोहिया की धर्मनिरपेक्षता की भावना थी। उनके मतानुसार धर्मनिपेक्षता का धर्म से कुछ भी लेना-देना नहीं है। धर्मनिरपेक्षता का मूल अर्थ है, इह लौकिक। जब हम कहते हैं कि भारत धर्मनिरपेक्ष है तो उसका मूल अर्थ है कि भारत इह लौकिक सत्ता में विश्वास करने वाला देश है। धर्मनिरपेक्षता का यह कदापि अर्थ नहीं है कि भारत धर्म के प्रति उदासीन है। इसका मात्र यह अर्थ है कि भारत सरकार लौकिक सत्ता के प्रति प्रतिबद्ध है और पारलौकिक के प्रति उसकी कोई प्रतिबद्धता नहीं। भारतीय नागरिक पारलौकिक उपलब्धियों के लिए किसी भी धर्म, अनुष्ठान, पूजा एवं व्रत आदि के लिए स्वतंत्र है। वह इन सबमें राजनीति के हस्तक्षेप को उचित नहीं समझते। व्यक्तिगत स्तर पर मनुष्य को अपनी आस्था के अनुरूप जीने की पूर्ण स्वतंत्रता है। राज्य अधिक से अधिक एक आश्वासन जरूर दे कि वह आस्तिकता अथवा नास्तिकता के प्रचार को दण्डनीय अपराध नहीं मानेगा।

डॉ. लोहिया की यह अवधारणा थी कि हिन्द-पाक का विभाजन ही इसलिए हुआ कि भारत निरपेक्ष नहीं रह सका। आज का मूल संक्रमण भी यह है कि भारत धर्मनिपेक्षता को पूर्णतया स्वीकार नहीं कर पा रहा है। पाकिस्तान की धर्म-सापेक्षता ही भारत को धर्मनिरपेक्ष नहीं रहने देती। वास्तव में धर्मनिरपेक्षता का इहलौकिक भाव जब तक हम नहीं अपनायेगें तब तक यह साम्प्रदायिक कलह बनी रहेगी।

---

1. लक्ष्मीकांत वर्मा- **समाजवादी दर्शन और डॉ. लोहिया,** पृष्ठ 161.

धर्म और राजनीति की परिभाषा भी डॉ. लोहिया ने अलग से की है। धर्म को डॉ. लोहिया सद्‌भावना और सद्‌कर्म का स्रोत मानते हैं और राजनीति को वह सद्‌भावना और सद्‌कर्म में बाधक तत्वों को समाप्त करने का साधन मानते हैं। उन्होंने धर्म को अच्छा काम करने से जोड़ा है और राजनीति को बुराइयों से लड़ने वाला साधन माना है। धर्म और राजनीति को कर्म भेद से परिभाषित करके उन्होंने दोनों को जोड़ा है। उनका मत था कि धर्म का जो झगड़े वाला स्वरूप साम्प्रदायिकता में व्यक्त होता है या जाति और सम्पत्ति के रूप में व्यक्त होता है वह निकृष्ट है और उसे वास्तविक धर्म नहीं कहा जा सकता। पर धर्म का एक सात्विक भाव भी है जिसमें सत्य, अहिंसा, करूणा, न्याय तथा नैतिकता के प्रति आग्रह है। धर्म का यह रूप सकारात्मक है। इस सकारात्मक पक्ष को प्रतिष्ठित करना राजनीति का काम है। डॉ. लोहिया मार्क्स की भांति धर्म को अफीम जैसी विषैली चीज नहीं मानते थे। उनके मतानुसार एक सच्चे समाजवादी के लिए इस मूल्य प्रधान राजनीति के सकारात्मक पक्ष को प्रतिष्ठित करने में धर्म के प्रति सत् विवेक जाग्रत रखना आवश्यक है। धर्म और राजनीति के सम्बन्ध में डॉ. लोहिया का विश्वास था। धर्म और राजनीति को अलग रखने का सबसे बड़ा मतलब यही है कि साम्प्रदायिकता और कट्टरता से बचा जाय। एक और मतलब यह भी है कि राजनीति को धर्म और दण्ड व्यवस्थाओं से अलग रखा जाय नहीं तो दकियानूसी बढ़ सकती है और अत्याचार भी।

(ब) राजनीति और जनशक्ति :

राजनीति के सही विकास के साथ मनुष्य की इच्छा शक्ति विकसित होती है। शक्ति की सत्ता को डॉ. लोहिया महत्व नहीं देते थे। वह शक्ति से अधिक महत्वपूर्ण इच्छा को मानते थे। मानव शक्ति की भी पहचान वह उसकी इच्छा शक्ति से करते थे। उनका कथन था कि "इच्छा, न कि शक्ति, राज्य का आधार है। मात्र शक्ति को कोई विशेष महत्व वह नहीं देते थे। शक्ति तो एक बर्बर के पास भी होती है, एक हथियार और सेना के बल पर अर्जित शक्ति नृशंस शासक के पास भी होती है। ऐसी शक्ति का कोई महत्व नहीं होता। वह केवल प्रतिगामी प्रवृत्तियों का प्रतीक होती है।"[1]

---

1. लक्ष्मीकांत वर्मा- **समाजवादी दर्शन और डॉ. लोहिया,** पृष्ठ 162.

'शक्ति' के साथ इच्छा का सम्बन्ध आवश्यक है। यानी इच्छा शक्ति का महत्व होता है। वैयक्तिक जीवन में तो इस इच्छाशक्ति के बल पर अनेक सृजनशील कार्य किये जा सकते हैं। पर सामूहिक चेतना के स्तर पर जब यही इच्छा शक्ति संगठित हो जाती है, तो वही जनशक्ति का रूप ले लेती है । शक्ति का इच्छा से संयोग और इच्छा का जन से संयोग ही जनशक्ति को रूपायित करता है। इसलिए जब डॉ. लोहिया इच्छा या जनशक्ति का प्रयोग करते हैं तो उनका मतलब होता है जन की इच्छा-शक्ति। जनशक्ति या जन-इच्छा की शक्ति उस सामूहिक चेतना की अभिव्यक्ति है जो समय-समय पर देशकाल परिस्थितियों को अनुमोदित, समर्पित और सम्पादित करती हैं प्रत्येक सामाजिक, आर्थिक या राजनैतिक बदलाव तभी आता है जब जन की इच्छा-शक्ति जाग्रत होती है और जागृत होकर जनशक्ति के रूप में व्यक्त होती है।

डॉ. लोहिया जन-इच्छा शक्ति को, सामूहिक चेतना को व्यक्ति की चेतना के सापेक्षता में देखतें हैं। यदि जनशक्ति व्यक्ति की इच्छा शक्ति को आदर सम्मान देती हैं। तभी वह जनशक्ति की कसौटी पर खरी उतर सकती है। व्यक्तिगत इच्छाशक्ति और सामूहिक इच्छाशक्ति का समानुपातिक योग ही जनशक्ति का रूप ले सकती है। व्यक्ति की इच्छा शक्ति को कुचल कर किसी भी प्रकार की जनशक्ति का संगठन नहीं हो सकता। जो भी शक्ति व्यक्ति की इच्छा की अवहेलना करती है, वह क्रूर और नृशंस शक्ति होती है। इसलिए जनशक्ति की असली पहचान होती है। अन्याय के विरूद्ध संघर्षरत प्रकृति से क्योंकि हमेंशा राजसत्ता और व्यक्ति में, समाज और व्यक्ति में, जातीय समूह और व्यक्ति में टकराव की स्थिति रहती है। जनशक्ति हमेंशा इन अन्यायों के विरूद्ध खड़ी होती है। इसकी दूसरी पहचान होती है निरन्तरता की जनशक्ति निरंतर संघर्षरत रहती है।

जनशक्ति और जन-इच्छा के आधार पर डॉ. लोहिया इसकी निरंतरता को व्यापक स्तर पर रेखांकित करते हैं। उनकी सप्तक्रांति की अवधारणा में इसकी स्पष्ट व्याख्या मिलती है। नर-नारी की समानता की लड़ाई, रंगभेद, जाति-प्रथा की विषमता को मिटाने की लड़ाई, विदेशी गुलामी के खिलाफ लड़ाई और विश्व राज्य की स्थापना के लिए संघर्ष, वैयक्तिक पूँजी के खिलाफ आंदोलन, वैयक्तिक स्वतंत्रता हनन के खिलाफ चल रहे जेहाद तथा हथियारों के विनाश के लिए हो रहें निरंतर संघर्ष मूलतः जन-इच्छा की अभिव्यक्ति के

प्रतीक हैं। यह जन-इच्छा, जनशक्ति के रूप में संसार भर में निरंतर संघर्ष रूप में चल रही है। यह निरंतरता हमेंशा अधिकार बोध से पैदा होती है। जिस समाज में जितना तीव्र अधिकार बोध होगा, उतनी ही तीव्र इच्छा शक्ति भी विकसित होगी। इसी प्रकार जितनी तीव्र सामूहिक इच्छाशक्ति होगी, उतनी ही तीव्र जनशक्ति का निर्माण होगा। यह अधिकार बोध हर समाज में है। इसलिए हर समाज अपने-अपने क्षेत्र में इन सात अन्यायों के खिलाफ निरंतर संघर्षशील हैं भारत में यदि जाति-व्यवस्था के खिलाफ आंदोलन तीव्र है तो अमरीका में रंग भेद की लड़ाई चल रही है। अफ्रीका में रंग-भेद और विदेशी शासन दोनों की लड़ाईयाँ चल रही हैं। पूरे संसार में नर-नारी की समानता की लड़ाई समान रूप से चल रहीं हैं। संसार के बुद्धजीवी निरस्त्रीकरण के लिए संघर्ष कर रहें हैं। ये सारी लड़ाईयाँ सामाजिक, राजनैतिक आर्थिक और राजनयिक स्तर पर अधिकार-बोध से अनुप्राणित हैं। आज पूरे संसार में जन-इच्छा अभिव्यक्ति के लिए बैचेन है, यह बैचेनी अधिकार बोध एवम् जन-इच्छा के संयोग से बनी जन-शक्ति का प्रमाण प्रस्तुत करती है।

डॉ. लोहिया को ये तीनों चीजें प्रिय थी। वह बीसवीं शताब्दी के सबसे बड़े अधिकार-बोध के प्रवक्ता थे। वह जन-इच्छा के प्रबल समर्थक थे। अधिकार बोध और जन-इच्छा से ओत-प्रोत जनशक्ति के पक्षधर थे। डॉ. लोहिया जिस जनशक्ति के आराधक थे, उसके मूल में दो तत्व मुख्य है। पहला है अधिकार बोध और दूसरा है अन्याय का विरोध। एक कारण है और दूसरा कर्म। इस कारण से सात अन्यायों का बोध होता है। बोध से अन्याय का आभास मिलता है और कर्म के रूप में सातों अन्यायों के विरूद्ध संघर्ष करने की शक्ति मिलती है। यह प्रेरक गति ही वह जनशक्ति है जो जन संघर्ष को संगठित भी करती है और संघर्ष के माध्यम से अपने को व्यक्त करती है। डॉ. लोहिया की राजनीति के ये ऐसे अविभाज्य अंग हैं कि जब तक इनकी सही समझ नहीं होगी, तब तक लोहिया की राजनीतिक दृष्टि की असली पहचान नहीं हो सकती। यही वह मूल्य-बोध है जिससे डॉ. लोहिया निरन्तर सत्याग्रही के रूप में व्यक्त होते हैं।

जन-इच्छा की पूर्ति करना राज्य का प्रमुख कर्त्तव्य है। जब तक राज्य द्वारा जन-इच्छा का आदर किया जाता है, तभी तक जनतंत्र सफल होता है। जहाँ से जन-इच्छा की अवेहलना, उपेक्षा या दमन की नीति राज्य सत्ता अपनानी शुरू करती है, वहीं से जनतंत्र

का हास भी प्रारंभ होना शुरू होता है।

जन-इच्छा की अभिव्यक्ति और इसकी पूर्ति से मनुष्य को आत्मसम्मान और तुष्टि मिलती है। उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व को विकसित होना का अवसर मिलता है। मनुष्य निरंतर विकासशील प्राणी है। उसकी आत्मशक्ति और वैचारिक क्षमता हमेंशा एक कदम के आगे दूसरे कदम की ओर बढ़ने को लिए उत्सुक रहती है। राज्य सत्ता जब व्यवस्था का रूप लेती है तो एक बिन्दु पर पहुंच कर वह स्वयं व्यवस्था में जकड़ जाती है। इसलिए वह यथास्थितिवादी हो जाती है। जन-इच्छा जब एक जकड़बन्दी को तोड़कर आगे बढ़ना चाहती है तो यथास्थितिवादी सत्ता और अस्वीकारवादी जन-इच्छा में टकराव की स्थिति पैदा हो जाती है।

इस टकराव की स्थिति में राज्य को चाहिए कि वह जन-इच्छा का आदर करते हुए उस पर विचार करे या उसकी पूर्ति करे। लेकिन राज्य की मूल प्रवृत्ति में ही जड़ता होती है। विधि और विधान के प्रशासनिक तंत्र होते हैं, इसलिए राज्य का प्रतिगामी होना स्वाभाविक है। अच्छी राज्य व्यवस्था वही होती है, जो इतनी लचीली हो कि जन-इच्छा के अनुसार अपने भीतर परिवर्तन ले आये। राज्य की यदि यह मंशा स्पष्ट हो तो यथास्थिति और जन-इच्छा में कम से कम टकराव की स्थिति पैदा होगी। कम से कम टकराव की स्थिति होने से ज्यों-ज्यों राज्य-सत्ता जन-इच्छा के अनुसार बदलेगी। त्यों-त्यों वह जनतांत्रिक पद्धति का विकास करेगी। यदि राज्य सत्ता, जन-इच्छा के साथ चलती है तो वह जनशक्ति का विकास करती है। विकसित जनशक्ति पर आधारित राज्य सत्ता देश के भीतरी खतरों का भी सामना कर सकती है और बाहरी खतरों का सामना भी किया जा सकता है। सेना के पीछे जो शक्ति निरंतर काम करती है वह है जन-इच्छा शक्ति। जन-इच्छा से गठित भीतरी शक्ति देश में नया रक्त-संचार करती है और सेना में निरंतर उत्साह प्रेरणा और उत्सर्गित होने की भावना का संचार करती रहती है।

कभी-कभी ऐसी भी स्थितियाँ आती है जब राज्य-सत्ता और जनशक्ति का स्वस्थ संघर्ष भी हो जाता है। जनशक्ति वैचारिक अवधारणों के अनुसार ठीक होते हुए उग्र हो जाती है और राज्यसत्ता व्यवहारिक स्तर पर जन-इच्छा का कार्यान्वयन करने में अपने को सर्वथा असमर्थ पाती है। ऐसी स्थिति में जनशक्ति को अंहिसक तरीका अपना कर आंदोलन करना

चाहिए और राज्य दण्ड को एक सत्याग्रह या सिविल नाफरमानी के तहत स्वीकार करना चाहिए। राज्य को भी दण्ड देने में दण्ड के स्वरूप और मात्रा में विवेक पूर्ण रवैया अपनाना चाहिए । यह तभी संभव है जब दण्ड कानून के तहत दिया जायेगा और राज्य सत्ता या उसके प्रतिनिधि प्रशासक दण्ड का प्रयोग बदले की भावना से या क्रोध, आवेश और उन्माद के तहत न करके सीधे कानून द्वारा प्रयोग करेंगे।

आदर्श स्थिति तो यही होती है कि व्यक्ति अपना निजी और सामूहिक जीवन बिना किसी भय के जी सकें। उसे विश्वास की स्वतंत्रता होना ही चाहिए। वाणी की स्वतंत्रता होनी चाहिए। मत को व्यक्त करने का अधिकार होना चाहिए। यही नहीं अपने मत के अनुसार संगठन बनाने और संघर्ष करने का भी अधिकार होना चाहिए। राष्ट्रद्रोह राष्ट्रीय एकता के विरोध में यदि कोई कार्य कर रहा है तो बात दूसरी है किन्तु यदि विधि-विधान के तहत सरकारी नीतियों के खिलाफ कोई कुछ कर रहा है तो उसमें राज्य सत्ता का कम से कम या बिल्कुल हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए। लेकिन इस आदर्श की प्राप्ति कठिन होती है। प्रायः राज्य सत्ता और जनशक्ति के बीच टकराहट की स्थितियाँ पैदा हो जाती है और तब इस टकराहट में व्यक्ति को दण्ड स्वीकार करने में उतना ही संयमित होना चाहिए जितना कि राज्य सत्ता को संयमित और मर्यादित होना जरूरी है।

वैसे जनशक्ति और राज्य सत्ता की टकराहट नितांत अवांछनीय है। राज्य सत्ता यदि सर्तक है, जनमत के प्रति जागरूक है तो ऐसी नौबत आनी ही नहीं चाहिए जहाँ टकराहट हो। जन-इच्छा की अभिव्यक्ति जनमत में होती है और जैसे-जैसे जनमत संगठित होता जाता है वैसे-वैसे जनशक्ति भी संगठित होती जाती है। जागरूक जनसत्ता जनमत का आदर करेगी, हमेंशा अपनी नीतियों में उदारता बरतेगी। यदि राज्य सत्ता में जनमत के अनुसार अपने कर्म को अनुशासित करने की सूझ बूझ है तो वह धीरे-धीरे उस जनमत के आधार पर स्वतः अपने कार्यकलापों में परिवर्तन लाती जाएगी और तब कुछ ही मुद्दे ऐसे होंगे जहाँ मतभेद का क्षेत्र व्यापक होगा। उन कुछ मुद्दों पर यदि जनशक्ति में और राज्य सत्ता में कुछ टकराहट शान्ति पूर्ण ढंग से होती भी है तो उससे हानी नहीं होगी।

जनशक्ति और राज्य सत्ता के सम्बंध में डॉ.लोहिया का अभिमत बड़ा प्रबल था कि राज्य सत्ता को निरंतर कुछ काल अवधि के बाद वैसे ही बदलते रहना चाहिए जैसे तबे

पर रोटी उल्टी-पुल्टी जाती है। किसी एक दल और एक पार्टी को लगातार कई वर्षों तक सत्तारूढ़ दल में नहीं रहना चाहिए। लगातार एक ही जन समूह जब सत्ता में रहता है तो निहित स्वार्थ, भ्रष्टाचार आदि अनेक विकार सहज ही पैदा हो जाते हैं। ये दोष तभी दूर होगें। जब राज्यसत्ता को बराबर यह होश रहें कि वह कभी भी बदली जा सकती है, हटाई जा सकती है और उसके स्थान पर किसी दूसरे के हाथों में सत्ता सौंपी जा सकती है। यह स्थिति तभी पैदा होगी, जब जनशक्ति प्रबल हो और जन-इच्छा को अपनी संप्रभुता के साथ प्रभावी होने के अवसर मिले। जनशक्ति इतनी सशक्त होनी चाहिए कि वह जब चाहे यह परिवर्तन ला सकें।

जहाँ राज्य-सत्ता को हमेंशा ऐसी परिस्थितियों के लिए विधि और लिखित-अलिखित संविधान या परम्परा के अनुसार चलना चाहिए और जनशक्ति से असहमत होने पर भी राज्य सत्ता को चाहिए कि वह विधि का साथ न छोड़े और निरंतर देशवासियों के प्रति हो रहें जुल्म के खिलाफ न्याय की स्थापना के लिए तत्पर रहे। विधि के अनुसार ही अधिकारों की रक्षा करे। ऐसा करने में यदि कभी कहीं कोई गलती हो जाये तो उसे स्वीकार करे। बहुत से लोग समझते हैं कि राज्य सत्ता का कार्य केवल शासन करना है। वे यह भूल जाते हैं कि राज्य-सत्ता का काम शांति की स्थापना करना भी है और यह शांति स्थापना केवल विधि के निष्पक्ष प्रयोग द्वारा ही संभव है। डॉ. लोहिया ने अधिकार दण्ड और शांति के विषय में लिखा है- "प्रश्न केवल इतना ही है कि दण्ड का स्वरूप और मात्रा कैसी हो? दण्ड हमेंशा विधि और विधान के अनुसार होने चाहिए। राज्य के पंक्ति प्रबंधकों के नुस्खे के अनुसार नहीं।"[1]

जनशक्ति के दो महत्वपूर्ण अंग हैं। जन-इच्छा और जनमत। इन्हीं दोनों के आधार पर सगुण जनशक्ति बनती है। एक संवेदनहीन मानव भीड़ से जनशक्ति नहीं बनती। जनशक्ति तो तब बनती है, अच्छी राज्य सत्ता वही होती है जिसमें जन-इच्छा और जनमत के प्रति आदर का भाव होता है और एक संगठित जनशक्ति तब बनती है जब मंथन, मनन और चिंतन के माध्यम से जन-इच्छा का रूप लेती है। डॉ. लोहिया इन तीनों प्रक्रियाओं के प्रति जागरूक थे। इसी आधार पर वह समाजवादी आन्दोलन को एक सशक्त जन-इच्छा और जनमत के सहारे जनशक्ति में बदलना चाहते थे। ऐसी जनशक्ति ही बदलाव लाने में सक्षम हो सकती है।

---

1. लक्ष्मीकांत वर्मा- **समाजवादी दर्शन और डॉ. लोहिया,** पृष्ठ 167.

(स) राजनीतिक व्यवस्था और संस्थान :

राजनीति की अभिव्यक्ति हमेंशा व्यवस्था और संस्थानों के गठन उनके लक्ष्य उद्देश्यों के माध्यम से होती है। वही माध्यम जन-इच्छा की अभिव्यक्ति के होते हैं। संसद राज्यसभा, विधानपरिषद, विधानसभा, जिलाबोर्ड, पंचायत आदि व्यवस्था देने वाली संस्थायें भी हैं। और जन-इच्छा को व्यक्त करने वाली संस्थायें भी होती हैं। जनतंत्र में ये संस्थायें जितनी मुखर और जितनी सशक्त होगी उतने ही अधिक लोकसम्मत जनतंत्र की स्थापना होगी। डॉ. लोहिया इन संस्थाओं को ऐसे रूप में प्रतिष्ठित करना चाहते थे कि खुली बहसें हों, लोग अपने विचार व्यक्त करने में स्वतंत्र हों। विचारों का आदान-प्रदान हो, पक्ष विपक्ष के विचारों को देश जाने तीव्र मन्थन हो और तब कानून और विधि बन जाने पर भी उनकी कमियों पर बहस हो आंदोलन हो। दण्ड की भी व्यवस्था और दण्ड को स्वीकार करके कानून का विरोध करने की भी स्वंत्रता हो। बिना इस सर्वांगीण व्यवस्था के जन-इच्छा और जन शक्ति का वास्तविक स्वरूप विकसित नहीं हो सकता ।

डॉ. लोहिया के दो प्रसिद्ध वाक्यों में जन-इच्छा, जनशक्ति और व्यवस्थापिकाओं के चरित्र का स्वरूप स्पष्ट व्यक्त होते हैं। पहली अवधारणा तो यह है कि व्यवस्थापिकायें जन-इच्छा को प्रतिविम्बित करने वाले अकुलष निर्मल दर्पण के समान होनी चाहिए। साथ ही वह यह भी कहते थे कि इन व्यवस्थापिकाओं का शुद्ध निर्मल स्वरूप तभी बन पायेगा, जब व्यवस्थापिकाओं में चल रहीं बहस के साथ-साथ संसद और विधान सभाओं के बाहर उन विषयों को लेकर तीव्र आंदोलन हो। उनका कहना था कि संसद सजीव और निर्मल दर्पण के समान तभी होगी, जब संसद के बाहर जन आंदोलन तीव्र होंगे। यदि बाहर कोई जन आंदोलन नहीं है तो संसद स्वार्थपरस्तों की एक मूक एवं बधिर सभा का रूप ले लेती है। वह तो इसके बाहर के निरंतर चलते आंदोलनों को ही मूल जन शक्ति का केन्द्र मानते थे।

इनके तोड़ने भंग करने और फिर से गठित होने का कोई दोष नहीं मानते थे। वह कहते थे कि 'जिन्दा कौमें पाँच साल तक प्रतीक्षा नहीं करती' । संसद या विधानसभा पाँच वर्ष के खूटे में बंधी संस्था नहीं है। जनशक्ति जब चाहे उसे पुर्नगठित कर सकती है बदल सकती है। इन्हीं विचारों के आधार पर डॉ.लोहिया ने कहा था -''लोकसभा या विधानसभा एक शीशा है, आइना है, कि जिसमें जनता अपने चेहरे को देख सके। चेहरे पर

तकलीफें हैं, कैसे अरमान हैं, कैसे सपने हैं, यह सब उस शीशे में देख सकते है।"[1] उन्हें संसद के कानून-कायदों में अभिजात्य और संभ्रान्त आचरण के नाम पर जो प्रतिबंध लगाये जाते हैं वह पंसद नहीं हैं। लोकसभा के अध्यक्ष के आचरण की व्याख्या करते हुए उन्होंने कहा था कि यह लोग आईने में देश की असली शकल सामने आने नहीं देते। वह उन पर निरंतर पर्दा डालने की कोशिश करते हैं जो जन-इच्छा को दबाने की सीमा तक अतिक्रमण कर जाता है।

जन-इच्छा और जनशक्ति के साथ किसी प्रकार के समझौतें के खिलाफ हमेंशा डॉ.लोहिया ने आवाज उठाई थी। उनका मत था कि जनतंत्र में व्यवस्था प्रदान करने वाली जितनी भी संस्थायें हैं या माध्यम हैं उनको उन्मुक्त होना चाहिये। इनमें उन्मुक्तता तभी आयेगी जब हर इच्छा का आदर किया जाये। वह प्रायः इस बात की आलोचना करते थे कि लोकसभा में पराजित व्यक्ति को राज्यसभा का सदस्य बना दिया जाय। उनका कहना था कि लोकसभा की राजनीति करने वाला व्यक्ति, उसका चरित्र, उसका संकल्प, दूसरा होता है। और जब वह लोकसभा के चुनाव में पराजित हो जाता है तो यह बात पूर्णतया स्पष्ट हो जाती है कि जन-इच्छा ने उसे अस्वीकार कर दिया है। ऐसे व्यक्ति को ऐन-केन-प्रकारेण राज्यसभा का सदस्य बनाने में जन-इच्छा और जनमत का अपमान होता है। डॉ. लोहिया के इस तर्क को लोग स्वीकार तो नहीं करते थे लेकिन जन-इच्छा के प्रति उनकी कितनी गहन निष्ठा थी, यह तो स्पष्ट हो ही जाता है। वह मानते थे कि व्यवस्थापिका और जनतंत्र की समस्त अन्य संस्थाओं का उद्‌देश्य जन-इच्छा को संगठित करना होता है जिससे उस जन-इच्छा की अवमानना होती है। यदि कोई भी ऐसा कार्य होता है जिससे उस जन-इच्छा की अवमानना होती है तो उसे नहीं करना चाहिए। वह तो जन-इच्छा को महत्वपूर्ण मानते थे और कहते थे कि इसकी अभिव्यक्ति जनतांत्रिक माध्यमों से हो तो ठीक है ही लेकिन यदि ऐसा न होकर वह क्रांति अथवा विद्रोह के माध्यम से भी व्यक्त होती है तो भी स्वीकार करना चाहिए उसके प्रति आदर का भाव होना चाहिए।

आधुनिक भारत में नेता प्रधान नीति के वह कटु आलोचक थे। वह ऐसे नेताओं और उप-नेताओं को जन-इच्छा का घातक मानते थे। उनका यह मानना था कि ऐसे व्यक्तियों द्वारा जनतंत्र की व्यवस्थापिकाओं और जनतांत्रिक आधार पर कार्य करने वाली

---

1. लक्ष्मीकांत वर्मा- **समाजवादी दर्शन और डॉ. लोहिया,** पृष्ठ 168.

शक्तियों का अपहरण हो जाता है। ये संस्थायें क्रमशः निर्जीव होकर मरने लगती हैं। शक्ति जब तक संस्था द्वारा संचालित होती है, तब तक उसके कलुषित होने की संभावना कम होती है। किन्तु जब संस्था की जनतांत्रिक गतिविधि किसी व्यक्ति में केन्द्रित हो जाती है तो उसमें भ्रष्टाचार और मर्यादाहीनता पनपने लगती है। जनशक्ति का उर्ध्वगामी स्रोत बाधित होने लगता है। फिर तो वह केवल एक उच्छिष्ठ सत्ता के रूप में प्रदूषित होकर व्यक्त होती है। इस सम्बंध में डॉ. लोहिया का स्पष्ट मत था -ताकत जनता से निकल कर उर्ध्वगामी बने ऊपर की तरफ जाय। पानी फूट कर ऊपर की तरफ निकलता है। जनता की ताकत क्षेत्र, जिला, प्रदेश और सारे देश की तरफ जाने के बजाय, हमारे देश में ठीक इसका उल्टा होता है।

यह उल्टा इसीलिए होता है क्योंकि इस सहज स्वाभाविक स्रोत को कुछ लोग अलग-अलग अपने में केन्द्रित करके बैठ जाते हैं और जब मूलस्रोत ही बंध जाता है तो अनेक प्रकार की बुराइयाँ पैदा होती हैं। निहित स्वार्थों की बाढ़ आती है और भ्रष्टाचार पनपने लगता है। इस प्रक्रिया में जो केन्द्रस्थ व्यक्ति होते हैं वे ऊपर से नीचे की ओर कृपा बांटते हैं, भ्रष्टाचार फैलाते हैं और अनेक प्रकार की कृत्रिमतायें पनपने लगती हैं। फिर जन-इच्छा की अवहेलना होती है और शोषण की प्रक्रिया तेज गति से बढ़ने लगती है। इसलिए जन-इच्छा का स्रोत सूखने न पाये इसके लिए कुछ सावधानी बरतनी चाहिए ताकि जनतंत्र का विकास उसके स्वाभाविक रूप में होता रहे और उसका प्रवाह उर्ध्वगामी बना रहे।

(द) स्वतंत्रता व समानता :

स्वतंत्रता-

स्वतंत्रता पर डॉ. लोहिया के विचारों का वर्णन करने से पहले आवश्यक है कि हम स्वतंत्रता को समझें।

स्वंतत्रता को अंग्रेजी भाषा में लिबर्टी कहा जाता है। लिबर्टी शब्द लैटिन भाषा के लिबर शब्द से निकला है। लिबर Liber का अर्थ है बन्धनों का न होना। इसलिए बहुत से लोगों का यह विचार है कि स्वतंत्रता का यह अभिप्राय है कि व्यक्ति के कामों पर किसी प्रकार की रूकावट न हो और वह अपनी इच्छानुसार प्रत्येक कार्य कर सके परन्तु स्वतंत्रता

का यह गलत अर्थ है। इसलिए बार्कर ने लिखा है "जिस प्रकार बदसूरती का न होना खूबसूरती नहीं है, उसी प्रकार बन्धनों का न होना स्वतंत्रता नहीं है।"[1] इसलिए सच्ची स्वतंत्रता का यह अर्थ है कि मनुष्य को जंगली पशुओं की भाँति अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए शक्ति के द्वारा मनमानी करने का अधिकार न हो बल्कि मनुष्य अपने अधिकारों का इस तरह उपयोग करें कि सामाजिक नियम राज्य के कानून और दूसरों के अधिकारों का उल्लंघन न हो। लास्की के अनुसार "स्वतंत्रता का अर्थ उस वातावरण की स्थापना से है जिसमें मनुष्यों को अपने पूर्ण विकास के लिए अवसर प्राप्त होते है।"[2]

जोन स्टुअर्ट मिल के अनुसार "प्रत्येक व्यक्ति को अपने व्यक्तिगत जीवन में स्वतन्त्र रूप से कार्य करने का अधिकार होना चाहिये।"[3]

सीले के अनुसार "अति शासन (नियमन) का विलोम स्वतंत्रता है।"[4]

हरबर्ट स्पेन्सर के अनुसार "इच्छानुकूल कार्य करना ही स्वतंत्रता है बशर्ते कि ऐसे कार्य से अन्य मनुष्य की समान स्वतंत्रता का अतिक्रमण न होता हो।"[5]

"अवधारणा के रूप में स्वतंत्रता का तात्पर्य उन प्रावधानों की स्वीकृति से है जिन पर चलकर व्यक्ति की पूर्णता की अभिव्यक्ति सम्भव हो सकती है।"[6] इसके क्रियात्मक आदेश से समायोजन करने के लिए राज्य को ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए कि उसके सदस्य, केवल अभिकर्ता हो। किन्तु व्यक्तिगत स्वतंत्रता के साथ सामाजिक स्वतंत्रता भी उतनी ही महत्वपूर्ण है। अन्यथा एक व्यक्ति की स्वतंत्रता दूसरे व्यक्ति की अधीनता होगी। अगर व्यक्ति अपनी स्वतंत्रता का निरपेक्ष रूप से प्रयोग करता है तो वहाँ अन्य सभी लोगों की स्वतंत्रता- सामाजिक स्वतंत्रता प्राप्त नहीं होगी। अतः व्यक्ति अपनी स्वतंत्रता के प्रयोग के लिए जिन परिस्थितियों को चाहता है, आवश्यक है कि वह उनको अन्य व्यक्तियों को भी समान रूप से प्रदान करें। स्पष्ट है कि "सामाजिक स्वतंत्रता पास्परिक अन्तनिर्भरता की

---

1. आर.सी. अग्रवाल- **राजनीतिशास्त्र के सिद्धांत,** पृष्ठ 440.
2. Laski- Grammar of Politics, P. 142.
3. J.S. Mill- On Liberty, Chapter-1.
4. Seeley- The substance of Politics, P. 67.
5. Herbert Spencer- Justice, P. 4.
6. अर्नेस्ट वार्कर - **सामाजिक तथा राजनैतिक शास्त्र के सिद्धांत,** पृष्ठ 167.

स्थिति में पायी जाती है।"[1] जहाँ तक राजनीतिक स्वतंत्रता का तात्पर्य है, वह नागरिकों को सरकार से सम्बन्धित पक्षों में मिली स्वतंत्रता से है। साथ ही आधुनिक युग में राजनीतिक स्वतंत्रता में आर्थिक स्वतंत्रता- आवश्यकताओं से स्वतंत्रता, राष्ट्रीय आत्मनिर्णय आदि को भी सम्मिलित कर लिया गया है। डॉ. लोहिया की व्यवस्था में स्वतंत्रता की अवधारणा एक ऐसी परिकल्पना के रूप में सामने आती है, जहाँ उनका हर सम्भव यह प्रयास रहा कि व्यक्ति, समाज तथा राष्ट्र को अपनी आत्म- अभिव्यक्ति की प्राप्ति हेतु पूर्ण अवसर तथा सुविधायें मिल सके। लोहिया की स्वतंत्रता की अवधारणा को निम्न वृहद भागों में बाँट सकते हैं :-

(क) सामाजिक स्वतन्त्रता –

सामाजिक स्वतंत्रता के अन्तर्गत हम देखेगे कि समाज द्वारा व्यक्ति के किस क्षेत्र पर कितना नियन्त्रण लगाना उचित होगा अर्थात समाज का व्यक्ति कि प्रति क्या व्यवहार हो।

किन्तु साथ ही समाज द्वारा उन प्रावधानों की स्वीकृति भी जहाँ लघु इकाई के रूप में व्यक्ति की सभी क्षमताओं का विकास हो सके। व्यक्तिगत पूर्णता हेतु लोहिया ने कुछ विशिष्ट प्रावधानों को मान्यता दी है जैसे विश्वभ्रमण की स्वतंत्रता, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, सरकारी नौकरों को नागरिक अधिकारों की प्राप्ति आदि। लोहिया व्यक्ति को विश्व के किसी भी भाग में घूमने, बसने तथा मृत्यु को प्राप्त होने की स्वतंत्रता प्रदान करते है। उन्होंने लिखा है कि "विश्व में कहीं भी घूमने, कार्य करने तथा मृत्यु के मानव अधिकार को मान्यता प्राप्त होनी चाहिए। स्वदेशीयता तथा अवांछनीयता के आधार पर घूमने या ठहरने पर प्रतिबन्धों के कानूनों का अन्त होना चाहिए।"[2] लोहिया इस मत के समर्थक थे कि व्यक्ति जहाँ कहीं भी वह चाहे उसे व्यवस्थित होने की पूर्ण स्वतंत्रता प्रदान की जाये। नागरिकता की अवधारणा एक काल अतीत विचार है, जो एक क्षेत्र के लोगों को केवल उसी तक सीमित रखता है। अतः उसका अंत कर देना चाहिए अभी तक नागरिकता केवल शारीरिक रही है नागरिकता उसी को देते हैं जो किसी देश में पैदा होता है, शरीर कि हिसाब से या किसी में दो, पाँच-दस बरस वह रह जाता है। जितने भी नागरिकता के गुण हैं वे शारीरिक हैं नागरिकता के जो दूसरे गुण भावना, मन, चित्त के हैं, वे भारत में होने चाहिए। लोहिया के अनुसार पश्चिम में नागरिकता के गुण शरीर से लिये जाते हैं। भारत को उसकी नकल नहीं

1. अर्नेस्ट वार्कर- **इन्टरनेशनल एन साइक्लोपिडिया ऑफ सोशल साइन्स**, पृष्ठ 555.
2. लोहिया- **मार्क्स, गांधी एण्ड सोशल्जिम**, पृष्ठ 469.

करनी चाहिये। हमारी नागरिकता मन की, चित्त की तथा संस्कृति की होनी चाहिए। स्वेतलाना को भारत को ठहरने की अनुमति न देने के लिए सरकार की आलोचना करते हुए लोहिया ने कहा कि स्वेतलाना को शरण न देना तो न केवल चित्त तथा मन की नागरिकता की धारणा विरोधी है, बल्कि शारीरिक परिभाषा से भी गलत है। लोहिया के शब्दों में "यह स्वेतलाना न सिर्फ स्टालिन की लड़की है, वह ब्रजेश की पत्नी भी है, न सिर्फ ब्रजेश की पत्नी है, यह भारतीय भी है और शरीर की परिभाषा से भी तथा मेंरी उस परिभाषा से भी, मन की, चित्त की परिभाषा से भी, शरण न देना गलत है।"[1]

डॉ. लोहिया ने कार्यात्मक आधार पर व्यक्ति को सभी स्वतन्त्रता देने के साथ ही उन्होंने चिंतन तथा अभिव्यक्ति के क्षेत्र में भी व्यक्ति को पूर्ण स्वतंत्रता देने की वकालत की है। लोहिया का मानना है कि अल्पसंख्यक वर्ग को अपनी अभिव्यक्ति की पूर्ण स्वतंत्रता होनी चाहिए, चाहे वे विचार बहुसंख्यक के विरोधी ही क्यों न हों। अल्पसंख्यक को हमेंशा स्वतंत्र भाषण की छूट हो। विरोधियों को अपना मत इस आधार पर मनवाना कि वह बहुसंख्यक का निर्णय है, गलत है।

डॉ. लोहिया के शब्दों में "हम चालीस करोड़ हैं। इनमें से 39 करोड़ 99 लाख 99 हजार 999 अगर आदमी एक रायके हों, चाहे गलत हों या बाहियात हों सब कुछ हो, लेकिन जब तक में अपनी राय पर दृढ़ हूँ और किसी कानून का उल्लंघन नहीं करता हूँ तब तक इन 39 करोड़ 99 लाख 99 हजार और 999 आदमियों को कोई हक नहीं है कि वे मेंरे जान की सुरक्षा को खतरे में डालें या मेंरे सम्मान का, मेंरी इज्जत का हनन करें और अगर वे ऐसा करेंगे तो में उनको पागल कहूँगा।"[2] जिस प्रकार बहुसंख्यक जनता को अल्पसंख्यक की अभियक्ति में हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं है, उसी प्रकार सही और गलत, उपयुक्त और अनुपयुक्तता के आधार पर अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के रास्ते में राज्य को भी बाधक नहीं बनना चाहिए। राज्य को हस्तक्षेप का अधिकार तभी प्राप्त हो जबकि व्यक्ति के भाषणों से उसकी सुरक्षा को खतरा पैदा होता हो। लोहिया के शब्दों में "बोलने के अधिकार समेंत भाषण की स्वतंत्रता आवश्यक नहीं की वह सही ही हो। सही क्या है और गलत क्या है इसका निर्णय जनता द्वारा होना चाहिए, प्रतिबन्ध केवल तभी

1. लोकसभा डिवेट्स, चौथी सीरिज भाग-2, पृष्ठ 2231.
2. **बी.बी.पित्ती, ए. त्रिपाठी तथा ओ.पी. निर्मल** (संपादित), लोकसभा में लोहिया, भाग-3, पृष्ठ 147.

लगाये जाने चाहिए जब राज्य की सुरक्षा खतरे में हो और इसके द्वारा सुरक्षा स्थापित होती हो।"[1]

डॉ. लोहिया की व्यक्तिगत स्वतंत्रता में आस्था उस समय अतिवासी स्थिति पर पहुँच जाती है, जबकि उन्होंने यह सुझाव दिया कि आत्महत्या करना व्यक्ति का निजी एवं व्यक्तिगत मामला है, सरकार को उसमें हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं है। "इन्सान को यह आजादी होनी चाहिए कि वह आत्महत्या करे या न करे। यह तो उसका अपना मामला है। दूसरा कौन होता है दखल देने वाला कि तुमने आत्महत्या करने की कोशिश की। और उसमें नाकामयाब रह गये तो उसको जेल भेज दिया गया।"[2]

हालाँकि लोहिया ने मृत्युदण्ड का विरोध किया, किन्तु गाँधी की भाँति उन्होंने माना कि अगर कोई असीम वेदना से पीड़ित हो तथा अन्ततः उसका मरना निश्चित हो गया हो तो उसे उस वेदना से छुटकारा दिलाने हेतु खत्म कर देना चाहिए।

इस प्रकार लोहिया ने व्यक्ति की पूर्णता हेतु वे सभी आधार प्रस्तुत करने का प्रयास किया, जिसके अन्तर्गत उसकी हितवृद्धि अन्तर्निहित हो सकती है। किन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं है कि लोहिया की मान्यता में व्यक्ति का कोई सामाजिक पक्ष नहीं है अर्थात ऐसा नहीं है कि लोहिया व्यक्ति को ऐसा आधार प्रस्तुत कर रहे हैं, जिस पर चलकर वह उच्छंखल बन जाये तथा अपने जीवन से सम्बन्धित सामाजिक पक्ष से पूर्णतः मुक्त हो जाये।

सामाजिक महत्ता की दृष्टि से लोहिया ने व्यक्तिगत स्वतंत्रता की धारणा में निम्न प्रतिबन्धों को भी स्वीकृति दी हैः-

प्रथम :

लोहिया ने अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर व्यक्ति को बिना किसी प्रतिबन्ध के घूमने तथा बसने की वकालत की, किन्तु राष्ट्रीय एवं सामाजिक महत्ता को ध्यान में रखते हुए उन्होंने कहा कि अगर इससे किसी भाग में अन्तर्राष्ट्रीय चोर बाजारी तथा तस्करी बढ़ने की सम्भावना हो तो राज्य को अनिवार्य रूप से हस्तक्षेप करना चाहिए। साथ ही लोहिया ने इस

---

1. लोहिया- **मार्क्स, गांधी एण्ड सोशलिज्म,** पृष्ठ 424.
2. लोहिया-**भारत, चीन और उत्तरी सीमाएँ,** पृष्ठ 322.

आशंका से भी पूर्णतः सचेत रहने का आग्रह किया कि कहीं राज्य के हस्तक्षेप का दायरा न बढ़ जाये। लोहिया ने लिखा है "उसमें जहाँ कहीं रोक की जरूरत होती है, वह सरकार को करना चाहिए। लेकिन आपको इतनी सलाह दूँगा कि आप उस पर बहुत ज्यादा वक्त खराब मत करो। जो बहुत जरूरी कहीं कोई चीज हो या कहीं तस्कर व्यापार से कोई बहुत ज्यादा रूपया इधर उधर बनाने का सवाल है, कहीं कोई चोरी बहुत बड़े पैमाने पर चल रही है तो पड़ जाना, लेकिन इसको इतना ज्यादा महत्व न देना।"[1]

द्वितीयः

व्यक्तिगत अभिव्यक्ति की पूर्ण स्वतंत्रता का यह तात्पर्य कदापि नहीं है कि व्यक्ति द्वारा सामाजिक दृष्टि से मान्य कानूनों का उल्लंघन किया जाये। लोहिया राज्य को यह अधिकार देते है कि 'अगर व्यक्ति सामाजिक मान्य कानूनों के विरूद्ध विद्रोह करता है, तो राज्य को उसके विरूद्ध कार्यवाही करनी चाहिए।'[2]

तृतीय :

सामाजिक मान्य कानूनों के घेरे में व्यक्ति को अभिव्यक्ति की पूर्ण स्वतंत्रता है, किन्तु "कर्म" के क्षेत्र में लोहिया ने बहुसंख्यक की मान्यता को ही स्वीकृति दी है।[3]

इस प्रकार हम देखते है कि डॉ. लोहिया ने व्यक्तिगत स्वतंत्रता तथा सामाजिक नियंत्रण का उचित सामजस्य करने का प्रयास किया है। अतः लोहिया को हम टी.एच.ग्रीन तथा गाँधी के निकट पाते हैं। ग्रीन के अनुसार व्यक्तिगत स्वतंत्रता का निर्धारण "सामान्य अच्छाई" से तय होता है। व्यक्ति समाज का एकीकृत अंग है, अतः व्यक्तिगत अच्छाई सामाजिक अच्छाई ही होगी। राज्य का दायित्व है कि वह उन प्रावधानों को सुरक्षा प्रदान करे, जो व्यक्तिगत स्वतंत्रता को बनाये रखने में आवश्यक होते हैं। गाँधी के अनुसार "हम स्वतंत्रता प्राप्त करना चाहते हैं तो हमें दूसरों को मारकर या दुःख देखकर (अर्थात शरीर बल से) नहीं, बल्कि स्वयं को मारकर या दुःख सहकर (अर्थात आत्मबल से) स्वतंत्रता प्राप्त करनी चाहिए।"[4] किन्तु ग्रीन एवं गाँधी दोनों के नैतिक एवं आध्यात्मिक आग्रह से लोहिया बहुत दूर हैं।

---

1. लोहिया- **देश-विदेश नीति : कुछ पहलू**, पृष्ठ 70.
2. **बी.बी.पित्ती, ए. त्रिपाठी तथा ओ.पी. निर्मल**- लोकसभा में लोहिया, भाग-3, पृष्ठ 147.
3. लोहिया- **मार्क्स, गांधी एण्ड सोशलिज्म**, पृष्ठ 424.
4. सम्पूर्ण गांधी वाड्.मय, पृष्ठ 325.

(ख) राजनीतिक स्वतन्त्रता–

राजनीतिक स्वतंत्रता से लोहिया का तात्पर्य एक इकाई के रूप में राष्ट्र की आत्मपूर्णता हेतु सभी प्रकार के उपनिवेशवाद तथा साम्राज्यवाद का अन्त होने से है। लोहिया ने पाँच प्रकार के साम्राज्यों– जमीनवाला, बुद्धिवाला, उत्पादनवाला, दामोंवाला और शस्त्रोंवाला– का विवेचन किया है। इन विभिन्न प्रकार के साम्राज्यों के परिणामस्वरूप एक समतायुक्त विश्व का सृजन करना असंभव है, क्योंकि इन्होंने मानवजाति के प्रत्येक पक्ष को जकड़ रखा है। अतः लोहिया के अनुसार समाजवादी व्यवस्था का यह दायित्व होगा कि एशिया तथा अफ्रीका में फैले उपनिवेशवाद का विरोध करे तथा इस हेतु आवश्यक कदम उठाये। इस दृष्टि से उन्होंने उन विभिन्न शक्तियों को जो साम्राज्यवाद विरोधी हैं, सभी को एक मंच पर एकत्र होकर इसका विरोध करने का आग्रह किया।

गाँधी को लिखे एक पत्र में साम्राज्य के पूर्ण अन्त हेतु लोहिया ने एक चार सूत्री योजना रखी जो निम्न प्रकार है।[1]

1. सब कौमें आजाद होंगी। जिन कौमों को अभी आजादी है वे अपने विधान का निर्णय बालिग मताधिकार के आधार पर निर्वाचित स्वराज्य पंचायत (कन्स्टिट्यून्ट ऐसेम्बली) के द्वारा करेंगी।

2. सब जातियाँ समान हैं और दुनिया के किसी हिस्से में कोई जातिगत विशेषाधिकार नहीं होगें। जो जहाँ चाहेगा वहाँ उसके बसने में कोई राजनीतिक बाधा नहीं होगी।

3. किसी देश में किसी देश की सरकार और उसके अधिवासियों की साख और लगी हुई पूँजी रद् कर दी जायेगी या अन्तर्राष्ट्रीय पंचायतों के सामने पुनः विचार के लिए पेश की जायेगी। जाँच के बाद जो उधार और लगी हुई पूँजी ठीक समझी जायेगी, उसकी जिम्मेंदारी व्यक्तियों की नहीं होगी, राष्ट्र की होगी।

   जबकि दुनियाँ की कौमें इन तीनों उसूलों को मंजूर कर चुकेंगी तब तक चौथा उसूल भी अमल में आयेगा, वह होगा–

4. पूर्ण निःशस्त्रीकरण :

   लोहिया के अनुसार ये चार सोपान हैं, जो स्वतंत्र विश्व के आधार होगें।

---

1. संघर्ष (पत्रिका), वर्ष 3, अंक 22, 10 जून 1940, पृष्ठ 18.

(ग) आर्थिक स्वतन्त्रता-

डॉ. लोहिया ने इस तथ्य को अच्छी तरह अनुभव किया कि आर्थिक स्वतंत्रता के बिना अन्य प्रकार की स्वतंत्रताओं का कोई अर्थ नहीं है। आर्थिक स्वतंत्रता की प्राप्ति हेतु लोहिया ने छोटी-इकाई-तकनीक को अपनाने का सुझाव दिया। वह एक तरफ व्यक्ति तथा दूसरी तरफ राष्ट्र को आत्मपूर्णता प्राप्ति में अग्रसर करेंगी। साथ ही लोहिया उद्योगों के राष्ट्रीयकरण तथा लोकतांत्रिककरण के समर्थक भी थे। इन उद्योगों को स्वतंत्र स्वायत्त निगमों के रूप में बदल दिया जाये तथा इनके प्रशासन में श्रमिक तथा उपभोक्ताओं को भी प्रतिनिधित्व दिया जाये।

डॉ. लोहिया इस स्थिति से भी पूर्णतः सचेत थे कि आर्थिक क्षेत्र में अप्रतिबन्धित व्यक्तिगत स्वतंत्रता मनुष्य की प्रत्येक की स्वतंत्रताओं के प्रति खतरा है, क्योंकि अप्रतिबन्धित व्यक्तिगत स्वतंत्रता का सीधा तात्पर्य पूँजीवादी व्यवस्था को बढ़ावा देना होगा। अतः समाजवादी समाज में उत्पादन का स्वतंत्र उद्यम संभव नहीं हो सकता। इसलिए उन्होंने कई प्रकार के आर्थिक प्रतिबन्धों- अतिरिक्त भूमि का भूमिहीन श्रमिकों को हस्तांतरण, बड़े उद्योगों का राष्ट्रीयकरण, मूल्य नियन्त्रण, गरीबी पर प्रतिबन्ध, भाषा तथा जातीय नीति का क्रियान्वयन- का सुझाव दिया।

समानता-

समानता पर डॉ. लोहिया के विचारों का वर्णन करने से पहले आवश्यक है कि हम समानता को समझे।

समानता का सच्चा अर्थ यह है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपना विकास करने के लिए अवसर की समता प्राप्त हो। इससे यह तात्पर्य है कि 'व्यक्तित्व के विकास के लिए जिन दशाओं व सुविधाओं की आवश्यकता होती है वे सभी को समान रूप से राज्य तथा समाज द्वारा प्रदान की जायें',[1] अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति के लिए सामाजिक आर्थिक और राजनैतिक अधिकार समान हों। अतः यदि किसी व्यक्ति समूह या वर्ग के कोई विशेष अधिकार हों तो उनका उन्मूलन करना आवश्यक है। साथ ही राज्य को अन्य प्रकार की

---

1. H.J. Laski- OP cit, PP. 153-54.

असमानताओं का अन्त करने का प्रयत्न करना चाहिए।

समानता को व्यवहारिक राजनीतिक रूप देने का प्रयास फ्रांस की राज्य क्रान्ति से शुरू होता है तथा समाजवाद के प्रचार से इसको प्रश्रय मिला है।[1] सामान्यतः समानता का अर्थ यह लगाया जाता है कि मनुष्य जन्म से समान होते है (दो पैर, दो हाथ एक मुँह आदि) अतः समाज में उन्हें एक सा व्यवहार, वेतन सुविधायें आदि मिलनी चाहिए। प्रकृति की दृष्टि में सब समान हैं अथवा प्रकृति ने सबको समान बनाया है, यह धारणा समानता की माँग का सही रूप प्रस्तुत नहीं करती। ''न्यूटन तथा बायरन, क्रामवेल तथा रूसो जैसे भिन्न प्रकार के लोगों के साथ एक सा व्यवहार करना' लास्की के शब्दों में स्पष्टतः मूर्खता होगी। समानता को समझने के लिए यह आवश्यक है कि हम इस बात को ध्यान में रखें कि असमानता प्राकृतिक अवस्था में नहीं अपितु नागरिक समाज में उत्पन्न होती हैं।''[2] इसलिए समाज में उत्पन्न असमानता का निराकरण किया जाना चाहिए। इसका अर्थ लास्की के शब्दों में ''एक सा व्यवहार करना नहीं, इसका तो आग्रह इस बात पर है कि मनुष्यों को सुख समान हक होना चाहिए, उनके इस हक में किसी प्रकार का आधारभूत अन्तर स्वीकार नहीं किया जा सकता। समानता मूलतः समानीकरण की एक प्रक्रिया है। प्रथमतः इसका अभिप्राय विशेषाधिकारों की समाप्ति है और दूसरे सभी व्यक्तियों को विकास के पर्याप्त अवसर उपलब्ध कराने से है।''[3] उदाहरण के लिए हम देखते है कि साधनों के अभाव में एक प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति अपना विकास नहीं कर पाता और दरिद्रता में जीवन विताता है, लेकिन एक मूर्ख यदि सेठ साहूकार के घर में पैदा हुआ है तो सारा जीवन बैठे बिठाये मौज मस्ती से गुजारता है। समाज में व्याप्त इस विषमता का अन्त करने के लिए समानता के सिद्धान्त का जन्म हुआ है। इसका अर्थ है समाज की ऐसी व्यवस्था जिसमें किसी व्यक्ति की स्थिति जन्म, जाति, वर्ण, रंग, लिंग या धन के कारण विषम न हो। सभी को अपनी योग्यता व श्रम के द्वारा अपनी स्थिति के निर्माण का अवसर मिले। समानता का अर्थ है, मानव विकास कि निमित्त आवश्यक उपकरणों का समान विभाजन। इसका अर्थ होता है- न्यस्त स्वार्थों और वर्ग स्वार्थों का विनाश तथा सामाजिक जगत में अतर्कसंगत समस्त रूढ़िवादिता का उन्मूलन।

---

1. विजय कुमार अरोड़ा- राजनीतिशास्त्र के सिद्धांत, पृष्ठ 269.
2. व्ही.पी. वर्मा- राजनीति और दर्शन, पृष्ठ 337.
3. Laski- A Grammar of Politics, PP. 153-54.

डॉ. लोहिया का अपनी समाजवादी व्यवस्था के घेरे में समानता की ऐसी संरचना प्रस्तुत करने का प्रयास रहा, जिसमें लघु इकाई के पूर्ण के रूप व्यक्ति को तथा वृहद् समुदाय के पूर्ण के रूप में राष्ट्र की सम्पूर्ण समानता की प्राप्ति सम्भव हो सके। अतः जिस प्रकार व्यक्ति को परिवार में भाईचारे युक्त सम्पूर्ण समानता की प्राप्ति होती है, उसी प्रकार की भावनाओं को विश्व स्तर पर विकसित किया जाये। जिसमें राष्ट्र के अन्दर ही नहीं, बल्कि राष्ट्रों के अन्दर भी समानता की प्राप्ति हो सके।

डॉ. लोहिया के अनुसार परिवार में जिस तरह का भाईचारा होता है, वह करीब -करीब सम्पूर्ण भौतिक समानता पर आधारित होता है। परिवार में सभी व्यक्तियों की न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति समान रूप से होती है। चाहे उनकी आमदनी कुछ भी हो या बूढ़े या बच्चों की तरह कुछ भी न कमायें। माता-पिता और बच्चों, पति और पत्नी, भाई और बहिनों के बीच करीब-करीब सम्पूर्ण एकता और सम्पूर्ण समानता आवश्यक होती है इसमें करीब-करीब सम्पूर्ण समपर्ण और त्याग सम्भव हो पाता है। लोहिया के अनुसार इस पारिवारिक भाईचारे की भावात्मक समानता को विश्व स्तर पर विकसित किया जाये, ताकि सम्पूर्ण मानव जाति की, एक समुदाय के रूप में समानता सम्भव हो सके। लोहिया ने लिखा है, "व्यक्तिगत 'स्व' का इतना विस्तार किया जाये या इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए 'स्व' को पूर्णतया समाप्त कर दिया जाये, साधनों से सम्बन्धित प्रश्न गौण हैं मुख्य बात तो है सृष्टि के साथ एकात्म होने का आनन्द। इसकी हर चीज के साथ समानता अनुभव करने का सुख। इस तरह का आध्यात्मिक और भावात्मक भाईचारा जीवन के महान् लक्ष्य के रूप में समानता की विशेषता है।"[1] किन्तु लोहिया के अनुसार व्यवस्थाओं- उदारवादी तथा मार्क्सवादी के परिणामों के फलस्वरूप पारिवारिक समता का आदर्श सम्पूर्ण मानव जाति तक विकसित नहीं हो पाया है। लोहिया के शब्दों में "इस भाईचारे को सम्पूर्ण मानव कुटुम्ब तक फैलाने की कोशिश अभी तक सफल नहीं हुयी है। वह हमेंशा स्वार्थ की चट्टान से टकराकर बिखर गयी है। यह स्वार्थ अपने-अपने परिवार कि दायरे में तो उदार होता है, लेकिन मानव कुटुम्ब की विशालता के आगे संकीर्ण हो जाता है।"[2] यह आदर्श आज असम्भव बना हुआ है, इसके मुख्यतः लोहिया ने दो प्रमुख कारण माने है :-

---

1. लोहिया- **मार्क्स, गांधी एण्ड सोशलिज्म,** पृष्ठ 424.
2. वही.

प्रथम लोहिया के अनुसार आज पारिवारिक समता का आदर्श सम्पूर्ण मानवता के लिए असम्भव बनने का प्रमुख कारण भौतिक गैर बराबरी का होना है जो कि आधुनिक व्यवस्थाओं की देन है। राष्ट्रों के बीच और राष्ट्र के अन्दर भौतिक असमानता इतनी व्यापक है कि वह व्यक्तियों के सामर्थ्य से बाहर हो गयी है। अतः व्यक्ति इसके दबागों को बर्दाश्त करने में असफल रहता है। इसलिए अपने आप को इसके अनुरुप बदल लेता है। अर्थात् व्यक्ति असमानता की स्थिति से समझौता कर लेता है। पिछड़े हुए देशों की अथाह दरिद्रता और दुःख के बीच जनता विश्व व्यापी भाई-चारे के दबावों को कैसे बर्दाश्त कर सकती है। इसी तरह विकसित देशों के गोरे और रंगीन लोगों के बीच असमानता इतनी ज्यादा है कि मानवजाति के भाई-चारे की बात करना हास्यास्पद है। यूरोपवासियों में एशिया के लोगों के प्रति विषमता का विचार किस मात्रा तक पूर्वाग्रह के रुप में जकड़ा है, इसका उदाहरण देते हुए, लोहिया ने लिखा है-''किसी भी यूरोपीय को सम्भवतः इस विचार मात्र से ही धक्का लगेगा कि कोई दूसरा यूरोपीय उसे रिक्शे में बिठाकर खींचे। लेकिन वही यूरोपीय किसी एशियायी द्वारा खींचे जाने वाले रिक्शे पर चढ़ने के पहले थोड़ा भी नहीं झिझकेगा।''[1] दो ऐसी व्यवस्थाओं के मध्य जहाँ मूल आवश्यकताओं की पूर्ति की मात्रा में बहुत गहरा अन्तर हो, वहाँ उनके बीच किसी प्रकार का कोई भाईचारा संभव नहीं है। लोहिया के अनुसार वहाँ राष्ट्रों के मध्य सामीप्य एवं भाईचारे की बात नैतिक अनुरोध ही हो सकती है।

डॉ. लोहिया के अनुसार आजतक मानव एकता हेतु थोड़ा बहुत प्रयास भी किया तो वह बिना किसी ठोस एवं गत्यात्मक कार्यक्रम दिये, एक नैतिक अनुरोध तक ही सीमित रहा। अतः राष्ट्र के अन्दर तथा राष्ट्रों के मध्य भाईचारे की भावना को नैतिक अनुरोध की अपेक्षा वास्तविक रूप में बदलना है तो भौतिक समानता युक्त समाजवादी व्यवस्था को अपनाना होगा।

भौतिक समानता से लोहिया का तात्पर्य राष्ट्र के भीतर आन्तरिक सामीप्य के साथ-साथ राष्ट्रों के बीच बाह्य सामीप्यता से है। लोहिया के शब्दों में ''भाईचारे की भावना कम से कम उसकी पूर्ण सम्भावनाओं की सीमा तक भौतिक समानता के बिना असम्भव है

---

1. लोहिया- **मार्क्स, गांधी एण्ड सोशल्जिम,** पृष्ठ 225.

किसी भी हालत में अपने जैसे दूसरे मनुष्यों के साथ भावात्मक भाईचारा यदि उसकी जड़े भौतिक समानता में नहीं है तो असम्भव है।"[1]

द्वितीय- सम्पूर्ण मानव जाति के मध्य रक्त सम्बन्धता के अभाव का एक अन्य कारण यह भी रहा कि हमारे सोचने का ढंग एक पक्षीय रहा। कहीं समानता का अर्थ भोजन, आवास एवं वस्त्र की पूर्ति रहा तो कहीं शिक्षा, चिकित्सा आदि की न्यूनतम पूर्ति को आदर्श बनाया गया। अतः प्रत्येक देश किसी एक पक्ष को लेकर समानता युक्त व्यवस्था का दावा प्रस्तुत करने लगा। इस प्रकार समानता का मापदण्ड या कसौटी क्या हो, इस बारे में मतभेद पैदा कर दिया गया। उदाहरण के लिए, भारतवासियों के लिए ऑक्सफोर्ड और क्रैंब्रिज की शिक्षा विशिष्ट अभिजात्य वर्ग की शिक्षा होती है। जबकि वास्तव में इन विश्वविद्यालयों में अस्सी प्रतिशत यूरोपीय छात्र-छात्रायें साधारण व्यक्तियों के लड़के-लड़कियाँ होते हैं। सोवियत रूस चिकित्सा और प्राथमिक शिक्षा, में पश्चिमी यूरोप तथा अमेंरिका से बहुत आगे है जबकि पश्चिमी यूरोप तथा अमेंरिका न्यूनतम भोजन एवं वस्त्र के मामले में सबसे ऊपर है। इंग्लैण्ड आज भी शिक्षा के क्षेत्र अमेंरिका से बहुत आगे बढ़ा हुआ है। जबकि अमेंरिका भौतिक सम्पन्नता में बढ़ाचढ़ा है। अतः प्रश्न उठता है कि समानता का आधार क्या हो? एक देश या दूसरे का एक व्यक्ति तथा दूसरे व्यक्ति में समानता का आधार एवं मापदण्ड क्या हो? एक देश एक आधार पर दूसरे से नीचे है तो दूसरे क्षेत्र में उससे बहुत ऊँचा।

डॉ. लोहिया के अनुसार सम्पूर्ण मानव जाति में पूर्ण भावात्मक समानता भी पनप सकती है, जबकि समानता के इन विभिन्न पहलुओं को एक साथ स्वीकार किया जाये।

व्यक्ति की पारिवारिक समानता तथा एकता को सम्पूर्ण मानव जाति तक विस्तृत करने का लोहिया का आदर्श, उसकी सामाजवादी व्यवस्था की सम्पूर्ण बराबरी का आदर्श है। सम्पूर्ण समानता से लोहिया का तात्पर्य ऐसी व्यवस्था से है, जिसमें सभी व्यक्ति बिना किसी पूर्वाग्रह के समान होगें। एक आदर्श एक वातावरण, एक भावना, और शायद यह इच्छा हो सकती है कि मनुष्य और मनुष्य के बीच की सभी व्यवस्थायें- आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक समान हो। सम्पूर्ण समानता का लोहिया का आदर्श निम्न मान्यताओं में प्रकट

1. लोहिया- **मार्क्स, गांधी एण्ड सोशल्जिम**, पृष्ठ 225.

हुआ :-

1. कानून के सामने पूर्ण समानता।
2. सम्पूर्ण राजनीतिक समानता, अर्थात् सामाजिक एवं आर्थिक किसी भी आधार पर मताधिकार के अधिकार को प्रतिबन्धित नहीं करना चाहिए।
3. सम्पूर्ण सामाजिक समानता, अर्थात् राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पदसोपानीय मान्यता पर फैली जाति प्रथा का अन्त।
4. सम्पूर्ण आर्थिक समानता अर्थात् न्यूनतम भोजन, वस्त्र एवं आवास की पूर्ति तथा बच्चों, बेरोजगारों एवं वृद्धों को पेंशन आदि की व्यवस्था।

परन्तु विभिन्न तात्कालिक कारणों के फलस्वरूप सम्पूर्ण समानता का आदर्श एक सपना बना हुआ है तथा व्यावहारिक रूप से एक साथ सम्पूर्ण बराबरी युक्त व्यवस्था का सृजन करना असंभव है। अतः लोहिया ने कहा कि "सम्पूर्ण समानतायुक्त समाजवादी व्यवस्था का सपना पूरा नहीं हो पाता तब तक हमें "सम्भव बराबरी" को आदर्श बनाना चाहिए। संभव समानता से लोहिया का तात्पर्य 'देशकाल' की अवस्था की जाँच करके जितनी बराबरी जिस समय संभव हो उसे ही तात्कालिक लक्ष्य बनाना आवश्यक है।"[1] देशकाल की परिस्थितियों को अनदेखा करते हुए यदि संभवता से अधिक बराबरी का लक्ष्य बनाया गया तो वह आदर्शवादी पागलपन होगा और कम को लक्ष्य माना गया तो वह यथास्थितिवाद का समर्थन होगा।

डॉ. लोहिया ने भारतीय परिस्थितियों को देखते हुए सम्पूर्ण समता के संभव रूपों का एक ग्यारह सूत्री कार्यक्रम रखा है वह निम्न प्रकार है[2]

1. सभी प्राथमिक शिक्षा समान स्तर तथा एक ढंग की और स्कूल का खर्चा तथा अध्यापकों की तनख्वाह एक जैसी हो। प्राथमिक शिक्षा के सभी विशेष स्कूल बन्द कर दिये जायें।
2. अलाभकर जोतों से लगान अथवा मालगुजारी खत्म हों। सम्भव है कि इसका नतीजा हो सभी जमीन कर अथवा लगान का खात्मा और खेतिहर आयकर की शुरूआत।

---

1. लोहिया- **सम्पूर्ण और संभव बराबरी,** पृष्ठ 8.
2. लोहिया- **समता और सम्पन्नता,** पृष्ठ 7-8.

3. पाँच या सात वर्ष की ऐसी योजना बनाना जिससे सभी खेतों को सिंचाई का पानी मिले। चाहे वह पानी मुफ्त मिले अथवा किसी ऐसी दर पर या कर्ज पर कि जिससे हर किसान अपने खेत के लिए पानी ले सके।
4. अंग्रेजी भाषा का माध्यम सार्वजनिक जीवन के हर अंग से हटे।
5. हजार रूपये महीना से ज्यादा खर्चा कोई व्यक्ति न कर सके।
6. अगले बीस वर्षों के लिए रेलगाड़ियों में मुसाफिरों के लिए सिर्फ एक दरजा हो।
7. अगले बीस वर्षों के लिए मोटर कारखानों की कुल क्षमता बस, मशीन, हल अथवा टैक्सी बनाने के लिए इस्तेमाल हो और कोई निजी इस्तेमाल की गाड़ी न बने।
8. एक ही फसल के दाम का उतार चढ़ाव बीस प्रतिशत के अन्दर हो और जरूरी इस्तेमाल की उद्योगी चीजों के बिक्री दाम लागत खर्च के डेढ़ गुने से ज्यादा न हो।
9. पिछड़े समूहों यानी आदिवासी, हरिजन, औरतें, हिन्दु तथा अहिन्दुओं की पिछड़ी जातियों को साठ प्रतिशत का विशेष अवसर मिले। जाहिर है कि वह यह विशेष अवसर ऐसे धन्धों पर नहीं लागू होता जिनमें खास हुनर की जरूरत है, जैसे चीर-फाड़, किन्तु थानेदारी अथवा विधायकी ऐसे धन्धों में नहीं गिने जा सकते।
10. दो मकानों से ज्यादा मकानी मल्कियत का राष्ट्रीयकरण।
11. जमीन का असरदार बँटवारा और उसके दामों पर नियन्त्रण।

यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक होगा कि डॉ. लोहिया का अन्तिम आदर्श सम्पूर्ण बराबरी ही रहा। इसी कारण उन्होंने कहा कि "हमें संभव बराबरी के आदर्श को स्थायी एवं शाश्वत सिद्धान्त नहीं बना लेने चाहिए। नहीं तो दिमाग यथास्थिति का समर्थक हो जायेगा। दिमाग के अंधविश्वासी होने और पिटी हुई लकीर पर चलने के कारण परिस्थितियों के अनुसार उसे मोड़ना कठिन होगा"[1] लोहिया के अनूसार "सम्पूर्ण बराबरी के आदर्श को ध्यान में रखते हुए संभव बराबरी का घेरा समय समय पर बढ़ाते रहना चाहिये ताकि हम सम्पूर्ण बराबरी को प्राप्त कर सकें। समाजवाद से एक सीढ़ी नीचे उतरो, उस सीढ़ी का नाम है बराबरी। उस बराबरी से एक सीढ़ी और नीचे उतरो, आर्थिक बराबरी, समाजिक

1. लोहिया- **मार्क्स, गांधी एण्ड सोशल्जिम,** पृष्ठ 230.

बराबरी, राजनीतिक बराबरी, धार्मिक बराबरी उससे एक सीढ़ी और नीचे उतरो तब उसके बाद आयेगी समता, सम्पूर्ण समता।"[1] इस प्रकार लोहिया ने सम्पूर्ण बराबरी की ओर बढ़ती हुयी संभव बराबरी का आदर्श रखा।

संभव समानता को सम्पूर्ण समानता की ओर अग्रसर करने के लिए लोहिया ने तीन तरीके- बाध्यता, अनुनय-विनय और निजी उदाहरण सुझाये है। इस संदर्भ में लोहिया का कहना है कि हर एक साधन की अपनी-अपनी सीमायें हैं उन्होंने निजी उदाहरण का तरीका सबसे प्रभावशाली माना है, क्योंकि इसका प्रयोग छोटे-बड़े हर मुद्दे पर किया जा सकता है तथा इसके द्वारा व्यक्ति दूसरों के सामने स्वयं का निजी आदर्श रखता है, जो कि प्रभावक दृष्टि से काफी महत्वपूर्ण होता है। अनुनय-विनय का तरीका वहीं अपनाया जा सकता है जहाँ सामने वाला तार्किक दृष्टिकोण अपनाने के लिए तैयार हो।

पूर्वाग्रहयुक्त दृष्टिकोण अपनाने वालों के सामने चाहे वह पूर्वाग्रह किसी निजी स्वार्थ के कारण हो या किसी विचारधारा के आधार पर अनुनय विनय का तरीका सार्थक नहीं हो सकता क्योंकि उनकी दृष्टि में उनका स्वयं का निर्णय ही सही होता है। जहाँ तक बाध्यात्मक तरीके का प्रश्न है, लोहिया ने इसका क्षेत्र तुलनात्मक रूप से सीमित माना है। यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक होगा कि लोहिया का बाध्यता से तात्पर्य केवल मात्र कानूनी बाध्यता से ही है। हालांकि कानून द्वारा प्रतिबन्ध लगाकर हम संभव समानता से सम्पूर्ण समानता की तरफ बढ़ सकते हैं, किन्तु इसके फलस्वरूप कृत्रिम भयमुक्त व्यवस्था का जन्म होगा जो कि जनता के स्वाभाविक जीवन का अंग नहीं हो सकती। अतः इसके द्वारा दूरगामी लक्ष्य प्राप्ति पर हमेंशा प्रश्न चिन्ह लगा रहता है। यहाँ हम लोहिया की स्थिति तथा समानता की पश्चिमी मान्यता में अन्तर देखते हैं। पश्चिमी समानता की अवधारणा में उसे प्राप्ति हेतु केवल मात्र राज्य द्वारा साधन संरचना ही प्रमुख मानी जाती है अर्थात वहाँ कानून की बाध्यता पर अधिक बल दिया जाता है, जबकि लोहिया के अनुसार कानून द्वारा बाध्यता का दायरा बहुत संकीर्ण है।

---

1. लोकसभा डिवेट्स, भाग 39, पृष्ठ 613-14.

(य) राजनीति में ग्रामीण व स्त्री :

डॉ. लोहिया का मुख्य आग्रह लघु-समुदाय के रूप में ग्रामीण जन-समुदाय की राजनीतिक-गत्यात्मकता पर जोर देने पर रहा। लोहिया ने उन लोगों की जोरदार भाषा में आलोचना, की जिन्होंने ग्रामीणों की मानसिकता संकीर्णता, अशिक्षित, रूढ़ियों तथा जातीय मान्यताओं से ग्रसित के कारण उन्हें अधिकार तथा शक्ति देने से झिझकते हैं। लोहिया ने कहा कि हो सकता है कि ग्रामीण प्रतिनिधि स्वार्थी, अनभिज्ञ तथा न्याय की अपेक्षा जाति को अधिक महत्व दें, किन्तु उनमें जो जड़ता ग्रसित है, उसमें गति लाने का एकमात्र तरीका यही है कि उन्हें अधिकार तथा शक्ति दी जाये। लोहिया ने माना कि सच्चे अर्थों में जनतन्त्र की प्राप्ति केवल तभी हो सकती है, जब सामान्य नागरिक को शासन-प्रक्रिया में भागीदारी का मौका मिले। इसके लिए आवश्यक है कि शक्ति का प्राथमिक केन्द्र गॉव को माना जायें। ''लघु-समुदायों के लोगों को शक्ति देने से ही प्रथम श्रेणी का लोकतंत्र संभव हो सकता है। चौखम्भा राज्य में ही सामान्य व्यक्तियों को प्रभावशाली और बौद्धिक जनतंत्र देना सम्भव दिख सकता है।''[1]

भारत जैसे कृषि प्रधान देश में लगभग ठाई लाख गाँव हैं और इन गाँवों की आर्थिक विषमता का मुख्य कारण है, भूमि का असमान वितरण। भारत का खानदानी सम्पन्न वर्ग मूलतः सामन्ती है। ये सामन्त देश की अधिकांश भूमि पर अपना आधिपत्य रखते हैं। भूमि के इस असमान वितरण से समाज में भूमिहीनों की संख्या सर्वाधिक है। इन भूमिहीनों के सामने सामन्तों की कृपा अर्जित करके जीने के अलावा और कोई साधन नहीं है। काश्तकारी बटाई और खेतिहर मजदूरी करके जीने के अतिरिक्त इनके पास अन्य साधन नहीं हैं। काश्तकारी तो कुछ अपेक्षाकृत सम्पन्न निम्न मध्यम वर्ग के लोग करते हैं जमीन की लगान जमींदार को देते हैं और खेती करते हैं, इसके अनेक रूप का काश्तकार पट्टेदार, रैयत आदि रूपों में प्रचलित है। इसके बाद जो बटाई वाला वर्ग है, उसका शोषण बुरी तरह से होता है। जमीन तो जमींदार की होती है, पर उस पर खेती खाद, बीज की व्यवस्था करता है बटाईदार। पैदावार का 65 प्रतिशत तक वह जमींदार को दे देता है। केवल 25 प्रतिशत में अपना और अपने परिवार का काम चलाता है। दो तीन वर्ष में खाद पानी से जब वह खेत तैयार कर लेता है, पैदावार भी बढ़ा लेता है, तब भूस्वामी उससे जमीन ले लेता है।

---

1. लोहिया- **फर्गमेंटस् ऑफ ए वर्ल्ड माइंड, मेटयारानी,** पृष्ठ 73-74.

यह अन्याय सदियों से चला आ रहा है। गांवों में इस प्रकार पाँच वर्ग हैं- सामन्त, जमींदार, काश्तकार, बटाईदार और भूमिहीन। इनमें से सामन्त और जमींदार में फर्क थोड़ा हैं, पर शेष तीन के बीच क्रमशः खाई बढ़ती जाती है। सामन्त तो कुछ करता ही नहीं, वह तो जमीन का पैसा लेता है। शहर में बसता है। खरीद पर खाता है पर पैसा बहुत लेता है। जमींदार कुछ खेती भी करता है। बटाईदार बिना जमीन के खेती करता है। भूमिहीन तो भगवान के सहारे जीता है। जमींदारी उन्मूलन के कानून भी बने तो भी शोषण के माध्यमों में कोई कभी नहीं आई।

डॉ. लोहिया ने किसान आन्दोलन के नेतृत्व के दौरान पूरे ग्रामीण समाज के इस संगठन को बहुत नजदीक से देखा था। उन्होंने कहा कि यह असमानता तभी दूर होगी जब पूरी जमीन का राष्ट्रीयकरण करके फिर से बंटवारा होगा। डॉ. लोहिया जमीन के स्वामित्व के सम्बन्ध में 1:3 से अधिक के अन्तर को स्वीकार नहीं करते थे। उनका मत था- ''अधिक से अधिक और कम से कम जमीन के स्वामित्व में एक और तीन का रिश्ता होना चाहिए।''[1]

भारत की ग्रामीण व्यवस्था में सर्वाधिक शोषित प्राणी बटाईदार है क्योंकि वह सारा श्रम और उत्पादन करने के बावजूद पैदावार का एक चौथाई भी नहीं पाता। जब तक भूमि का पुनर्वितरण नहीं होता, तब तक के लिए बटाईदारों का बहुत दृढ़ संगठन बनाने के पक्ष में एक तीव्र आन्दोलन उन्होंने चलाया था। उन्होंने बटाईदारों को लेकर एक संघर्ष चलाने की कल्पना की थी। वह कहते थे- ''बटाईदार आन्दोलन को संगठित करके मजबूत करना है। मजबूत करने का अर्थ है कि जब फसल में से गैर मुनासिब हिस्सा लेने मालिक आये तो अड़ जाये, लेटे, जेल जाये, मार खाये। में तो यही पसंद करूँगा। लेकिन अगर यह नहीं कर सकते तो डण्डा लेकर ही खड़े हो जाओ। पर फसल मत जाने दो''[1]

डॉ. लोहिया का मानना था कि ग्रामीण जनों की स्थिति में सुधार के लिए कृषि नीति में परिवर्तन किया जाना चाहिए। लोहिया के अनुसार अगर हमें राष्ट्रीय उत्पादन बढ़ाना है तो आवश्यक है कि कृषि पद्धति के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाया जाये। उसमें इस तरह की सुधार योजना प्रस्तुत की जाये ताकि भारतीय अर्थव्यवस्था में निर्णायक भूमिका निभा

---

1. लक्ष्मीकांत वर्मा- **समाजवादी दर्शन और डॉ. लोहिया,** पृष्ठ 139.
2. वही

सके। किन्तु साथ ही लोहिया ने इस बात से आगाह कर दिया कि जमींदारी प्रथा का प्रचलन, कृषि भूमि की कमी, बढ़ती हुई जनसंख्या नयी भूमिका अपर्याप्त विकास आदि कृषि पद्वति की बिडम्बनायें रही हैं। अतः ऐसी परिस्थितियों में साम्यवादी या पूँजीवादी व्यवस्था पर आधारित किसी भी प्रकार की सुधार योजना पूर्णतः असफल ही होगी। लोहिया ने लिखा है, "अमेंरिका में एक कृषि श्रमिक लगभग 70 एकड़ भूमि पर काम करता है । रूस में सामूहिक कृषि के अन्तर्गत यह औसत 30 एकड़ पड़ता है। आज भारत में कृषक 1½एकड़ भूमि पर कार्य कर रहा है। भारतीय कृषि की कोई भी औचित्यपूर्ण योजना चाहे वह पूँजीवादी या साम्यवादी स्वरूप पर आधारित हो, के लिए छः से दस एकड़ भूमि प्रति श्रमिक चाहिए। इसका तात्कालिक परिणाम यह होगा कि 40 लाख कृषि श्रमिक कार्य से वंचित हो जायेंगे। इसका अर्थ होगा 80-100 लाख श्रमिक तथा उन पर आश्रित बेरोजगार हो जायेंगे"[1]

अतः इस दिशा में सुधार की योजना इन परिस्थितियों के संदर्भ में ही ढूंढ़नी होगी। सुधार योजना की दिशा में लोहिया द्वारा निम्न सुझाव प्रस्तुत किये गये हैं:-

प्रथम- डॉ. लोहिया के अनुसार भूमि स्वयं जोतने वाले किसान के पास ही होनी चाहिए। जमींदारी प्रथा के प्रचलन होने के कारण, जमीन का मालिक कोई अन्य होता है तो जोतने वाला कोई दूसरा। यह प्रथा कृषक को दयनीय दशा में धकेल देती है, क्योंकि उपज का अधिकांश हिस्सा जमींदार के पास चला जाता है। साथ ही कृषक की दयनीय तथा भय की स्थिति के कारण उसमें कृषि के प्रति उपेक्षा का भाव जागृत हो जाता है, फलतः उत्पादन भी कम होता है। लोहिया के शब्दों में "जमींदारी प्रथा से सम्बन्धित कानून तथा व्यवहार मुख्यतः स्वार्थ और जड़ता से ग्रसित है। परिणामस्वरूप कृषि उत्पादन का निम्न स्तर तथा गरीबी और कार्य करने की अक्षमता बनी रहती है। जो खेती में कार्य करते हैं ग्रामीण कानूनों तथा व्यवहार के उस घने तथा कुटिले जंगल से घिरे होते हैं, जो उनकी आंशिक जीविका को तो सुरक्षित रखता है, किन्तु समय और जीवन के सब आनन्दों से वंचित कर देता है"[2] जमींदारी प्रथा सम्पूर्ण सामाजिक अच्छाई तथा उत्पादन दोनों दृष्टियों से हानिकारक है, अतः इस प्रथा को समाप्त कर दिया जाये। लोहिया का आग्रह था कि तुरन्त अध्यादेश जारी करके भूमि को जोतने वाले को उसका मालिक बना दिया जाये, जो कि भारतीय कृषि व्यवस्था में प्रमुख गत्यात्मक तत्व होगा।

---

1. लोहिया-**फर्गमेंटस् ऑफ ए वर्ल्ड माइंड, मेटयारानी, 1952,** पृष्ठ 247.
2. वही, पृष्ठ 57.

द्वितीय- जब एक बार इस मान्यता को स्वीकार कर लिया जाता है कि भूमि जोतकर्ता की हो तो आवश्यक हो जाता है कि भूमि का पुनः वितरण हो, क्योंकि लोहिया के अनुसार कुछ परिवारों का काफी कृषि भूमि पर आधिपत्य है, जबकि गरीब कृषक के घेरे में कृषि भूमि कम है। साथ ही, जनसंख्या की वृद्धि तथा नये पेशों के अभाव के कारण इस समुदाय में कृषि भूमि छोटे-छोटे टुकड़ो में बँट गयी है, जिसके फलस्वरूप वह अलाभप्रद सिद्ध हो रही है और भूमिहीन श्रमिकों की संख्या बढ़ती जा रही है। अतः आवश्यक हो जाता है कि कृषि भूमि का पुनः वितरण किया जाये। लोहिया ने कृषि भूमि वितरण की योजना को निर्धारित करते हुए एक परिवार हेतु अधिकतम भूमि की सीमा तीस एकड़ निर्धारित की है। उनके अनुसार तीस एकड़ से अधिक भूमि को उसके मालिक से ले लिया जाये तथा भूमिहीनों में वितरित कर दी जाये। इस दृष्टि से समाधान सुझाते हुये लोहिया ने कहा कि यह ग्राम-पंचायत का दायित्व होगा कि वह गरीब वर्ग, विधवा अथवा अनाथों के हिस्से की भूमि को सुरक्षा प्रदान करें।

तृतीय- लोहिया का आग्रह है कि अनउपजाऊ तथा बेमुनाफे की खेती पर से लगान माफ कर दिया जाये, ताकि गरीब किसानों का बोझ हल्का हो सके। भारतीय किसान के लिए सम्भव नहीं कि वह दस रूपये प्रति एकड़ उपज में से साढ़े तीन रूपये राजस्व के रूप में दे। साथ ही लोहिया के अनुसार "इस लगान माफी द्वारा सरकार की आय पर भी कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ेगा। पूरे राज्य का खर्च सत्ताईस अरब रूपये है। जिसमें से सम्पूर्ण भू- राजस्व द्वारा एक सौ बीस करोड़ रूपये आते हैं तथा बेमुनाफे की खेती से मात्र सत्तर करोड़ रूपये आते हैं।"[1]

अतः न केवल बेमुनाफे बल्कि सम्पूर्ण कृषि राजस्व को खत्म कर दिया जाये तो सरकार के कामकाज में अन्तर नहीं आयेगा। बिना मुनाफे की खेती का आधार स्पष्ट करते हुए लोहिया ने कहा "अगर औसत जमीन पर, अगर औसत मेहनत करके किसान अपने गाय-बैल और बच्चों का खर्च निकाल लेता है तो टैक्स न लगाया जाये।"[2] इस दृष्टि से उन्होंने साढ़े छः एकड़ भूमि को सीमा रेखा माना है अर्थात, साढ़े छः एकड़ तक की खेती मुनाफा नहीं देती, केवल खर्च निकल सकता है। अतः इस पर लगाान खत्म कर दिया जाये।

1. चौखम्भा, वर्ष 1, अंक 43, 2 अगस्त 1958, पृष्ठ 15.
2. वही, पृष्ठ 8.

चतुर्थ– कृषि में मूल्य निर्धारण भी एक निर्णायक तत्व रहा है। हमारे यहाँ कृषि उपज के मूल्य हमेंशा नीचे तथा कृषि व्यापार किसान विरोधी रहा है। कृषि उत्पादक संख्या में अधिक होने के उपरान्त भी गरीबी के कारण कीमतों पर नियन्त्रण करने में हमेंशा असफल रहे हैं। अनियमित रूप से कीमतों की वृद्धि के फलस्वरूप पैदावार खपत के बराबर नहीं हो पाती फलतः कृषक वर्ग हमेंशा दुःख और दयनीय स्थिति में पड़ा रहता है। अतः कृषकों की दशा सुधारने हेतु आवश्यक है कि दाम नीति तय की जाये।

स्त्री :

डॉ. लोहिया ने अपने विचारों में नारी स्वतंत्रता के प्रति विशेष आग्रह किया है। उनका मानना है कि भारत में केवल चार वर्ण ही नहीं हैं। एक पाँचवा वर्ग नारी का भी है, जो हजारों वर्षों से शोषित और उत्पीड़ित होती आ रही है। लोहिया के अनुसार हमारा समाज पुरूष उच्चता पर आधारित है जहाँ दृष्टिकोण, विचार तथा संस्थायें सभी नारी की अधीनता को प्रमाणित करते हैं। हमारे यहाँ पवित्रता की अवधारणा को सर्वसम्मति से स्वीकार किया जाता है। समाज ऐसी औरत-सावित्री को आदर्श के रूप में स्वीकार करता है जो शरीर मन और आत्मा के साथ जन्म-जन्मान्तर तक एक पति के साथ जुड़ गयी है। किन्तु यह अवधारणा पूर्णतः औरत की अधीनता को प्रमाणित करती है, क्योंकि पवित्रता की अवधारणा में औरत अपने पति के प्रति सम्पूर्ण समर्पण होता है, जबकि इस अवधारणा की परिकल्पना में पति को पत्नी के प्रति समपर्ण भावना से दूर रखा गया है इसी कारण हमारे यहाँ इस अवधारणा के समानान्तर पत्नीव्रता की कोई मान्यता नही है, जिससे कि समाज में सन्तुलन व समानता की स्थिति बनी रहे। लोहिया के अनुसार सवाल यह नहीं कि किसी पत्नी का अपने पति के प्रति लगाव व समर्पण न हो किन्तु मूल प्रश्न यह है कि क्या इससे समानता की स्थिति कायम होती है। उनके अनुसार "पुरूष औरत में समानता तभी कायम हो सकती है कि जिस प्रकार पत्नी का पति के प्रति समर्पण होता है, उसी प्रकार पति का भी पत्नी के प्रति समर्पण होना चाहिए।"[1]

औरतों की इस हालत का विश्लेषण डॉ. लोहिया ने किया और औरतों की समस्याओं की दृष्टि से नीति-अनीति का सवाल भी छेड़ा। उन्होंने कहा- "पुण्य क्या और

1. लीलाराम गुर्जर- **भारतीय समाजवादी चिंतन**, पृष्ठ 138-39.

पाप क्या है, अब इस सवाल से बचा नहीं जा सकता। मेंरा विश्वास है कि आध्यात्मिकता निरपेक्ष होती है लेकिन नैतिकता सापेक्षिक होती है और हर युग और हर व्यक्ति को भी अपनी खास नैतिकता खुद ही खोजनी चाहिए।''[1]

हिन्दुस्तान का दिमाग शादी और स्त्री-पुरूष सम्बन्धों के बारे में पवित्रता की बहुत बातें करने पर भी, विकृत हो गया है। इस विकृति के सम्बन्ध में चर्चा करते हुए लोहिया ने सवाल उपस्थित किया कि दो स्त्रियों में एक, जिसने सारी जिन्दगी में सिर्फ एक ही बच्चे को जन्म दिया है, हालाँकि यह बच्चा अवैध है, और दूसरी ओर जिसके आधे दर्जन से भी ज्यादा वैध बच्चे हो, कौन ज्यादा अच्छी और ज्यादा नैतिक है। ''मुझे कोई शक नहीं कि सिर्फ एक अवैध बच्चा आधे दर्जन वैध बच्चों से कहीं ज्यादा अच्छा है।''[2]

डॉ. लोहिया के अनुसार हमारे यहाँ नैतिकता का दोहरा मापदण्ड पाया जाता है- एक पुरूषों के लिए दूसरा औरतों के लिए। पुरूष को प्रत्येक क्षेत्र में स्वतंत्रा दी गई है, जबकि औरत को पुराने रीति-रिवाजों तथा सामाजिक व्यवहार के नियमों की बन्दी बनाया गया है। फलतः पुरूष और औरत के बीच असमानता तथा गैर-बराबरी पैदा हो जाती है, जो कि सामाजिक पूर्णतः तथा न्याय की विरोधी है। नर-नारी की गैर-बराबरी आधार है और सब गैर-बराबरियों के लिये या अगर आधार नहीं है तो, जितने भी आधार हैं, बुनियाद की चट्टानें है, समाज में गैर-बराबरी की और नाइन्साफी की उनमें यह चट्टान शायद सबसे बड़ी चट्टान है। मर्द-औरत के बीच की गैर-बराबरी, नर-नारी की गैर-बराबरी। लोहिया ने कहा कि ''हमारे लिए सावित्री नहीं बल्कि द्रोपदी आदर्श प्रतीक है, क्योंकि वह नर-नारी समानता सखा-सखी की प्रतीक है। कृष्ण के साथ द्रोपदी का सम्बन्ध नारी अधीनता का सम्बन्ध नहीं बल्कि नर-नारी समानता का सम्बन्ध है।''[3]

नर-नारी समानता का संघर्ष केवल भारत तक सीमित नहीं है। वह आज पूरे विश्व में व्यापक रूप से चल रहा है। पश्चिमी देशों में स्त्रियों को समान अधिकार बीसवीं सदीं में मिला है। सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दीं में पश्चिमी देशों में स्त्रियों को मताधिकार भी नहीं था। इसलिए जहाँ तक पश्चिम के देशों में राजनीतिक अधिकार की बात है, वह स्त्रियों को उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी में ही मिला है। इसी प्रकार आर्थिक समानता भी स्त्रियों को बीसवीं शताब्दी के बाद ही प्राप्त हो सकी है। जहाँ तक सामाजिक समानता की

1. इंदुमति केलकर- लोहिया सिद्धांत और कर्म, पृष्ठ 416.
2. वही
3. लोहिया- जातिप्रथा, पृष्ठ 166.

बात है, वहाँ नर-नारी सामाजिक स्तर पर समान स्तर जरूर है लेकिन पश्चिम की समस्त समानताओं में आज भी योनि-भेद की सापेक्षता में समानता के संकुचित रूप को देखा जा सकता है।

जहाँ तक भारतीय समाज का प्रश्न है, उसके धर्म-ग्रन्थों में आचार-संहिता में, और शास्त्रों में, विवाहित स्त्री के अधिकारों का वर्णन है। लेकिन कुंवारी स्त्रियों का या विधवाओं का निषेधात्मक वर्णन है। शास्त्रों में स्त्रियों को बहुत ऊँचा स्थान दिया गया है। विडम्बना यह है कि जितना कुछ भी शास्त्रों में वर्णित है, उसके विपरीत व्यवहार में प्रचलित है। यही कारण है नर-नारी, समानता का सैद्धान्तिक आधार तो भारतीय समाज में स्वीकार कर लिया गया है, किन्तु व्यवहार में उसका पालन नहीं किया गया है। भारतीय स्त्री को न तो राजनैतिक अधिकार हैं और न आर्थिक और सामाजिक। संविधान में बालिग मताधिकार के रूप में स्त्री को मत व्यक्त करने का अधिकार तो मिल गया है, किन्तु परम्परा के अनुसार स्त्रियाँ उनका प्रयोग नहीं करतीं, या करतीं भी हैं तो पति की सलाह या निर्देश पर। जहाँ तक आर्थिक अधिकार का सवाल है हिन्दु बिल के आधार पर उनको सम्पति आदि अधिकार तो मिला, परन्तु वह अब भी व्यवहार में नहीं आ सका है, और न ही पूर्ण रूप से लागू हो पाया। आंकड़ों के हिसाब से जितनी शिक्षित नारियाँ हैं, उनमें से केवल 0.01 प्रतिशत शिक्षित नारियाँ सेवारत हैं। ऐसा होने का मुख्य कारण है सामाजिक स्तर पर पुरूष प्रधान समाज का प्रभुत्व। इस प्रभुत्व के आधार पर ही एक नितान्त अशिक्षित और गुणहीन पति को यह अधिकार है कि वह अपनी पत्नी को जैसा चाहे वैसा रखे। डा. लोहिया इस पुरूष प्रधान प्रभुता के खिलाफ थे। उनका कहना था कि पशुओं को भी इस तरह बन्धन में रखना अमानवीय है, फिर नारी तो पुरूष के समान ही मानवीय है।

डॉ. लोहिया का आग्रह था कि पुरूष उच्चता तथा आधिपत्युक्त सामाजिक संरचना में सुधार किया जाये तथा ऐसा आधार प्रस्तुत किया जाये ताकि नर-नारी समानतायुक्त व्यवस्था का निर्माण हो सके। उनके अनुसार इस दिशा में निम्न कदम सार्थक हो सकते हैं:-

प्रथम, दहेज प्रथा अर्थात दहेज लेने और देने पर कानूनी रोक लगा दी जाये। दहेज के कारण नव दम्पत्तियों का स्वाभाविक आत्म-मिलन न होकर एक सौदेबाजी होती है।

शादी के तय होने या न होने का निर्णायक तत्व यह है कि दहेज के रूप में क्या कुछ मिलेगा या नहीं। लोहिया के अनुसार, "उनकी शादियों का वैभव आत्मा के मिलन में नहीं है, जिसे प्राप्त करने का नव-दम्पत्ति प्रयत्न करते बल्कि 20 लाख की कोठियों और 50 हजार से भी ज्यादा कीमती साड़ियों में है।"[1] जब तक दहेज निर्णायक तत्व रहेगा नर-नारी की समानता की कल्पना निरर्थक ही होगी, क्योंकि शादी उपरान्त दहेज के कारण लड़कियों को विभिन्न प्रकार की यातनायें दी जाने की दशा में उनकी स्थिति किसी गुलाम या दास की स्थिति से अच्छी नहीं होती। अतः आवश्यक है कि दहेज पर तुरन्त रोक लगा दी जाये।

द्वितीय, औरत को यौन सम्बन्धों में पूर्णतः स्वतन्त्रता दी जानी चाहिए। अगर एक समानतायुक्त व्यवस्था का सृजन करना है तो पुरूष को जिस क्षेत्र में स्वतन्त्रता है, उसमें नारी को भी समानता दी जाये। लोहिया के अनुसार, "मेंरी मुसीबत तो यह है कि बराबरी चाहिए। अगर दुनिया अच्छी बनाना चाहते हो अगर मर्द एक के बाद एक प्रेम कर सकता है, तो फिर औरत को भी वही गुंजाइश होनी चाहिए।"[2] लोहिया के अनुसार मां-बाप का दायित्व केवल मात्र लड़की को अच्छा स्वास्थ्य तथा अच्छी शिक्षा देने तक ही सीमित रहना चाहिए। वह किसके साथ रहती है या किससे शादी करती है, उनकी जिम्मेंदारी से बाहर होना चाहिए, क्योंकि जब लड़की स्वयं किसी के साथ शादी करने का निश्चय करेगी तो उस समय उसकी भूमिका समान सहयोगी की होगी।

तृतीय, नर-नारी समानता की दिशा में अन्य प्रेरक तत्व है कि औरत को आर्थिक रूप से स्वतन्त्र बनाया जाये। औरत का कार्यक्षेत्र-घर की चार दीवारी तक ही सीमित नहीं रखना चाहिए वरन् सार्वजनिक जीवन के सभी क्षेत्रों में औरत की समान रूप से पहुँच होनी चाहिए। नारी को पुरुष के बराबर का वेतन, समान काम के लिए समान मजदूरी तथा समान कानूनों का होना चाहिए।

इन सभी कारकों में से डॉ. लोहिया ने ज्यादा प्रभावी कारक मानसिक जागरूकता को माना है। उनके अनुसार जब तक व्यक्ति मानसिक रूप से नारी समानता का पक्षपाती नहीं होता तब तक इन बाहरी कारकों का कोई महत्वपूर्ण परिणाम सामने नहीं आ सकता। अतः आवश्यक है कि भारतीय जनमानस में इस तरह की जागरूकता पैदा की जाये कि वह स्वतः नारी की समानता तथा स्वतन्त्रता का समर्थक बन जाये। इस हेतु उन्होंने सार्वजनिक

1. लोहिया- **जातिप्रथा,** पृष्ठ 7.
2. वही

बहस तथा वाद-विवादों को प्रमुख माना है। लोहिया ने लिखा हैः- "यह दिमागी हलचल का एक बहुत बड़ा और जबरदस्त आधार बन जायेगा। में समझता हूँ आज हिन्दुस्तान में जितनी बड़ी कमियाँ हैं, उनमें शायद सबसे बड़ी कमी यह है कि दिमाग मर गया है। दिमाग को पुनर्जीवित करने के कई तरीके हैं। उनमें एक तरीका है वाद-विवाद का।"[1] लोहिया का आग्रह था कि जगह-जगह सार्वजनिक उत्सव जैसे-रामायण मेंला-करके नर-नारी समानता की वहस को छेड़ना चाहिए। जिससे मानसिक रूप से ऐसा वातावरण तैयार किया जाये, जिसका आधार ही समानता तथा स्वतन्त्रता हो। इसके लिए विश्वविद्यालयों के प्रोफसरों की भी मदद ली जानी चाहिए, क्योंकि वे इस मुद्दे को काफी सूक्ष्मता के आधार पर जन सामान्य की पहुँच का विषय बनाने में सक्षम होते हैं। दूसरी तरफ प्रोफसरों का यह दायित्व भी है कि वे विद्यार्थियों में इस तरह के विचारों का सृजन करने का प्रयास करें कि वे पुरूष अधिनायकवादी प्रवृति से दूर रह सकें।

(र) जातीय राजनीति :

डॉ. लोहिया का विचार था कि भारतीय राजनीति में अधिकांशतः उच्च जातियों को ही नेतृत्व का अवसर प्राप्त होता है। वे निम्नजातियों को भी राजनीति में स्थान दिलाना चाहते थे। वे भारतीय राजनीति से जातीयता की भावना को समाप्त करना चाहते थे। उनका सुझाव था कि निम्न जातियों को राजनीति में भाग लेने के लिए विशेष अवसर देना चाहिए तभी पिछड़ी जातियों में भी योग्यताओं और संस्कारों का निर्माण होगा और समूचा हिन्दूस्तान सबल बनेगा। उन्होंने कहा- "इसलिए सोशलिस्ट पार्टी कटिबद्ध है कि पिछड़ी जातियों को नेतृत्व का अवसर मिले। सार्वजनिक जीवन में कम से कम 60 प्रतिशत नेतृत्व स्थान इन्हें मिले। जहाँ जरूरी हो, कानूनी संरक्षण द्वारा किन्तु साधारणतः दिमागी ढ़ाँचे को बदलकर नेतृत्व का यह परिवर्तन हो।"[1]

डॉ. लोहिया विशेष अवसर के सिद्धान्त को तब तक कायम रखना चाहते थे जब तक कथित द्विज जाति एवं पिछड़ी जाति के लोग ऊंची जातियों के स्तर पर न आ जायें। जिस दिन दोनों धरातल पर आ जायेंगे, विशेष अवसर का सिद्धान्त समाप्त कर दिया

---

1. लोहिया-**जातिप्रथा**, पृष्ठ 6.
1. वही, पृष्ठ 182.

जायेगा। उन्होंने जाति प्रथा पर कठोर प्रहार किये इसका परिणाम यह हुआ कि धीरे-धीरे जातिवाद की भावना समाप्त हो रही है और सभी जातियों को राजनीति में भाग लेने का अवसर प्राप्त हो रहा है। भारतीय राजनीति का उद्देश्य सभी जातियों का कल्याण करके देश में समानता लाना होना चाहिए तभी देश का हित होगा।

डॉ. लोहिया अनुसूचित जातियों और आदिवासियों की स्थिति में सुधार करना राजनीति का मुख्य उद्देश्य बतलाते हैं। डॉ. लोहिया ने 'जाति तोड़ो आंदोलन' शुरू किया था। उनकी दृष्टि में यदि जातियों को सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक दृष्टि से उन्नत कर दिया जाए तो जाति पर निर्भर वर्ग निर्मूल हो सकते हैं। उससे एक सर्वथा नवीन तथा सशक्त समाज की नींव पड़ सकती है। वह वर्ग विहीन समाज की स्थापना करना चाहते थे। उन्होंने लिखा है कि "आर्थिक गैर-बराबरी और जाति-पाँति जुड़वाँ राक्षस हैं और अगर एक से लड़ना है तो दूसरे से भी लड़ना जरूरी है।"[1] डॉ. लोहिया योग्यता-अयोग्यता पर विचार किए बिना ही चाहते थे कि पिछड़ी या अनुसूचित जाति को राज्य में उच्च पद दिए जांए तथा राजनीति में उन्हें नेतृत्व का मौका दिया जाए, क्योंकि - जाति अवसर योग्यता को अवरूद्ध करती है। और अवरूद्ध अवसर योग्यता को अवरूद्ध करता है इसलिए अवरूद्ध योग्यता पुनः अवसर को अवरूद्ध करती है। यह चक्र निरंतर चलता रहता है जाति व्यक्ति व समाज दोनों के विकास को अवरूद्ध कर देती है।

पद दलित वर्ग तथा निम्न जाति के प्रति डॉ. लोहिया में एक जबर्दस्त क्रांतिकारी पीड़ा थी। वे उनमें 'अधिकार- बोध' को जगाना चाहते थे और स्वाभिमान को, उनका तर्क था कि उनके लिए फिलहाल कर्तव्य की बात गौण है। वे अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करें, उसी से उनका पिछड़ापन दूर होगा और वे सुसंस्कृत भी इसी से होंगे। अधिकार का प्रयोग करना वे जानें। न केवल उच्च पदों पर आसीन हो जाऐं बल्कि पदाधिकार का बोध उनमें स्वाभिमान की चेतना को जगा सकें, यह बहुत जरूरी है। वे देख रहे थे कि सर्वहारा वर्ग में से कोई ऐसा नहीं है कि जिसके पास तीन गुण हों- 'न उसके पास जातीय स्वाभिमान है, न अर्थ-सपन्नता है और न आंग्ल भाषा का अवबोध है।'[2] हिन्दुस्तान में यदि किसी व्यक्ति को गौरव से रहना है तो इसके लिए इन तीन गुणों की बहुत जरूरत है। बुर्जुआ वर्ग का इन तीनों गुणों पर एकाधिकार है। इसी आधार पर वर्गों का अस्तित्व बना हुआ है और

1. लोहिया-**जातिप्रथा**, पृष्ठ 18.
2. राजेन्द्र मोहन भटनागर- **अवधूत लोहिया**, पृष्ठ 221.

बराबर बना रहेगा। यही कारण है कि पूँजीपति का शोषण-चक्र बराबर घूमता रहेगा। वे आवश्यक समझते थे कि समाज के विभिन्न वर्गों के बीच सम्मानीय संबंध बने और वे एक-दूसरे के लिए कार्य करें। वे एक दूसरे के महत्व को समझें।

डॉ. लोहिया ने कहा था कि "बनारस हिन्दू युनिवर्सिटी, अलीगढ़ मुसलिम युनिवर्सिटी ऐसे नाम और सेना में भी जो सिक्ख रेजिमेंट, जाट रेजिमेंट, राजपूत रेजिमेंट इत्यादि जाति के आधार पर हिस्से होते हैं, ये खत्म करना चाहिए।"[1] तथा कथित उच्च्व जातियों ने अपनी विशिष्ट भाषा, वेषभूषा आचार और रहन-सहन के द्वारा, जिनके लिए छोटी जातियाँ अक्षम हैं, जनता के बहुसंख्यक भाग में हीन भावना भर दी गयी। पिछले पन्द्रह सौ वर्षों से हमारे यहाँ की उच्च्व जातियों ने जनता की भाषा से अलग भाषा का इस्तेमाल किया है, चाहे यह संस्कृत, अरबी, फारसी हो या अंग्रेजी हो। उनके कपड़े अलग किस्म के रहे तथा रहन-सहन की विशिष्ट आधुनिक शैली को अपनाया गया। अधिकांश गरीब जनता इस शैली को अपनाने में असमर्थ रही, इसलिए उसमें निराश भावना जागृत हो गयी । इसी भावना ने उच्च्व जातियों को अपना आधिपत्य स्थापित करने में सहयोग दिया। लोहिया के शब्दों में "मन पर सफल शासन के द्वारा, शासित और जनता में, निराशा और तकदीर से ही हीन होने की भावना भर कर शरीर पर शासन करना आसान हो गया है। जनता में विशिष्ट भाषा, भूषा और भवन की शैली का दबदबा होता है। वह अपने आपको हीन और जिसके पास ये विशिष्टतायें हैं, उन्हें ऊँचा समझने लगती हैं। जाति के तत्व के कारण इस समूची स्थिति से उबर पाना प्रायः निराशा जनक है।"[2] जातिप्रथा के कारण देश की नब्बे प्रतिशत जनता को सामाजिक राजनीतिक तथा आर्थिक अधीनस्थता की स्थिति में ला दिया गया है। जाति का मतलब होता है जनता को योग्यता से वंचित करना तथा हमेशा एकाधिपत्य की स्थिति को बनाये रखना, क्योंकि उच्च्व कार्यों-राजनीति तथा व्यापार के लिए कुछ विशिष्ट योग्यता की जरूरत होती है और उसे खास जातियों तक ही सीमित कर दिया गया। इसलिए नीची जातियों के लिए यह असंभव हो गया कि उन कार्यों का सम्पादन कर सकें।

देश की जनसंख्या में ऊँची जातियाँ बीस प्रतिशत स्थान रखती हैं। किन्तु राष्ट्रीय क्रियाकलापों के सभी महत्वपूर्ण विभागों-राजनीति, उच्च्व प्रशासनिक नौकरियाँ सेना, व्यापार

1. इंदुमति केलकर- **लोहिया सिद्धांत और कर्म,** पृष्ठ 415.
2. लोहिया-**जातिप्रथा,** पृष्ठ 125.

आदि में अस्सी प्रतिशत स्थानों पर जमी हुयी हैं। अतः जनसंख्या का बहुत बड़ा हिस्सा सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक गतिविधियों से बाहर रह जाता है। ऐसी स्थिति में सामाजिक हित-वृद्धि और सामाजिक पूर्णता की कल्पना नहीं कर सकते। जब किसी राष्ट्र के मर्मस्थल के अस्सी प्रतिशत नेतृत्व को उसकी आबादी के बीस प्रतिशत में ही चुना जायेगा, तो निश्चय ही क्षय रोग की अवस्था आ जायेगी। उसकी अस्सी प्रतिशत आबादी अकर्मण्यता और अयोग्यता की अवस्था में पड़ जाती है।

राजनीतिक दृष्टि से लोहिया ने प्रत्यक्ष चुनाव, व्यस्क मताधिकार और विशेष अवसर के सिद्धान्त की आवश्यकता पर बल दिया। व्यस्क मताधिकार तथा प्रत्यक्ष चुनाव के सम्बन्ध में लोहिया का मत है कि "जैसे-जैसे यह व्यस्क मताधिकार चलता रहेगा, चुनाव चलते रहेंगे, वैसे-वैसे जाति का ढीलापन बढ़ता रहेगा।"[1] चूंकि नीची जातियाँ संख्या में अधिक हैं। अतः वयस्क मताधिकार के आधार पर धीरे-धीरे वे स्वतः राजनीतिक रूप से ऊपर आ जायेंगी। जहाँ तक विशेष अवसर के सिद्धान्त का प्रश्न है, लोहिया ने कहा कि "फ्रांसीसी क्रान्ति के अग्रज तथा साम्यवादी क्रान्ति के मार्गदाताओं को समान अवसर के सिद्धान्त के प्रति गहरा आग्रह रहा। समान अवसर के सिद्धान्त को एक प्रगतिशील तथा सामाजिक दृष्टि से गत्यात्मक धारणा के रूप में स्वीकार किया गया।"[2] किन्तु लोहिया के अनुसार हमारी परिस्थिति यूरोप से भिन्न है। यूरोप में हमारी जैसी जात-पात की कोई समस्या नहीं थी। अतः यहाँ की परिस्थिति के समान अवसर के सिद्धान्त द्वारा कोई क्रान्तिकारी परिवर्तन नहीं कर सकते। कई वर्षों की परम्परा तथा प्रशिक्षण, भाषा तथा व्यापकरण, मेल-जोल तथा सौदेबाजी की क्षमता द्वारा ऊँची जातियों ने सभी तरह की योग्यता विकसित कर ली है। अतः समान आधार पर योग्यतानुसार अवसर की प्रतियोगिता में ऊँची जातियाँ ही आगे आयेंगी। लोहिया के शब्दों में, "यूरोपियों के लिए समान अवसर क्रान्तिकारी था, क्योंकि उनमें जातपात नहीं थी। हमारे लिये समान अवसर का मतलब क्रान्तिकारी नहीं होता, क्योंकि हमारे अन्दर जात-पात है। इसलिए जात-पात वाले समाज में समान अवसर का मतलब होगा कि ऊँची जाति वाले हैं, जिनके कई हजार बरस से विधा आदि के संस्कार है, उनको अवसर खूब मिलता चला जायेगा, और बाकी लोग पिछड़ते चले जायेंगे।"[3] अतः लोहिया के अनुसार छोटी जातियों को उठाने हेतु विशेष प्रकार का सहारा देने की जरूरत है।

---

1. लोहिया- **निराशा के कर्तव्य,** पृष्ठ 29.
2. लीलाराम गुर्जर- **भारतीय समाजवादी चिंतन,** पृष्ठ 129.
3. लोहिया- **निराशा के कर्तव्य,** पृष्ठ 30.

लोहिया के अनुसार 'विशेष अवसर सिद्धान्त' के द्वारा ही देश की सम्पूर्ण जनता आगे बढ़ सकती है तथा समाज और राष्ट्र आत्मपूर्णता को प्राप्त कर सकता है। कुछ लोगों का यह तर्क रहा है कि अगर पिछड़े वर्ग के व्यक्तियों को देश की साठ प्रतिशत ऊंची जगह दे दी गयी तो राष्ट्र का संचालन कुशलता तथा सक्षमता से नहीं हो पायेगा और अन्ततः अराजकता की स्थिति आ जायेगी लोहिया ने इस तर्क को अस्वीकार करते हुए कहा कि पिछड़े वर्ग को प्रशासन करने का अवसर दिये बिना ही उनमें कुशलता की आशा करना व्यर्थ होगा। प्रशासन की बागडोर हाथ में आने पर हो सकता है कुछ व्यक्ति अयोग्य साबित हों, किन्तु अन्ततः उनमें वे सभी गुण विकसित हो जायेगें, जो उसके लिए आवश्यक होते हैं। हो सकता है सौ को बैठायेंगे, तो उनमें से 60-70 निकम्में निकलेंगे। लेकिन जो 30 अच्छे निकलेंगे, वे सारे समाज में एक इतनी जबर्दस्त हलचल पैदा करेगें कि जैसे आटे में खमीर मिलते हैं, वैसे सारे समाज को पुनर्जीवित कर देगें। जब पिछड़े वर्ग के लोगों को अधिकार सुपुर्द कर दिये जायेंगे तो उनमें एक प्रकार की जागरूकता पनपेगी तथा वे योग्य बनने की कोशिश करेंगे।

डॉ. लोहिया ने जाति प्रथा के विरूद्ध पूरा राजनैतिक अभियान प्रारम्भ किया वर्ग उन्मूलन के संदर्भ में उन्होंने जाति प्रथा की जो व्याख्या प्रस्तुत की उसमें जाति प्रथा की बुराई को नष्ट करने के लिए समता और राजनैतिक अधिकार को प्रथम स्थान दिया। उन्होंने जाति प्रथा के विस्तृत तंत्र का अध्ययन किया। ब्राह्मण संस्कृति और ब्राह्मणवाद के पूरे ढ़ाँचे से 'वशिष्ठी' और 'वाल्मीकी' परम्परा की खोज की। उन्होंने लिखा जो शूद्र का हाथ ब्राह्मण का पैर धोता है, वही ब्राह्मण का पैर उसे लात मारता है। ब्राह्मणवाद के इस शिकंजे में शूद्र की सामाजिक स्थिति की व्याख्या करते हुए उन्होंने समाज पर बहुत कड़े प्रहार किये। उन्होंने 'सुधार' और अधिकार की लड़ाई तीव्र की। उन्होंने स्पष्ट कहा कि वह जाति व्यवस्था में केवल सुधार नहीं चाहते। वह इसका विनाश चाहते है। इस विनाश के लिए वह एक सामाजिक उथल-पुथल, एक क्रान्ति लाना चाहते हैं ताकि देश की 90 प्रतिशत जनता इसमें हरिजन, शूद्र, भंगी, पिछड़े वर्ग के लोग, मुसलमान औरतें शामिल हैं, वह देश की राजनीति में अधिकाधिक रूप से खुलकर भाग ले सकें। वह सुधार के समर्थक होते हुए सुधार और अधिकार की लड़ाई में भेद करते थे। सुधार से अधिकार की लड़ाई को ज्यादा महत्व देते थे। वह जगह-जगह से ठहती हुई भारतीय सामाजिक व्यवस्था की मरम्मत नहीं करना चाहते थे।

वह उसमें पेसबंद लगाने के भी पक्षधर नहीं थे। वह राजनैतिक और संवैधानिक अधिकार के साथ साथ आन्तरिक परिवर्तन अर्थात मन का बदलाव लाना चाहते थे। इस 'मन' के बदलाव के साथ वह समता की इतनी तीव्र भूख जगाना चाहते थे, जिससे पूरी भारतीय सामाजिक व्यवस्था में व्यापक परिवर्तन आ जाये। उसका मात्र बाहरी स्वरूप न बदले। उसकी आन्तरिक संरचना में ही वह तत्व जागृत हो जाये जो पूरे समाज को आन्दोलित करके हजारो वर्ष के इस कलंक को मिटा दे।

वास्तव में डॉ. लोहिया अपनी इन नीतियों से पिछड़ी जातियों 'अनुसूचित जातियों' और 'अनुसूचित आदिवासियों' में एक नये स्वाभिमान की लहर पैदा करना चाहते थे। इसी दृष्टि से उन्होंने आदिवासियों और गिरिजनों का भी आवाहन किया था, उनमें भी गठबंधन बनाये थे। उनको भी वह इस 'विशेष अवसर' के सिद्धान्त पर एक जुट करना चाहते थे । ऐसा करते समय डॉ. लोहिया उसके खतरों के प्रति भी सर्तक थे। वह जानते थे, कि यदि जाति प्रथा टूटी और हजारों वर्ष से दबे लोगों में जागृति आई तो इस जागरण के प्रथम परिवर्तन में कुछ गलत चीजें भी उभर कर आयेंगी, और तब समाजवादी नेतृत्व की असली परख होगी। देखना होगा कि परिवर्तन गलत रास्ते पर न जाने पाये।

डॉ. लोहिया ने कहा था कि "हिन्दुस्तान के मौजूदा हरिजनों के डॉ. अम्बेडकर और श्री जगजीवनराम, दो प्रकार हैं। डॉ. अम्बेडकर विद्वान थे, उनमें स्थिरता साहस और स्वतन्त्रता थी, वे बाहरी दुनिया को हिन्दुस्तान की मजबूती के प्रतीक के रूप में दिखाये जा सकते थे। लेकिन उनमें कटुता थी और वे सीमित थे। वे गैर-हरिजनों के नेता बनने से इनकार करते थे। मुझे पिछले पाँच हजार बरस की तकलीफ और उसका हरिजनों पर असर भली प्रकार समझ में आता है। मुझे उम्मीद थी कि डॉ. अम्बेडकर जैसे महान भारतीय इससे ऊपर उठ सकेंगे।"[1]

दूसरे जगजीवनराम के बारे में लोहिया ने राय दी कि उनमें न आत्मसम्मान, न विद्वता, न प्रतिभा, लेकिन चापलूसी, जनेऊ धारियों की चापलूसी है। लोहिया ने इस दृष्टि से सोशलिस्ट पार्टी को सलाह दी कि जब हरिजनों के बीच में जाओ तो जलन की बातें करो और जब बाकी सब लोगों के बीच में जाओ तो मिलन की बात। पार्टी को नये ढंग के हरिजन बनाने होंगे, जिनमें डॉ. अम्बेडकर की विद्वता और आत्मसम्मान हो, लेकिन वैसी

1. इंदुमति केलकर- **लोहिया सिद्धांत और कर्म**, पृष्ठ 424.

जलन और कुढ़न न हो, जिनमें जगजीवनराम की चापलूसी न हो, लेकिन उनका मिलन हो।

डॉ. लोहिया की आकांक्षा थी कि डॉ. अम्बेडकर सोशलिस्ट पार्टी के साथ आयें। केवल संगठन में ही नहीं बल्कि पूरी तौर पर से सिद्धान्त में भी। वह मौका उनको नजदीक मालूम होता था। लेकिन इस बीच मौत आ गयी। डॉ. अम्बेडकर लोहिया से मिलना चाहते थे। उन्होंने लोहिया को चिट्ठी भी लिखी थी कि 'एकत्र आने के लिए हम लोग क्या कर सकते है।' लोहिया भी जल्दी से जल्दी उनसे मिलना चाहते थे।

इण्डियन नेशनल बैकवर्ड क्लासेज फेडरेशन के अध्यक्ष चन्दापुरी से भी लोहिया मिले (अगस्त 1957) और उनसे विभिन्न समस्याओं तथा सोशलिस्ट पार्टी और भारतीय पिछड़ा वर्ग संघ के विलयन सम्बन्धी बातें की, और बाद में दोनों का विलयन भी हुआ।

इस तरह बनिया-ब्राह्मण राजनीति से ऊब कर लोहिया ने पार्टी को सलाह दी कि मुसलमान, औरत, हरिजन आदिवासी और शूद्र को उनके योग्यता का सवाल खड़ा न करके साठ फीसदी ऊँची जगहों पर बिठाया जाय।

(ल) भारतीय समाज की दशा और दिशा :

वर्तमान भारतीय समाज के गठन को लेकर डॉ. लोहिया प्रायः दो बातें कहते थे, पहली गठन की और दूसरी गठन हीनता की। भारतीय समाज को वह भारी-भरकम और डील-डौल वाला गठनहीन समाज मानते थे, जो कमजोर और कायर होते हुए भी अपना प्रभुत्व जमा लेता है। वह हमेंशा छिपा रहता है। हल्की सी आहट से छिपने की कोशिश करता है असंगठित समाज से वह कभी-कभी झगड़ा भी मोल लेता है। क्योंकि वह जानता है कि असंगठित समाज उससे वजन में बड़ा है, शरीर में बड़ा है और ताकत में बड़ा है फिर भी, जब कभी निर्णायक युद्ध होगा तो वह अपनी संगठित शक्ति से उसे पराजित कर देगा। डील-डौल से बड़ा होते हुए भी वह हार जायेगा। वह बड़ा डील-डौल वाला महान शक्तिशाली है, पर असंगठित है, इसलिए उसे हारना पड़ता है।

डॉ. लोहिया जब भारतीय समाज की वर्तमान स्थिति के बारे में यह चित्र प्रस्तुत

करते थे, तो हमेंशा खीझ, गुस्से और दुख से भर जाते थे। दर्शन, कला, चिन्तन, साहित्यज्ञान, उदारता, आस्था, विश्वास में श्रेष्ठ होते हुए भी भारतीय समाज की दुर्दशा का कारण वह भारतीय समाज की कृत्रिमता मानते थे।

भारतीय समाज में सब कुछ है, लेकिन कालान्तर में सब कुछ विघटित ही नहीं असंगठित है। धर्म की ऊँचाई है तो इतनी कि जिसकी थाह नहीं पर कर्म की ढिलाई इतनी है कि वैचारिक ऊँचाई के बावजूद वह लक्ष्यभेद नहीं कर पाता। सामाजिक व्यवस्था में जाति-पाँति, उपजाति आदि में पूरा समाज इतना बँटा है कि कहीं किसी संगठन का आभास नहीं मिलता। व्यवस्था में भी दृष्टि ऐसी है कि हर चीज का यथास्थान महत्व है, किन्तु हर व्यवस्था ठहरी हुई है। उसमें गति नहीं है, संतोषी इतना है कि उसे कुछ चाहिए ही नहीं। जब वह संतोष की दार्शनिकता में अपनी मजबूरी को बदल देता है तो सारा दर्शन पाखण्ड लगने लगता है। डॉ. लोहिया मानते थे कि एक सामान्य भारतीय तकनीकी ज्ञान संसार के और देशों की अपेक्षा कहीं तेज और गुणवान है, पर नतीजा कुछ नहीं निकाल पाता।

जाति व्यवस्था को वह समता का घातक मानते थे और जितना भी निष्क्रियता देश में है, उसका मुख्य कारण वह जाति व्यवस्था को ही मानते थे। आज के भारतीय समाज में जाति अनेक प्रकार की प्रताड़नाओं का कारण बनी है। इतनी भयंकर जकड़बन्दी जाति की है कि व्यक्ति का आत्मसम्मान उसकी स्वतंत्रता, सब कुछ नष्ट हो जाते हैं।

डॉ. लोहिया भारतीय समाज के स्त्री-पुरूष सम्बन्धों को लेकर भी दुखी थे। वह समझ नहीं पाते थे कि भारतीय दिमाग एक साथ दो विरोधी विचारों की विसंगति को कैसे जीता है। एक ओर तो नारी को वह लक्ष्मी देवी, जाने क्या-क्या कहता है और दूसरी ओर उसका जीवन नारकीय बनाता है। विचार और कर्म में भेद क्यों आ जाता है, यह विपरीत स्थिति क्यों पैदा होती है, इस पर भी डॉ. लोहिया की अलग सोचने की शैली है। वह भारत के पुरूष प्रधान समाज के आलोचक थे। उसे वह देश की उन्नति में बाधक मानते थे। वह मानते थे कि जब तक भारत में स्त्रियों को समानता का अधिकार नहीं मिलेगा तब तक देश का स्वस्थ विकास हो ही नहीं सकता।

धर्म कैसे समाज के विकास में आड़े आता है, इस पर भी डॉ. लोहिया के विचार

स्पष्ट है। वह धर्म को मनुष्य की उदात्त चेतना का चरमोत्कर्ष मानते थे। साथ ही राजनीति को मानवीय बुराइयों को दूर करने वाला साधन।

डॉ. लोहिया इस अर्थ में एक पारस्परिक निकटता धर्म और राजनीति में मानते थे और दोनों के आदान-प्रदान को भी स्वीकार करते थे। लेकिन आज की स्थिति में धर्म और राजनीति का आदान-प्रदान है ही नहीं इसका मुख्य कारण यह है कि धर्म ने भी उदात्तता की ओर अग्रसर होना छोड़ दिया है, और राजनीति भी बुराइयों के खिलाफ लड़ने के बजाय निहित स्वार्थों का केन्द्र हो गई है। यही नहीं, धर्म ने अन्याय के विरूद्ध आवाज उठाना बन्द कर दिया है और राजनीति अन्यायों की प्रवर्तक हो गई है। इस तरह धर्म और राजनीति दोनों ही अपनी धुरी से खिसक गये हैं।

धर्म और राजनीति की इस विसंगति का भी सामाजिक जीवन पर प्रभाव पड़ता है। अन्य देशों में धर्म और राजनीति की इस विसंगति के विरोध में कई मानववादी आन्दोलनों का जन्म हुआ, किन्तु भारत में कोई भी उस प्रकार का प्रवाह नहीं चला। यह भी नहीं हुआ कि यूरोप की भाँति भारत में धर्म व्यक्तिगत आस्था की चीज बन जाय। नतीजा यह है कि धर्म, जिसे क्रान्तिकारी रूप लेना चाहिए था, वह पण्डितों और मुल्लाओं के हाथ में पड़ कर नितान्त यथास्थितिवादी बन गया और राजनीति पर किसी भी प्रकार का प्रत्यक्ष या परोक्ष दबाव या प्रभाव नहीं रह गया । समाज में धर्म राजनीति दोनों ''यथास्थितिवादी'' हो गये। राजनीति की ''यथास्थिति'' से तो वह स्वयम् सीधी टक्कर ले ही रहे थे, साथ ही वह चाहते थे कि धर्म को अयथार्थवादी स्थिति से मुक्ति दिलाकर सक्रिय और गतिशील बनायें ताकि इन जड़ मुल्लाओं और पण्डितों से मुक्त होकर धर्म व्यक्ति के निजी विश्वास के रूप में विकसित हो सके। लोहिया की इन कटु आलोचनाओं का यह आशय कदापि नहीं है कि उनका भारतीय दर्शन या भारतीय समाज के प्रति श्रद्धा या उनमें विश्वास नहीं था। वास्तव में भारत के राजनीतिज्ञों में यदि कोई सही अर्थों में भारतीय चिन्तन और भारतीय समाज के प्रति सबसे ज्यादा प्रतिबद्ध था, तो वह डॉ. लोहिया थे।

भारत के उदात्त चिन्तन और उसकी आध्यात्मिक उर्जा के वह सबसे बड़े प्रशंसक थे। भारतीय दर्शन के न जाने कितने शब्द उन्होंने समाजवादी आन्दोलन में खपा दिये। सगुण, निर्गुण, चित्त, भेदाभेद, मात्रा भेद, तन मात्र, असीम, अनन्तता, मुक्ति,

मर्यादाशील आदि सैकड़ों शब्द हैं जो लोहिया ने समाजवादियों को रटा दिये थे। भारत की इस महान चिन्तन के विषय में वे लिखते हैं- "शायद ही कोई देश संसार में ऐसा हो जो इस प्रकार अतीत के निर्गुण सूक्ष्म स्मृतियों, किंवदन्तियों में रमता और जीता हो, जितना कि भारत रमता और जीता है। यहाँ के लोग प्राचीन गाथाओं को सुनकर अश्रु विगलित हो जाते है।, भावनाओं के द्वन्द में उल्लसित हो जाते है, लेकिन यह सब होते हुए भी कोई भी इनका गहराई से अध्ययन नहीं करता"[1]

डॉ. लोहिया भारतीय समाज के बड़े ही गंभीर अध्येता भी थे। वह भारतीय मानस को बड़े ही गहरे स्तर पर विवेचित करते थे। यह सही है कि वह भारतीय जीवन की विसंगतियों के निर्मम आलोचक थे, पर इसके बावजूद वह उनके बड़े ही गहरे गुणग्राही भी थे। उन्हें दुख था कि गत पाँच हजार वर्षो से पूरा हिन्दू मानस उदारता और रूढ़िवादिता के बीच महज झूलता रहा है। जाति व्यवस्था, नारी सम्पत्ति के प्रति दृष्टि बदल नहीं पाया क्योंकि वह दो में से किसी को भी अपना नहीं पाया न तो उदारवादी हो पाया और न ही रूढ़िवादी। वह चाहते थे कि यह अधर में टंगे रहने वाली स्थिति समाप्त हो।

डॉ. लोहिया को बराबर यह अनुभव होता रहा कि भारत की इतनी सुदढ़ आत्मा के अन्तरतम में कहीं बहुत बड़ी कमजोरी थी, जिसके कारण वह जाति प्रथा और नारी प्रताड़ना आदि पर कुठाराघात नहीं कर सका। अपने चिन्तन, कर्म और आचरण में संतुलन न पैदा करने के कारण ही वह इन विषमताओं का समाधान निकालने में असमर्थ रहा है।

डॉ. लोहिया भारत के समाज में जो परिवर्तन लाना चाहते थे उसका आधार 'कथनी' और 'करनी' में समता लाना था। वह अपने को 'कुजात गाँधीवादी' कहते थे, पर गाँधी की सुधार दृष्टि से भिन्न उनकी सोच थी।गाँधी बुनियादी तौर पर वर्ण व्यवस्था के सैद्धान्तिक आवधारणा पर आक्षेप नहीं करते थे। वह उसकी भ्रष्ट अवधारणाओं से जो शोषण किये जा रहे थे, उनको दूर करना चाहते थे। लोहिया वर्ण व्यवस्था के ही विरोधी थे। वह उसे भारतीय समाज के ठहराव और पतन का कारण ही भी मानते थे। लोहिया पश्चिम की जीवन पद्धति और कार्यशैली के विरोधी थे, लेकिन वह मानवीय आकांक्षाओं के प्रति खुली दृष्टि रखते थे। आधुनिक सभ्यता और उसके बहुत से आधारभूत तत्वों को लेकर पूरे समाज में एक नये परिवर्तन को लाने के लिए वह आधुनिक जीवन की बहुत सी सुविधाओं और

1. लक्ष्मीकांत वर्मा- **समाजवादी दर्शन और डॉ. लोहिया,** पृष्ठ 70-71.

आविष्कारों को स्वीकार करते थे। गाँधी के सारे सिद्धान्तों को मानते हुए भी डॉ. लोहिया केवल नैतिक और आध्यात्मिक आधार पर समाज में परिवर्तन नहीं लाना चाहते थे। उसके लिए वह विधि और कानून का भी सहारा लेना जरूरी समझते थे।

भारतीय समाज को वह नितान्त सात्विक आधार पर विकसित करना चाहते थे। लेकिन इसके साथ ही उसे आधुनिक भी बनाना चाहते थे। वह छोटी मशीनों और अन्य छोटे -मोटे मशीनीकरण और सामान्य आधुनिकीकरण के पक्ष में थे। सात्विकता को वह आदर्श मानते थे और कहते थे कि यह भारत की नियति है कि वह संसार के सामने सात्विकता के आधार पर शासन-प्रशासन तंत्र, राजतंत्र एवं जीवन पद्धति का आदर्श रखे। किन्तु इस सात्विकता के साथ श्रम के प्रति आदर और सम्मान रखते हुए वह मानवीय निष्ठा को भी प्रतिष्ठित करना जरूरी समझते थे। व्यर्थ ही ऐसा श्रम करना जिसमें केवल थकान हो और समय नष्ट हो उससे बचने के लिए छोटी मशीनों का सहारा लेना बुरा नहीं मानते थे। वह चाहते थे कि रिक्शों में एक-दो हार्स पावर की मशीन लगाने से चालक के श्रम और गति में तो फर्क आता ही है साथ ही चालक के मन में हीन भावना नहीं आती।

डॉ. लोहिया ने इस सम्बन्ध में लिखा है कि ''भारतीय समाज का आधुनिक होना जरूरी है क्योंकि बिना आधुनिक हुए वह अपनी पारस्परिक चेतना को पुर्नस्थापित नहीं कर सकता पर इस प्रक्रिया में भारत को नितान्त यूरोपियन नकलबाजी के चक्कर में नहीं पड़ना चाहिए और न आधुनिकता के सतही उपादानों के सहारे आधुनिक बनने की कोशिश करनी चाहिए। आधुनिक होने में भी भारत को अपने लोक भवन, लोक भाषा और लोक भूषा का परित्याग नहीं करना चाहिए। अपनी पहचान और रहन-सहन की विधि के साथ उसे आधुनिक परिवर्तनों की दिशा में बढ़ना चाहिए।''[1]

डॉ. लोहिया भारतीय समाज की सांस्कृतिक चेतना की ऊँचाइयों के प्रशंसक थे। उसमें जो रंगीनी है, उल्लास है, आह्लाद है, सारे विषादों को राम के नाम पर जीने और मरने की क्षमता है उसे वह भारतीय जीवन का अविभाज्य अंग मानते थे। राम के ऊपर अपने विचार व्यक्त करते हुए उन्होंने मर्यादा शब्द की जो आत्मपरक व्याख्या की है, वह अद्वितीय है राम की 'मर्यादा' उनकी अपनी निजी सीमा और शील की व्याख्या में डॉ. लोहिया ने राम

1. लक्ष्मीकांत वर्मा- **समाजवादी दर्शन और डॉ. लोहिया,** पृष्ठ 73.

के लोकतत्व की बड़ी प्रशंसा भी की है। लेकिन राम का जो अन्धानुकरण स्त्रियों के निर्वासन प्रताड़न के स्तर पर किया जाता है। उसके वह कट्टर विरोधी थे। यह विरोध उन्होंने काफी खुले शब्दों में किया है। उनका मानना है कि -राम के नाम पर यह कुकृत्य किया जाना राम के रामत्व की ही हत्या करना है।

भारतीय समाज और संस्कृति की इस समरसता की तलाश डॉ. लोहिया बराबर करते रहे हैं। उनके लिए भारतीय आत्मा की इन अक्षण्ण निधियों का विलुप्त हो जाना दुखद् था। इसके विलुप्त होने का एक मात्र कारण यह था कि जाति, वर्ण-व्यवस्था और सम्पत्ति मोह ने जो भारतीय जीवन की उन्मुक्तता रही है, उसे क्षीण कर दिया है। कुछ आनन्द और उत्साह के संदर्भ हैं, जो केवल ऊँची जाति वालो के लिए बना दिये गये हैं और कुछ हैं जो नीची जाति वालों के लिए वर्जित कर दिये गये हैं। कुछ हैं जो अपनी सम्पन्नता को पूर्वजन्म का पुण्य कहते हैं, कुछ अपनी दरिद्रता को पूर्व जन्म का पाप मानते हैं। कर्म फल और कर्मयोग की इन दार्शनिक व्याख्याओं ने जो सम्पूर्ण भारतीय समाज की एकात्मकता को नष्ट कर दिया है, वह डॉ. लोहिया को स्वीकार नहीं था। इससे समाज खानों में बन्द हो गया है और उन्मुक्त मानव सम्बन्धों पर कृतिम बन्धन लगा दिया गया है। डॉ. लोहिया कहते थे कि इस आन्तरिक बन्धन के कारण जब कभी भी पूरे देश को एक इकाई के रूप में किसी संकट के समय खड़ा होना पड़ा, तो खड़ा नहीं हो सका। विदेशाी आक्रमणों में जब भी एकजुट होकर शत्रु का सामना करने का अवसर आया तो पूरा देश नहीं खड़ा हुआ। खड़े वही लोग हुए जिनकी वैयक्तिक सम्पत्ति पर चोट पड़ी। प्लासी की लड़ाई में सिराजुद्दौला को लार्ड क्लाइव बड़ी धूर्तता और कपट से पराजित कर हर था भारत का समस्त वैभव और आत्म सम्मान टूट रहा था, और वहीं थोड़ी दूर पर एक किसान बिना चिन्ता के खेत में हल जोत रहा था। उसे पता ही नहीं था कि थोड़ी दूर पर जो युद्ध हो रहा है उसका क्या मतलब है, क्योंकि वह अपने को उस सत्ता का भागीदार मानता ही नहीं था जो वहाँ पर दाँव पर लगी थी। समाज ने कभी उस हल जोतने वाले किसान को देश की मुख्य धारा से जोड़ने की कोशिश ही नहीं की। सदियों से उसे संभावनाहीन भविष्य से बाँध कर उसका शोषण किया गया और वह उसे अपनी अनिवार्य नियति मान कर शोषित होता रहा। दोनों में संवाद की स्थिति कभी पैदा ही नहीं हुई।

भारतीय समाज में नियति के ऊपर आधारित होकर जीने की इस पद्धति के डॉ. लोहिया कटु आलोचक थे। इस विषमता को दूर करने के लिए वह कुछ कड़ें निर्णय लागू करने के भी समर्थक थे। उनका विश्वास था कि यह विसंगतियाँ पारस्परिक ज्ञान और सुधार द्वारा दूर नहीं की जा सकतीं। इन सामाजिक कमजोरियों को किसी चमत्कार पूर्ण ढंग से भी दूर नहीं किया जा सकता। यह त्रुटियाँ बार-बार भारत महान' के थोथे नारों से भी नहीं मिटाई जा सकती। यह सारी विंसगतियाँ तभी दूर की जा सकती हैं, जब पूरा भारतीय समाज इस यथार्थ को मन से स्वीकार कर लेगा कि वह दरिद्र है, भुखमरा है और गुलाम है। यदि यह आभास उसे हो जाय और 'भारत महान' का विवेचन इस यथार्थ की सापेक्षता में हो तो भारतीय समाज उस भावात्मक यथार्थ और इस वस्तुपरक यथार्थ के संयोग से एक सर्वथा नये भारत के रूप में खड़ा हो सकता है। आज हमारे समाज की सबसे बड़ी विसंगति यह है कि हम 'अतीत की महानता' और 'वर्तमान की पंगुता' को एक साथ जोड़ कर देख नहीं पाते। अपनी दरिद्रता से उपराम होते है। जो महानता के स्वप्न लोक में चले जाते हैं। कभी महानता के स्वर्ण को दरिद्रता की कथरी के आमने-सामने रखकर देखें, तो निश्चय ही ऐसी दृष्टि मिलेगी जिससे पूरे भारतीय समाज को ऊपर जा उठाया जा सकता है।

इस परिवर्तन के लिए हमें एक विशेष प्रकार का 'पुरूषार्थ' करना पड़ेगा ताकि हमारी जातीय 'अस्मिता' का उदात्त तत्व भी सुरक्षित रहे और उसके आलोक में वर्तमान आर्थिक, वैचारिक, सांस्कृतिक विषमता भी दूर की जा सके। डॉ. लोहिया इस परिवर्तन को लाने के लिए एक चौमुखी अभियान चलाना चाहते थे।

भारत के इस नये समाज को समता के मूल लक्ष्य से जोड़ना चाहते थे। इस लक्ष्य की स्थापना से ही वह भारतीय समाज की समस्त विसंगतियों को मिटाना चाहते थे। ये विसंगतियाँ साधारण नहीं हैं। इन्होंने पूरे भारतीय समाज को जकड़ रखा है ये विसंगतियाँ वह धब्बे हैं जो चाहे धर्म के क्षेत्र में हों, सामाजिक रूढियों में हों या आर्थिक शोषण में हों, या फिर जातियों की विषमताओं के कारण हों, या राजनैतिक नासमझी के कारण हों, यह सब इसलिए हैं क्योंकि समाज में भंयकर गैर बराबरी है। जब तक भारतीय समाज को एक समग्र इकाई के रूप में नहीं देखा जायेगा, तब तक इस समाज का समग्र उत्थान भी सम्भव नहीं होगा।

धर्म के स्तर पर उन अंधविश्वासों और धार्मिक अवधारणाओं को पहचानना होगा। जिनके कारण वैयक्तिक स्तर पर व्यक्ति की अस्मिता खण्डित होती है तो सामूहिक स्तर पर भारतीय समाज के समग्र अस्तित्व का खण्डित होना स्वाभाविक है। धर्म को वैयक्तिक आस्था और सामूहिक अभिव्यक्ति के बीच बढ़ते अन्तर्विरोधों को मिटाने के लिए विशेष प्रयास करने होंगे। धर्म को डॉ. लोहिया मार्क्स की भाँति अफीम नहीं मानते थे। इसलिए वह उसमें से उन्हीं तत्वों को मिटाना चाहते थे। जो व्यक्ति और समाज की गतिशीलता में बाधक होते हैं।

सामाजिक स्तर पर भी डॉ. लोहिया 'व्यापक सामाजिकता' पर जोर देते थे। मिलना-जुलना, रहन-सहन, खाना-पीना इन सबमें वह क्रान्तिकारी परिवर्तन लाने के लिए सर्वजातीय-भोज, अन्तर्जातीय-विवाह और तीजों-त्योहारों पर सामूहिक आयोजनों में सबके साथ मिलकर भाग लेने और सामूहिक खान-पान प्रचलित करना चाहते थे। सामाजिक समता केवल आर्थिक सम्पन्नता से नहीं आती। उसके लिए पूरे समाज को अपनी आदतों, खाने-पीने के तरीकों और रस्म-रिवाजों में भी बदलाव लाने की आवश्यकता होती है। सामाजिक समता स्थापित करने के लिए वह जातीय चिन्हों, प्रतीकों के प्रदर्शन पर भी प्रतिबन्ध लगाना चाहते थे। वह ऐसे क्रान्तिकारी कदम उठाना चाहते थे कि जिससे विभिन्न जाति के लोग स्वतः अपने जातिवाचक चिन्हों और प्रतीकों को लगाना बन्द कर दें और जातीय संगठनों और संस्थाओं से उनके नाम और चिन्ह मिटा दें।

धार्मिक और सामाजिक स्तर पर जो विसंगतियाँ होती हैं, उनका प्रभाव राजनीति पर भी पड़ता है। सदियों से घोर विषमताओं में जीने के कारण समाज कई धड़ों में अलग-अलग बँट गया है। भारतीय समाज में अगड़ा वर्ग है, पिछड़ा वर्ग है, सर्वहारा वर्ग है और नितान्त आदिम स्थितियों में जीने वाला वर्ग है। राजनैतिक और सामाजिक एवं आर्थिक समानता लाने के लिए जरूरी है कि इन पिछड़े वर्गों पर विशेष ध्यान दिया जाय, इनको विशेष अवसर प्रदान किया जाय, इनको इस प्रकार शिक्षित किया जाय कि यह अपने बालिग मत का सही और विवेक के अनुसार इस्तेमाल कर सकें।

लेकिन यह सब तभी सम्भव है, जब पूरे समाज में आर्थिक स्तर पर समता स्थापित करने का प्रयास हो। आर्थिक विषमताएँ तीन कारणों से पैदा होती हैं। पहली तो

हैं, सम्पत्ति की विषमता। इन तीनों विषमताओं का प्रतिफलन एक प्रकार की सरकारी मन सबदारी का रूप ले लेती है। और एक वंशानुक्रम के हाथ में सारी राष्ट्रीय पूँजी और शक्ति केन्द्रित हो जाती है इसलिए आर्थिक विषमता को दूर करने के लिए ऐसे उपाय करने होंगे कि अति संचित सम्पत्ति का पुनर्वितरण हो, आय को एक निश्चित सीमा में सीमित किया जाय और पद तथा पदवी में इस बात का ध्यान रखा जाय कि वह विरासत का रूप न ले सके।

भारतीय समाज का विश्लेषण करते हुए डॉ. लोहिया ने भारत की समस्त राजनैतिक पाट्रियों को चुनौती भरे शब्दों में सावधान करते हुए कहा है कि "भारत में केवल उसकी राजनीतिक पार्टी का भविष्य है, जो देश में सामाजिक क्रान्ति की अगुआई करने में समर्थ होगी और ऐसा संगठन बनायेगी जो भारत की राजनीतिक-आर्थिक व्यवस्था को सामाजिक क्रान्ति का माध्यम बनाये।"[1]

□□□□
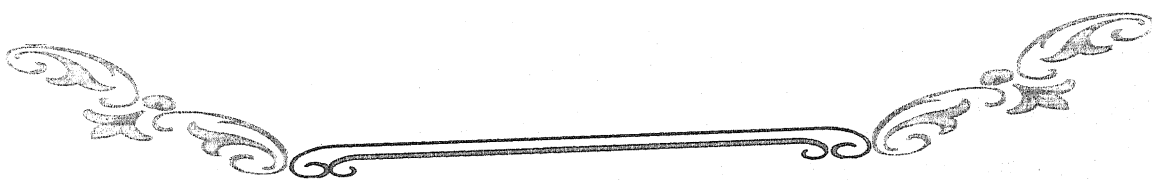
1. लक्ष्मीकांत वर्मा- **समाजवादी दर्शन और डॉ. लोहिया,** पृष्ठ 77.

अध्याय–चार

लोकसभा में लोहिया

(अ) लोहिया की समाजवादी पार्टी चुनाव घोषणा पत्र

(ब) समाजवादी पार्टी के संसदीय दल की नीतियाँ

(स) लोकसभा में लोहिया का प्रवेश

4

लोकसभा में लोहिया

डॉ. लोहिया की सांसद के रूप में सशक्त भूमिका रही है। वे चाहे संसद में रहे। अथवा संसद के बाहर रहे हों, उनकी लोकतांत्रिक संचेतना सदैव जागरूक एवं मानवतावादी रही है। उन्होंने सदैव संक्रामकता पर सीधा प्रहार किया है और उसको रोकने का उपचार सुझाया है।

''21 मई, 1963 को डॉ. लोहिया लोकसभा के सदस्य चुने गये थे और 13 अगस्त को उन्होंने शपथ ली थी। 14 अगस्त, 63 से उनकी लोकसभा में भूमिका शुरू हुई।''[1] उन्होंने पी.एल. 480 समझौता, बम्बई के मजदूर (काम रोको प्रस्ताव), तेल की पाईप लाईनें, अंधों की शिक्षा, वायस आफ अमेरिका, चीनी सेनाओं का जमाव, मंत्री परिषद में अविश्वास का प्रस्ताव, बैंकों का राष्ट्रीयकरण गलत वक्तव्य के सम्बन्धों में हिन्दी की प्रगति, राष्ट्रीय आय का वितरण, संविधान विधेयक 1963, कार्यवाही में अशुद्धियाँ, लोकसभा की सभा, स्वर्ण नियंत्रण आदेश, नजरबंदी कानून, राष्ट्रीय सुरक्षा कोष, प्रधानमंत्री के वक्तव्य में त्रुटियाँ व गलतबयानी, भ्रष्टाचार उन्मूलन, बोकारो इस्पात परियोजना, परमाणु अस्त्रों से सुरक्षा, चीनी आक्रमण, अंग्रेजी को जारी रखने सम्बन्धी विधान, जालैया (त्रिपुरा) पर पाकिस्तान का कब्जा, अनाज के भाव, निर्वाचन का खर्च, फसलों का बीमा, प्रशासनिक सुधार आयोग, आसाम की सीमा पर निर्जन पट्टी, कर्मचारी संघों की मान्यता, कालाधन, भारतीय इतिहास की आलोचना, राष्ट्रीय सुरक्षा परिषद इत्यादि अनगिनत विषयों पर लोकसभा में साधिकार कहा है और नये सिरे से विचार करने के लिए बाध्य किया है।

एक सांसद को किस प्रकार से लोकतांत्रिक देश में कार्य करना चाहिए, और किस प्रकार अपनी उपस्थिति की सार्थकता सिद्ध करनी चाहिए। यह बात लोहिया जी के सांसद के रूप से स्पष्ट होती है। वे विरोध के लिए विरोधी नहीं थे। वे देश-मंगल के लिए प्राणपण से कार्य करना चाहते थे। अंततः वे बहुत तीखे होते चले गए, क्योंकि उन्होंने यह महसूस किया कि राष्ट्रीय चेतना उद्बुद्ध नहीं हो पाई और लोकतंत्र क्षुब्ध और कुंठित होकर रह गया है।

---

1. राजेन्द्र मोहन भटनागर- **अवधूत लोहिया**, पृ. 400.

21 अगस्त, 1963 का दिन भारत के संसदीय इतिहास में सुवर्णाक्षर से लिखा जाने वाला दिन-आचार्य कृपलानी ने प्रस्ताव रखा कि-"यह सदन इस मंत्रिपरिषद के प्रति अविश्वास प्रकट करता है।"[1] अविश्वास प्रस्ताव पर लोहिया जमकर बोले थे। यह उनका लोकसभा में पहला लंबा भाषण था और इसलिए उन्होंने कुछ अधिक समय चाहा था। इस भाषण में उन्होंने फकीर महतो के पिता की मौत अन्नाभाव में हुई थी, इस बात को सप्रमाण प्रस्तुत किया था। इसमें उन्होंने सूचना देते हुए लोकसभा को जगा दिया था-

1. प्रधानमंत्री ने कहा है गमलों में खेती करो, छतों पर खेती करो, जबकि 3-4 करोड़ एकड़ जमीन ऐसी है जिस पर बिना खर्च किए हुए खेती सरलता से हो सकती है। कैसा विरोधाभास है कि जमीन पड़ी हुई है, इस ओर किसी का ध्यान नहीं है। उन्होंने इसे 'विक्षिप्त दिमाग का सबूत है' मानने से इंकार करते हुए कहा कि इससे यह सिद्ध होता है कि आदमी कैसे शब्द-जोश से जनता को मोह लेता है।

2. यह सरकार 50 लाख बड़े लोगों की सरकार है और साढ़े तैतालीस करोड़ छोटे लोगों का इससे कोई वास्ता नहीं है।

3. आंतरिक प्रयत्नों के स्थान पर बाहरी प्रयत्नों पर आज सरकार अधिक विश्वास करने लगी है।

4. सरकार का खर्च बढ़ा है। 1948 में, 1,000 करोड़ खर्च होता था, अब 5,500 करोड़ खर्च हो रहा है।

5. 27 करोड़ आदमी तीन आने रोज के खर्च पर गुजारा करते हैं, जबकि प्रधानमंत्री के कुत्ते पर तीन रूपये रोज खर्च करना पड़ता है।

6. खेत-मजदूर 12 आने रोज कमाता है। अध्यापक दो रूपए रोज कमाता है। हिन्दुस्तान का एक व्यापारी खानदान तीन लाख रूपये रोज कमाता है, और जो सरकार में सबसे बड़ा आदमी है, यानी प्रधानमंत्री, उसके ऊपर पचीस तीस हजार रूपए रोज खर्च होते हैं।

---

1. इन्दुमति केलकर- **लोहिया कर्म और सिद्धांत**, पृष्ठ 462.

7. पचास लाख बड़े लोग डेढ़ खरब रूपये की राष्ट्रीय आमदनी में से पचास अरब रूपए हजम कर लेते हैं और 43 करोड़ लोगों के लिए मात्र सौ अरब रूपया बचता है।

8. ''कोई लड़का अपनी माँ के बलात्कारी के साथ अपनी माँ की शादी करवाने की इच्छा करे, यह कैसी बात है?''[1] यह उन्होंने चीन को लेकर कहा। चीन ने भारत पर आक्रमण किया था। उसी चीन की राष्ट्रसंघ में भरती के लिए भारत पैरवी कर रहा है।

9. 22 नवम्बर, 1962 की बात कहते हुए उन्होंने जोर दिया कि कांग्रेस सरकार के साथ भारतीय जनता का समर्थन नहीं रहा है। अतः इस्तीफा देकर नए चुनाव कराए।

लोकसभा की परिभाषा देते हुए उन्होंने कहा, ''जनतंत्र का मतलब है लोकसभा, लोकसभा का अर्थ है बहस और तर्क, बहस का अर्थ है सच्चाई यानी जिस तरह तौलते समय बटखरों का वजन बदलना अपराध है उसी तरह तर्क के अर्थों को अपनी सुविधा के अनुसार बदलना, स्वीकार करना, झुठलाना भी अपराध मानना चाहिए। जहाँ सच नही है वहाँ बहस नहीं हो सकती। जहाँ बहस नहीं है वहाँ लोकसभा नहीं है। जहाँ लोकसभा नहीं है वहाँ जनतंत्र नहीं हो सकता।''[2]

डॉ. लोहिया के भाषण में चीनी आक्रमण और भारत की लज्जास्पद हार पर कड़ा प्रहार तो था ही, अन्य समस्या दामों की लूट, विदेश नीति पर भी हमला था। नया, बिलकुल ताजा विश्लेषण, पुरानी बीमारियाँ और उन पर के इलाज, विध्वंश के साथ रचना का दर्शन भी भाषण में था। लोहिया के भाषण की, जनता निराकार निर्गुण नहीं थी। उन्होंने अपने भाषणों द्वारा, शोषित दलित, पीड़ित जनता का साकार-सगुण साक्षात्कार किया।

डॉ. लोहिया के शब्दों में, ''प्रधानमंत्री कहते हैं कि चीन ने हम को धोखा दिया। यह बात बिलकुल गलत है। आज से ढाई हजार साल पहले चाणक्य कह गया है कि जो राजा अपने पक्ष में यह बात कहता है कि दुश्मन ने उसको धोखा दिया, उस राजा को एक क्षण में हटाकर बाहर करो।''[3]

डॉ. लोहिया की तीन आनेवाली बहस से इतनी खलबली मची कि सरकारी

1. राजेन्द्र मोहन भटनागर-**अवधूत लोहिया**, पृ. 402.
2. इन्दुमति केलकर-**लोहिया सिद्धांत और कर्म**, पृष्ठ 65.
3. इन्दुमति केलकर-**लोहिया कर्म और सिद्धांत**, पृष्ठ 464.

दफ्तरों में बाबू हिसाब लगाने में व्यस्त हुए। एक अर्थशास्त्री के नोट के आधार पर प्रधानमंत्री नेहरू ने लोकसभा में कहा कि लोहिया की तीन आने वाली बात गलत है। प्रति व्यक्ति आय पन्द्रह आने है। तब लोहिया ने चुनौती दी, जिसकी बात गलत निकलेगी उसको निकलना पड़ेगा। नेहरू ने लोहिया के दिमाग को ओछा कहा तब लोहिया ने जवाब दिया, प्रधानमंत्री का ही दिमाग ओछा, गन्दा और डरपोक है। उन्हें खेती-कारखानों का ज्ञान कम है। नेहरू ने लोहिया की चुनौती को स्वीकार नहीं किया। लोहिया ने काफी लिखा पढ़ी करके छह सितम्बर को इस विषय में ढाई घण्टे की बहस करवाई।

योजना मंत्री नन्दा ने इस बहस के दौरान 27 करोड़ लोगों की प्रति व्यक्ति आमदनी साढ़े सात आने रोज ही बताकर नेहरू को गलत साबित किया। तब डॉ. लोहिया ने टिप्पणी की प्रधानमंत्री और योजनामंत्री आपस में निपट लेंगे कि कौन सही है। लोहिया ने माँग की यदि योजना आयोग गम्भीरतापूर्वक काम करना चाहता है, तो उसे राष्ट्रीय आय को चार स्तरों में बाँटना चाहिए-

1. निम्नतम 2. उच्चतम 3. मध्य 4. औसत स्तर।

सरकार की तरफ से हुए नेशनल सेम्पुल सर्वे के आधार पर योजना मंत्री ने 7.5 आने प्रतिदिन प्रति व्यक्ति औसत बताया। नेशनल सर्वे में निम्नतम 60 फीसदी यानी- 27 करोड़ लोगों की आमदनी या खर्चे का अलग विचार ही नहीं किया गया था। कुल राष्ट्रीय आमदनी को 50 करोड़ आबादी में बाँटकर निष्कर्ष निकालने की पद्धति का अनुसरण हुआ था।

डॉ. लोहिया के कारण ही प्रति व्यक्ति आमदनी का हिसाब लगाने के लिए सरकार को एक समिति नियुक्त करनी पड़ी। लोहिया का दावा था कि राष्ट्रीय आय के विभाजन का पता लगाने के लिए पहले से ही नियुक्त प्रो. महालनोविस समिति की रिपोर्ट का भी मेरा कहना सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है। लेकिन सरकार डर के मारे उक्त रिपोर्ट प्रकाशित नहीं कर रही थी। यद्यपि उक्त रिपोर्ट के निष्कर्ष अधिकृत तौर पर अखबारों में प्रकाशित हो गए थे और उससे सरकार की कलई खुल गई थी। उत्तरप्रदेश, बिहार, राजस्थान, मध्यप्रदेश, उड़ीसा और आंध्रप्रदेश की गरीबी भयानक थी और उत्तर प्रदेश तो सबसे गरीब सूबा है ऐसा निर्णय समिति ने दिया था।

लोकसभा को लोहिया के विश्लेषण का भयावह स्वरूप मालूम हुआ। यह भी स्पष्ट हुआ कि आबादी के 5 फीसदी लोगों के हाथ में आय का 30 फीसदी हिस्सा, तो 70 फीसदी आय 95 फीसदी लोगों में वितरित हो जाती है। इसमें भी एक हिस्से के पास 25 फीसदी से ज्यादा और बाकी लोगों के पास उससे से भी कम आमदनी होती है। 27 करोड़ तीन आना रोज पर 16 करोड़ 1 रूपये रोज पर तो 50 लाख 33 रू. रोज पर जिन्दगी बसर करते हैं। उनमें से कुछ तो हजार रूपये रोज कमाते होंगे। लोहिया के इस विश्लेषण पर लिखते हुए बिरला सेठ के 'हिन्दुस्तान टाइम्स' दैनिक ने कबूल किया कि, लोहिया कहते हैं उससे भी देश के एक समाज गढ़ की आय कम होगी इतनी भीषण दहलाने वाली गरीबी बढ़ती चले जाने का कारण बताते हुए लोहिया ने कहा, "खपत का आधुनिकीकरण हुआ है पैदावार का आधुनिकीकरण किये बगैर पैदावार की नींव तो मध्यकालीन है और उसके ऊपर खपत की इमारत खड़ी है आधुनिकतम। हमने यूरोप-अमरीका की नकल करना शुरू किया। नेताओं, नगरसेठों, और नौकरशाहों का जीवन स्तर तो उठता चला गया, लेकिन साधारण जनता का जीवन स्तर नहीं उठ पाया। हर साल तीन लाख साहब या बड़े लोग बनते हैं। अंग्रेजों की सरकार तीन लाख लोगों की थी, यह सरकार पचास लाख लोगों की है।"[1]

डॉ. लोहिया लोकसभा में अपनी मातृभाषा हिन्दी में बोलने लगे ओर लोकसभा में लोकभाषा ने इज्जत प्राप्त कर ली। करोड़ो जनता का प्रतिनिधित्व करने वाली लोकसभा में मुट्टीभरों के अंग्रेजी का ही वर्चस्व था। और लोक प्रतिनिधित्व का दावा करने वाले मातृभाषा में वोट माँगकर आने वाले विरोधी दल समेत सभी नेता अंग्रेजी के गुलाम थे। उनको लगता था कि अंग्रेजी के बगैर अपने भाषणों का असर नहीं होता और अखबारों में प्रसिद्धि नहीं मिलती। उनका सोचना गलत भी नहीं था, कारण नेहरू उनकी सरकार और बड़े अखबार वालों की मातृभाषा गोया अंग्रेजी थी। अंग्रेजी भाषा पर गाढ़ा प्रभाव होते हुए भी अंग्रेजी की गुलामी का धिक्कार करके, लोकसभा में निर्वाद रूप में और आग्रहपूर्वक मातृभाषा में बोलने वाले लोहिया ही प्रथम राष्ट्रीय नेता थे। उनके जैसे श्रेष्ठ व महान विचारक नेता के हिन्दी भाषणों के बाद हिन्दी में भाषण करने में शर्म महसूस करने वाले लोग हिन्दी में बोलने लगे।

बेजवान और बेजान सांसदों को जबान मिली। लोकवाणी मुखर हुई, अंग्रेजी के

---

1. इन्दुमति केलकर- **लोहिया कर्म और सिद्धांत,** पृष्ठ 466.

कारण जो खामोश थी। अंग्रेजी के कारण सारी बहस नकली और तांत्रिक होती थी। उसका बोझ हट जाने से बहस में प्राण पैदा हुआ। लोहिया ने सामान्य जनता की बोलचाल की भाषा में बोलना शुरू किया, जिस भाषा को नेहरू ने बाजारू भाषा कहा। कई बार 'गो टु हेल' चल सकता था लेकिन जहन्नुम में जाए असंसदीय करार दिया जाता था। खोपड़ी, औरत, जन्तु आदि शब्दों को लेकर भी झगड़ा पैदा हुआ। लोहिया ने स्पष्ट किया ये शब्द असंसदीय नहीं हैं, अन्तर तो अंग्रेजी और देशभाषा का है। सारे शब्द अधिक पर्दामय शब्दों में लेकर अधिक चेतनामय शब्दों की तरफ जाते हैं। लोहिया की राय में, लोकसभा और अदालतें ये दो खास जगहें हैं, जहाँ पर भाषा फंदा करती है। असल में संसदीय भाषा नहीं हो तो संसदीय नीयत होना चाहिए।

डॉ. लोहिया ने तीनों प्रधानमंत्रियों के काल में बारंबार सवाल उठाया कि संविधान की धारा 344 के अनुसार प्रधानमंत्री को अंग्रेजी बोलनी ही नहीं चाहिए। 343 से लेकर 351 तक की संविधान की धाराओं का आधार लेकर सभी भारतीय भाषाओं को लोकसभा में स्थान दिलवाने की कोशिश लोहिया ने की। यहाँ तक कहा कि हिन्दी जाए जहन्नुम में अंग्रेजी हटनी चाहिए। इंदुला याज्ञिक ने अंग्रेजी में न बोलने का संकल्प निभाया और लोहिया की भरपूर तारीफ की लोहिया ने अनुभव किया कि अंग्रेजी भाषा के प्रश्न पर सरकार और विरोधी दल दोनों एक से हैं। अंग्रेजी को हटाकर उसकी जगह कौन सी भाषा या भाषाएं आती हैं। इसका निर्णय एक गोलमेज सम्मेलन करें, लोहिया ने सुझाव दिया। लोहिया लगातार इतनी मेहनत न करते तो अंग्रेजी का राज्य कायम रहता और थोड़ी सी हलचल हुई वह भी न होती।

जाति प्रथा के खिलाफ जाति तोड़ो सम्मेलन द्वारा लोहिया सड़क पर लड़ते ही थे। लोकसभा के मैदान में भी उन्होंने इसका विरोध किया। लोहिया के अनुसार- "डेढ़ हजार वर्ष से यह देश रोगी है और 15 वर्ष से इसको कोढ़ हो रहा है। समान अवसर की शंयत विषय है। हमें विशेष अवसर वाले सिद्धांत को पकड़ना पड़ेगा।"[1]

डॉ. लोहिया की राय थी कि गन्दा काम करने वाले मेहतरों की आमदनी खूब बढ़नी चाहिए, ताकि ऊँची जाति वाले मेहतरी करने लगे इससे जात-पाँत टूटने का मौका आयेगा। लोहिया ने लोकसभा में 13 जुलाई, 1967 को मेहतरों के वेतन और उनकी हालत को लेकर सवाल पूँछा।

---

1. इन्दुमति केलकर- **लोहिया कर्म और सिद्धांत,** पृष्ठ 481.

लोकसभा में औरतों के बारे में भी बोलने वाले लोहिया ही पहले नेता थे। लोकसभा में औरत की पीड़ा की आवाज लोहिया के द्वारा गूँज उठी। नर-नारी समानता की बात उठाने का एक भी मौका लोहिया ने नहीं छोड़ा। औरतों के ऊपर पड़ने वाली मार, उनकी भूखमरी, पानी-पाखाने का अभाव, धुएँ से आँखों के होने वाली खराबी ऐसे कई सवाल लोहिया ने उठाए। एक बार फातिमा जिन्ना के पीछे लोहिया ने श्री लगाया, तो श्रीमती की चिल्लाहट हुई। तब लोहिया, बोले, मर्द हो या औरत सबके लिए श्री रखो। दुनिया में मर्दों का राज कायम रखना चाहते हो। इसलिए श्रीमती रखना चाहते हो। उसी तरह सदस्या, अध्यक्षा, महोदया इत्यादि का भी लोहिया ने विरोध किया।

चौथी लोकसभा का चुनाव लोहिया ने 'गैर-कांग्रेसवाद' पर लड़ा था। लोहिया को अपेक्षा के अनुसार 521 सदस्यों की लोकसभा में विरोधी दलों के 238 संसद चुनकर आए। संसोपा की संख्या कम थी केवल 17, लेकिन इस गुट की धाक भारी थी। हालाँकि किशन पटनायक और अन्य कुछ साथियों की हार का लोहिया को काफी दुःख हुआ। खुद उन्होंने अपना चुनाव तो खतरे में डाल ही दिया था। एक तो अपने चुनाव क्षेत्र में कम समय देकर और दूसरे समान नागरिक कानून जैसे विषय उपस्थित करके।

चौथी लोकसभा 16 मार्च को शुरू हुई पहले ही दिन अध्यक्ष के चुनाव के समय लोहिया ने माँग की कि गुप्त मतदान से चुनाव होना चाहिए तभी अन्दर की आवाज निकलेगी। बहुमत के कारण संजीव रेड्डी चुन लिए गये। दोनों सदनों के समक्ष राष्ट्रपति का भाषण हुआ। अंग्रेजी भाषण का विरोध भी हुआ। यद्यपि 17 साल में हिन्दी सीखना असंभव नहीं था, लेकिन सरकारी नीति के अनुसार राष्ट्रपति अंग्रेजी में बोले।

लोकसभा की शुरूआत अटलबिहारी बाजपेयी के अविश्वास प्रस्ताव से हुई। 8 प्रान्तों में गैर-कांग्रेसी सरकारें थीं। इनके प्रति कांग्रेसी केन्द्र सरकार का रवैया पक्षपात पूर्ण था। विशेष रूप से राजस्थान का मसला भयंकर बन गया था। 7 मार्च को वहाँ गोली चली। 144 धारा लगाई गई। अन्त में राष्ट्रपति शासन लागू किया। इन्दिरा गाँधी का तानाशाही रूप धीरे-धीरे प्रकट हो रहा था। विरोधी दलों के सदस्यों के भाषण में राजस्थान कांड की गाढ़ी छाप थी, गायत्री देवी ने घटनाओं का व्यौरेवार वर्णन किया। लोहिया को बीमारी की हालत में भाषण करने को बुलाया गया।

डॉ. लोहिया ने भाषण का प्रारम्भ इस प्रकार किया, गढ़ ढह रहा है, लेकिन बढ़िया मकान बन नहीं पा रहा है। पिछले 20 वर्षों में काँग्रेस और सरकार शब्द पर्यायवाची बन गये थे, पहली बार जनता के सामने कांग्रेसी सरकार नहीं रही है। अविश्वास का प्रस्ताव इस कारण ही रखा गया है।

लोहिया के शब्दों में "यूरोप वाले कोई छुटपटी, बेढ़ंगी, अनोखी, बदमाश चीज किया करते हैं, तो उनको लक्जमवर्ग से शुरू करते हैं, जब प्रयोग कर लेते हैं नतीजा निकल आता है तब उसको सारे यूरोप में लाने की कोशिश करते हैं। उसी तरह से इन हजरतों ने राजस्थान से राष्ट्रपति शासन को शुरू किया है और फिर बहाव उत्तर प्रदेश और इनका बस चला तो न जाने कहाँ-कहाँ इसको इस्तेमाल करेंगे।"[1]

डॉ. लोहिया ने दावा किया कि कांग्रेस राजा रानियों के खानपान पर करोड़ों रूपया खर्च करती है। उसी राजस्थान में खिचवाभर राजा-रानी इनके यहाँ बैठे हुए हैं नये राजा-पुराने राजा, नयी रानी-पुरानी रानी। अगर जयपुर की इस तरफ हैं तो इलाहाबाद की रानी उस तरफ है।

डॉ. लोहिया के शब्दों में, "इसीलिए मैं साफ कहना चाहता हूँ अपनी तरफ से और मेरे जैसे अनेक लोग यहाँ पर हैं, मैं समझता हूँ कि देश के अंदर भी बहुसंख्या हमारी ही है कि अब तक जितने भी विशेषाधिकार के व्यक्ति हैं इसके विशेषाधिकार को भारत का जनतंत्र खत्म करके छोड़ेगा। भारत का जनतंत्र इन राजाओं और रानियों को पचा लेगा, ताकि ये राजा-रानियाँ भारत के जनतंत्र पचा सकें।"[2]

उस समय देश में अकाल की काली छटा छायी हुई थी। लोहिया ने आवाह्न किया कि चापलूसी, चुगलखोरों और रिश्तेदारी, मतलब कामचोरी का युग बदलना चाहिए और मेहनत का एवं अनुशासन का युग आरम्भ होना चाहिए।

लोकसभा में लोहिया ने पुलिस वालों को 18-18 घंटे की डयूटी उनके निवास, पुलिस अफसरों और कान्स्टेबलों के घरों और तनख्वाहों में 5-7 गुना फर्क और सिपाही आदि सामान्य पुलिस का जानवरों जैसा जीवन आदि स्थिति पर प्रकाश डालकर कहा कि

---

1. बद्रीविशाल पित्ती, अध्यात्म त्रिपाठी-**लोकसभा में लोहिया,**भाग-13, पृष्ठ 23.
2. वही, पृष्ठ 25.

पुलिस वाले संघ बना लें तो राज और अच्छा चलेगा क्योंकि उसमें व्यवस्था का मतलब बदल जाएगा। पुलिस को लोहिया ने सरकार को यह कहने का आवाह्न कि "तुम्हारा (सरकार का) जायज हुक्म हो हम मानेंगे लेकिन तुम्हारा नाजायज हुक्म नहीं मानेगें। हुक्म दो तरह के होते हैं, एक उचित और एक अनुचित। मैं पुलिस के सिपाहियों को कहना चाहता हूँ कि जो हुक्म अनुचित है, जो अनुचित आदेश है, उनको मत मानो।"[1] निष्ठा और गुलामी में फर्क है।

12 अगस्त लोहिया का अंतिम दिन था मानसून सत्र का। क्या कल्पना जो कि उस दिन लोहिया का जो भाषण हुआ वह आखिरी है। अब यह अंकुश लगाने वाली, विस्फोटक लेकिन ऋजु, विद्रोही लेकिन सुझाव देने वाली आवाज फिर नहीं सुनने को मिलेगी। लोकसभा शून्य हो जायेगी। थोड़े ही लोग कितना बड़ा काम कर सकते हैं, लोकसभा को हिला सकते हैं इसका दर्शन लोहिया के कार्यो से स्पष्ट हो जाता है। लोहिया का लोकसभा में प्रवेश 13 अगस्त, 1963 को हुआ था और 12 अगस्त, 1967 को अंतिम भाषण हुआ। इस छोटे से अरसे में उन्होंने सैकड़ों लिखित और मौखिक सवाल पूँछे। विशेषाधिकार स्थगन प्रस्ताव पूँछे।

(अ) लोहिया की समाजवादी पार्टी चुनाव घोषणा-पत्र :

समाजवादी दल जानता है कि पहली गैर-कांग्रेसी सरकार, चाहे केन्द्र अथवा कोई प्रदेश में, किसी एक दल की न हो कर कई दलों की मिली-जुली सरकार होगी। जब किसी एक दल की अपनी सरकार होती है तब भी जितना ठोस चिंतन सरकार बनने से पहले किया गया हो, उतना ज्यादा सरकार का काम और कानून पक्का होता है। फिर भी, एक पक्षीय सरकार होने के कारण बिन-लिखी मान्यताऐं भी उस सरकार को दिशा और एकात्मकता देती रहती है। मिलीजुली सरकार को बिन-लिखी मान्यताओं का सहारा न होने के कारण, जरूरी है कि हर विरोधी दल एक सुस्पष्ट, ठोस और समय निर्धारित कार्यो और कानूनों का कार्यक्रम अभी से सोचे। यह काम सर्व या अनेक दलीय मिले-जुले कार्यक्रमों से नहीं हो सकता, क्योंकि न ये ठोस होते हैं और न समय से बँधे, और इनमें जनता को भुलावा देने की शक्ति भले ही हो, लेकिन सरकार को चलाने की शक्ति नहीं होती।

1. इन्दुमति केलकर- **लोहिया कर्म और सिद्धांत,** पृष्ठ 504-05.

कांग्रेसी सरकारों ने लोगों को बड़ी हताशा दी है। किसी साधारण काम से यह हताशा दूर न होगी। इसको दूर करने का एकमात्र उपाय है ऐसे असाधारण काम जो भारतीय राजनीति के आसमान में एक तरफ बिजली की तरह कौंधे ओर दूसरी तरफ सूरज की तरह टिकाऊ रहें। उस काम से हर एक को पता लग जाए कि कांग्रेस राज और जनराज में कितना अन्तर है।

हर सरकार का स्वधर्म है कि वह बनी रहे। जैसे जीव का आधार है कि वह जिन्दा रहे, वैसे ही सरकार का आधार है कि वह बनी रहे। किन्तु यही इच्छा गैर कांग्रेसी सरकार, विशेषकर प्रदेश सरकार, के लिए घातक हो सकती है अगर ठोस और समय निर्धारित कार्यक्रम की सहायक इच्छा ने उसे मजबूत न किया।

गैर कांग्रेसी प्रदेश सरकार को हमेशा खतरा रहेगा कि केन्द्र की कांग्रेस सरकार और उसके दल का संगठन उसे मौका पाते ही खत्म न कर दें। इसलिए ऐसी प्रदेश सरकार को जितना लोगों की हताशा को दूर करने के लिए, उतना ही अपनी हिफाजत के लिए शीघ्र ऐसे कानून बनाने चाहिए जो केन्द्र की प्रतिगामिता और प्रदेश की क्रांतिकारिता को धड़ाके के साथ समाने लाएँ। यदि कांग्रेसी केन्द्र इस कानून को मान लेता है और राष्ट्रपति अथवा अन्य साधनों द्वारा रोड़े नहीं अटकाता तो जनराज और कांग्रेसराज का अन्तर साफ सामने नजर आता रहेगा।अगर कांग्रेसी केन्द्र ने कानून को रूकवाया तो प्रदेश की क्रांतिकारिता और केन्द्र के प्रतिगामिता की लड़ाई से देश में वह गर्मी पैदा होगी जो केन्द्र से भी कांग्रेसी शासन को शीघ्र खत्म करेगी।

हर हालत में सरकार को अपने कामों से बोलना चाहिए। वर्षों से सरकारों ने बोल से काम चलाया है। पहली गैर-कांग्रेसी सरकार को अपने काम से बोलना चाहिए। बात से काम न चला कर, काम से बोलकर गैर-कांग्रेसी सरकार लोगों की हताशा को मिटाकर नये युग का आरम्भ कर सकेगी। जिस दिन से गैर कांग्रेसी सरकार शपथ ले उससे 6 महीने के अन्दर-अन्दर ऐसा कोई काम हो जाना चाहिए, कोई न कोई कानून बन जाना चाहिए जिससे कांग्रेस राज और जन-राज का अन्तर साफ सामने आए।

खेती का सुधार आज का सबसे बड़ा काम है। इस काम को अनेक नामों से

पुकारा गया है, अन्नपूर्ति, खेती सुधार, अकाल और जमीन व्यवस्था। किन्तु शब्दों और कमजोर प्रस्तावों के अलावा अभी तक कुछ भी ठोस और बड़े पैमाने पर हो नहीं पाया है। बहुत समय तक सरकार की उस नादानी ने देश को बरबाद किया जो सोचती रही कि कारखाने चला कर पक्का माल बहुतायत में उन देशों को भेजा जा सकेगा जहाँ से गल्ला मँगाया जाए। बहुत पागल सपने देखे गए कि कच्चे माल और मशीनों के विदेशी व्यापार में लाभ होता है उस देश को जो उद्योग निर्यात करता हो। नादान इच्छाओं और सपनों का ठीक उल्टा हुआ। विदेशी मुद्रा का संकट आया। उद्योगीकरण न हो पाया। देश को हमेशा पेट भरने की ही विपत्ति का सामना करना पड़ रहा है। एक और प्रस्ताव जिस पर सरकारी पार्टी ने पिछला चुनाव लड़ा था, पंचायती खेती, का पाँच वर्ष में नतीजा निकला कि 32 करोड़ एकड़ की खेती में से तीन लाख से भी कम एकड़ की खेती पंचायती बन पायी। इस रफ्तार से संकल्प को पूरा करने में पाँच हजार वर्ष लगेंगे। चुनाव संकल्प का इतना बड़ा वचन भंग और कहीं नहीं हुआ। अब अकाल हर वर्ष की घटना हो गयी है। इस सरकार के लिए अन्न का उत्पादन बढ़ाना असम्भव है और अन्न के दामों की लूट में यह खुद शामिल है।

पहली गैर-कांग्रेसी सरकार खेती और अन्न की नीति ठोस और दृढ़ चलाएगी जिसके मुख्य उपाय होंगे-

1. मालगुजारी अथवा भू-राजस्व की समाप्ति। आय कर के दायरे में आने वाले किसानों से आय कर लिया जाए, किन्तु मालगुजारी पूरी तरह से समाप्त हो।

2. सात वर्ष की योजना बनाकर सब सिंचाई योग्य जमीन को सिंचाई से पानी दिया जाए। सिंचाई का पानी सब किसानों को मिलना चाहिए। बिजली तथा अन्य साधनों पर सिंचाई की प्राथमिकता लादी जाए। जो जमीन जिस सिंचाई के लायक हो उसे उपलब्ध कराया जाए।

3. खेतिहर तथा उद्योगी दामों में संतुलन कायम किया जाए और दैनिक जरूरतों की उद्योगी चीजों के बिक्री दाम लागत और ढुलाई खर्च के डेढ़ गुना से ज्यादा किसी हालत में न हों तथा दो फसलों के बीच किसी अनाज का दाम बीस सैकड़ा से ज्यादा न बढ़े।

4. जमीन का एक न्यूनतम उत्पादन कायम किया जाए और उससे नीचे जाने वाली जमीन की जब्ती हो। शर्त यह है कि हर उचित साधन को सरकार मुहय्या करे, ताकि मेहनत करने वाले किसान की जमीन कभी न जाए।

5. नयी जमीन पर आधुनिक ढंग की निजी खेती कायम करने की भी सुविधा हो, पर अधिकतम सीमा के अन्तर्गत।

इस कार्यक्रम को शपथ लेने से छह महीने के अन्दर हासिल करना असम्भव है। इसलिए समाजवादी दल दृढ़ प्रतिज्ञ है कि पहले काम को छह महीने के अन्दर कर देगा और बाकी सबका आरम्भ हो जाएगा।

समाजवादी दल खूब जानता है कि उन अतिवादी कागजी कार्यक्रमों से कोई फायदा नहीं जो राज्य का खर्च बढ़ाते हों और आमदनी घटाते हों। उसे पता है कि सरकार ने बड़े लोगों को ठाठ, शान और ऐयाशी बढ़ाते रहना सिखाया है नतीजा यह हुआ कि देश का उत्पादन बढ़ने में बड़ी रूकावट आयी। सब लोगों के सामने आदर्श आया ऐसे आदमियों का जो जीवन की दौड़ में सफल हुए, लेकिन झूठ, चापलूसी, चुगलखोरी, बेईमानी और कम काम के सहारे। हर व्यक्ति अपना, अपने कुटुम्ब, जाति, वर्ग अथवा समूह का कल्याण खोजने लगा। दस बरस में देश और लोग आँखों के सामने से धीरे-धीरे हटते रहे। सामने आया स्वार्थ, आराम, छीनाझपटी, आपसी कलह और घटते हुए राष्ट्र भण्डार से खुद के बढ़ते हुए हिस्से के लिए झगड़े। कांग्रेस दल और उसकी सरकार ने लगातार लोक और देश का लोप किया है।

लोक और देश की फिर से उपलब्धि हर नागरिक को हो, यही गैर-कांग्रेसी सरकार का ध्रुवतारा होगा। इसके लिये बड़े लोगों के खर्च की सीमा बाँधनी होगी। यह सीमा ऐसी होगी कि एक तो सर्वसाधारण में चौतरफा कर्तव्य तथा कम खर्च और ज्यादा काम की भावना का उदय होगा और दूसरे खेती कारखाने को सुधारने के लिए समुचित पूंजी का निर्माण होगा। सब लोग समझेंगे कि आधुनिकता का अर्थ है उत्पादन की आधुनिकता। खपत की आधुनिकता को 20-30 वर्ष तक टाल कर रखना चाहिए। बड़े लोगों का जीवन सर्वसाधारण के जीवन से कुछ आराम वाला जरूर होगा, लेकिन मर्यादा के भीतर और ऐसा

जो देश की एकात्मकता को हासिल कर सके। टूटता हुआ देश इक्ठ्ठा होना शुरू होगा, मरते हुए लोग, 40 करोड़ लोग प्राणवान होने लगेंगे। सोशलिस्ट पार्टी ने अभी तक हजार रूपये महीने की बात कही है। जाहिर है कि अवमूल्यन से यह रकम बढ़ी है। यह भी सही है कि बड़े लोगों की डेढ़ हजार के आसपास सीमा बाँध देने पर चीजों के दाम घटेंगे और घटते रहेंगे।

समाजवाद का अर्थ है समता और सम्पन्नता। अत्यधिक गरीब देशों में दोनों एक दूसरे से इतना नजदीक जुड़े हुए हैं कि प्रथम समाजवादी गैर-कांग्रेसी सरकार को इन्हें एक दूसरे के माध्यम से ढूंढना होगा। सम्पन्नता समता के द्वारा हासिल करने के लिए, अधिकतम और न्यूनतम में दस और एक से ज्यादा का फर्क न होगा। अधिकतम हासिल करना हफ्तों का काम है, भले न्यूनतम को हासिल करने में देर लगे।

समाजवादी दल खर्च की अधिकतम सीमा को कई एक दूसरे के पूरक रास्तों पर चल कर हासिल करेगा। जहाँ जरूरत होगी, राष्ट्रीयकरण करेगा। दूसरे, कर पद्धति को ऐसे बनाएगा कि खर्च के लिए ज्यादा धन न रहे। तीसरे, खर्च की अधिकतम सीमा से ज्यादा आमदनी के कुछ अंश को उपार्जक के हिसाब में लिखता रहेगा ताकि 25-30 बरस बाद उसको या उसके वारिसों को मिल जाए। चौथे, विलासी खर्चे की सम्भावनाओं को कम या समाप्त करेगा।

केवल सरकारी नौकरों के खर्चे की सीमा बाँधना असम्भव नासमझी थी। सबके खर्च की सीमा निश्चित बँध सकेगी। कोने-कोने और हड्डी-हड्डी में व्याप्त भ्रष्टाचार शायद इतने से ही हटने लगे। पूरक उपाय लागू करने होंगे। प्रथम गैर कांग्रेसी सरकार को एक स्थायी जाँच आयोग बैठाना होगा जो बड़े से बड़े लोगों से शुरू करता हुआ, चाहे वे सरकारी अथवा गैर कांग्रेसी लोग हों, राज्य शक्ति के दुरूपयोग से इक्ट्ठा किये गये धन की जाँच करेगा। किसी भी मंत्री अथवा नौकरशाही के दो पीढ़ी तक के रिश्तेदारों की जाँच हो सकेगी। उनसे संबंधित व्यापारियों की जाँच होगी। राज्य शक्ति का दुरूपयोग सिद्ध होने पर धन जब्त किया जाएगा। इस तरह के जाँच आयोग द्वारा भ्रष्ट धन की पहली जब्ती होते भ्रष्टाचार के युग का अन्त शुरू होगा।

शान का खर्चा रोकने के लिए आमूल परिवर्तन के लिए और सर्वसाधारण में एकात्मकता लाने के लिए, समाजवादी दल प्राथमिक शिक्षा में सम्पूर्ण समता लाना चाहता है। प्राथमिक स्तर के सभी स्कूलों के खर्च, अध्यापकों के वेतन, इमारत, किताब इत्यादि पर, एक जैसे होना चाहिए। पहली गैर-कांग्रेसी सरकार विशेष खर्चे के प्राथमिक स्कूलों को शपथ लेने के छह महीने के अन्दर कानून से बन्द कर देगी। राष्ट्रपति से लगा कर भंगी तथा वकील, डाक्टर से लगाकर किसान, मजदूर, दुकानदार तक के बच्चों को एक ही ढ़ंग के स्कूलों में पढ़ना होगा। ज्यादा आमदनी की चाह का एक बड़ा कारण खत्म होगा। उसके साथ-साथ प्राथमिक सम-शिक्षा द्वारा, एक जाग्रत और सम्पन्न लोकशाही की नींव पड़ेगी।

समाजवादी पार्टी शिक्षा के और स्तरों में परिवर्तन प्रारंभ करेगी। माध्यम मातृभाषा होगा। अंग्रेजी का माध्यम तत्काल खत्म होगा। कालेज और विश्वविद्यालयों में भरती के नियम ढीले किए जायेंगे और यह सम्भव न हो सकेगा कि साधारण विद्यार्थी कम नम्बर से पास करने के कारण भरती न हो सके, किन्तु बड़े घरों के विद्यार्थी फेल होने पर भी विदेशी शिक्षा पा जाएँ। परीक्षा के नतीजों का प्रतिशत ऊँचा किया जाऐगा, विशेषकर अंग्रेजी भाषा को ऐच्छिक विषय बना कर। क्योंकि शिक्षा केवल प्रमाणपत्र विद्या रह गयी है, विचारों की साहसिकता और हुनर प्राप्ति के द्वारा उसके उद्देश्यों की पुनर्स्थापना होगी, विशेषकर अध्यापकों की मर्यादा कायम करके। दरिद्र और कम पढ़े-लिखे इलाके के विद्यार्थियों के लिए फीस की सुविधा होगी तथा भोजन के खर्च में सरकार की ओर से मदद होगी। अध्यापकों के वेतन रूतवे का आधार सम्भव समता होगी। एक स्तर के सभी अध्यापकों के वेतन, चाहे सरकारी, चाहे गैर-सरकारी, सम्पूर्ण सम होगा। प्राथमिक, माध्यमिक और ऊँची शिक्षा के अध्यापकों तथा व्यवस्थापकों के वेतन में यथासंभव समता लायी जाएगी।

समाजवादी दल का संकल्प है कि वह पहली गैर-कांग्रेसी सरकार के द्वारा विश्व स्वास्थ्य संघ के सहकार से ऐसी योजना चलाए जिससे हैजे और चेचक का, सर्दी बुखार की तरह शीघ्र विनाश हो। समाजवादी पार्टी का प्रयत्न रहेगा कि 39 करोड़ सर्वसाधारण का ध्यान रखते हुए स्वास्थ्य विभागों का मन प्रतिरोधात्मक औषधि और फुटकर भोजन की ओर ज्यादा खिंचेगा बनिस्वत शौकीनी औषधि के।

समाजवादी दल जानता है कि कांग्रेस सरकार की नाव डगमगाती रही है और अब डूब की स्थिति में है, क्योंकि उसकी, सिवाय उद्योगीकरण के, और कोई नीति नहीं रही है। उद्योगीकरण की नीति तभी सफल होती है जब उसकी सहायक नीतियाँ जैसे सम्पत्ति, भाषा, जाति, प्रशासन इत्यादि नीतियाँ साथ-साथ चलें। पहली गैर कांग्रेसी सरकार यह सब अन्योन्याश्रित नीतियाँ साथ-साथ चलाएगी।

भारी उद्योग बन नहीं पाए, जो बने उनकी शक्यता पूरी तरह से इस्तेमाल नहीं हो रही है। निजी धन्धों और सार्वजनिक धन्धों ने एक दूसरे के दोष सीख लिए हैं और दोनों को भ्रष्टाचार के साँप ने डस लिया है। ऊपरी इलाज करके रोग बढ़ाया जाता है, जैसे कपड़ा उद्योग में। पहली गैर-कांग्रेसी सरकार कपड़ा कारखानों को जब तक उधार न देकर एक सुनिश्चित योजना बना कर आधुनिक मशीनों से सजेगी, ताकि वे संसार में निर्यातशक्य हो सकें। एक समिति बैठा कर फैसला किया जाएगा कि सब कपड़ा कारखानों अथवा बाहर कपड़ा भेजने वाले अंश का राष्ट्रीयकरण किया जाए। सभी उद्योगों में कारखाना, मजदूर और उपभोक्ता तीनों हितों का प्रतिनिधित्व रहेगा।

मजदूर आन्दोलन के वर्तमान बिखराव और कमजोरी को दूर करने के लिए मजदूर संघों को मान्यता गुप्त मतदान के आधार पर दी जाएगी।

विज्ञान के बिना उद्योगीकरण सम्भव नहीं। आजादी के बाद के बरसों में विज्ञान को नौकरशाही तथा भतीजावाद का गुलाम बनाया गया है। वैज्ञानिक यन्त्र और इमारतों की प्राथमिकताओं को उलट कर जो विज्ञानद्रोह सरकार ने अब तक किया है, उसे पहली गैर-कांग्रेसी सरकार सुधारेगी।

विज्ञान के प्रथम उद्देश्यों में जिस तरह सिंचाई होगी उसी तरह मकान निर्माण। विज्ञान का काम है कि जो कच्चा माल देश में हो उसी का सबसे ज्यादा वैज्ञानिक इस्तेमाल करके प्रश्न को निबटाया जाए।

साथ ही, जमीन ऊँचे दाम और भारी किरायों के सवाल से पहली गैर-कांग्रेसी सरकार को ताकत से जूझना होगा। यह निर्विवाद है कि घुड़दौड़, गोल्फ जैसे लम्बे-लम्बे मैदानों में, नौकरशाही के ठाठदार महलों सेठों द्वारा जमीन के सट्टों ने और गाँव तथा शहर

के बिगड़े सम्बन्धों ने शहरों के मकानों का किराया अब फी वर्ग फुट पीछे एक रूपया महीना चढ़ा दिया है। पहली गैर-कांग्रेसी सरकार को शपथ लेने के छह महीने के अन्दर अन्दर मकान की मिल्कियत और सरकारी जमीनों तथा बगलों के संबंध में ऐसे कारगर पग उठाने होंगे जिससे किराया एक वर्ग गज पीछे एक रूपया हो सके।

गाँव के सभी मकान मुँह बाये हुए हैं, क्या गाँव के गरीब अथवा धनी के। विज्ञान इस हालत को सुधारेगा। कमजोर लोगों पर विभिन्न आफतें हैं, जैसे बीच-बीच में मकान से निकासी। इसे बन्द करना होगा। कानून और लोक-संगठन के द्वारा समाजवादी दल अथवा उससे संबंधित सरकार हर कुटुम्ब को मकान लायक जमीन के बारे में निश्चित कराएगी।

समाजवादी दल जानता है कि भारत का मामला लोक दिल का मामला है। 95 फीसदी लोगों के दिलों के दीये बुझ चुके हैं। इनको बुझाया है कांग्रेस दल ने। जिस विश्वास के अंकुर आजादी की लड़ाई के त्याग और तकलीफ के दिनों में उगने शुरू हुए थे, उसे कांग्रेस सरकार के क्रूर हाथों ने मसल डाला है। चारों तरफ स्वार्थ और छीनाझपटी का साम्राज्य है। फिर से लोक मन में विश्वास के अंकुर उगाना और दिल की दीवाली के दिये जलाना तभी सम्भव होगा जब गैर कांग्रेसी दल कानून निर्माण और लोक शक्ति के पारस्परिक सम्बन्ध को समझते हुए प्रयोग कर सकेंगे। बड़े परिवर्तनों के कानून, जैसे लोकसभा या विधानसभा में बनते हैं, वैसे सड़कों खेतों, कारखानों, स्कूलों आदि में। जनता जब अंगडाई लेती है किसी परिवर्तन के लिए, तब लोकसभा उसे कानून का रूप देती है। छोटे-मोटे सुधार के कानून लोकसभा के कारखाने में दिन-प्रतिदिन बना करते हैं, किन्तु समाज के बड़े परिवर्तनों के कानून की प्रेरणा जब और कहीं से मिल जाती है तब लोकसभा उस पर अपनी छाप लगाती है।

कानून निर्माण हो जाने पर भी कई बार कानून का इस्तेमाल नहीं हो पाता है, जैसे जमीन के न्यायोचित बँटवारे, न्यूनतम खेत-मजदूरी अथवा विधवा विवाह या स्त्री सम्पत्ति के कानून, क्योंकि इनको लागू करवाने की ताकत अथवा इच्छा समाज के संबंधित वर्गों में नहीं होती। समाजवादी दल इस इच्छा और शक्ति को जगाना चाहता है। कानून निर्माण और लोक शक्ति का उद्‌गम दोनों ही इसके श्रेय हैं। जो लोग जन आन्दोलनों को लोकतंत्र विरोधी करार देते हैं वे कानून निर्माण और लोक-शक्ति के आदान-प्रदान को नहीं

समझते। समाजवादी दल जानता है कि लोक आन्दोलन विघटन की स्थिति भी पैदाकर सकते हैं, जैसे उनका अभाव मृत्यु की स्थिति। कांग्रेसी सरकार ने पारी-पारी इन दोनों स्थितियों को उकसाया है और कलह तथा मृत्यु के पाटों के बीच जीवन और सुलह को पीस डाला है।

समाजवादी दल और उससे संबंधित सरकार का काम होगा कि वह लोकजीवन से लोक संस्कृति और सामन्ती संस्कृति के फूटन को मिटाए। कांग्रेस सरकार के 40 लाख लोगों की सामान्ती लोगों की जगह 40 करोड़ जिन्दादिल लोगों को उठाना है, कांग्रेस सरकार के भाषा, प्रदेश, जाति इत्यादि के टूट और विग्रह की जगह सारे देश को एक और अभेद्य करना है। लोक-भूषा, लोक-भाषा, लोक-भवन, और लोक-भोजन का निर्माण करना है। सामन्ती भाषा, भोजन, भवन और भूषा का विनाश करना है।

40 करोड़ के अभेद्य देश के निर्माण के लिए आवश्यक है कि समाजवादी दल और उससे संबंधित सरकार विशेष अवसर के सिद्धांत को अपनाए। जो सदियों से दबे और पिछड़े हैं और जिन्हें समाज की क्रूरताओं ने दिमागी कामों से अलग रख कर दिमागी लुंज बनाया है, जैसे औरत, शूद्र, हरिजन, आदिवासी और धार्मिक अल्पसंख्यकों की पिछड़ी जातियाँ, विशेष अवसर के अधिकारी इन नब्बे प्रतिशत जनता के लिए जीवन के विभिन्न विभागों के 60 प्रतिशत ऊँचे स्थान सुरक्षित रखे जाएँगे।

समाजवादी दल जनता और दल के सदस्यों को सावधान करता है कि वे पहली जन सरकार के विभिन्न अंशों को यह सोचकर चुनें कि उनसे शपथ लेने के छह महीने के अन्दर-अन्दर कोई एक काम ऐसा कराना है जिससे जन सरकार और कांग्रेस सरकार का फर्क साफ सामने आ जाए। इस घोषणा पत्र में ऐसे कामों का ठोस उल्लेख किया गया है। अच्छा हो यदि ये सब अथवा अधिकाधिक काम किए जाएँ, किन्तु किसी एक काम का करना अनिवार्य हो। या यह एक काम हो अथवा पहली गैर कांग्रेसी सरकार जाए।

देश की रक्षा नीति का आधार होगा कि जिस तरह आदमी की सीमा है उसकी चमड़ी, उसी तरह देश की चमड़ी है उसकी सीमा। जिस तरह आदमी की चमड़ी आघात होने से वह तिलमिला उठता है, उसी तरह देश की सीमा पर हमला होने से सजीव राष्ट्र तिलमिला उठता है। कांग्रेस काल में ऐसा नहीं हुआ। समाजवादी दल और पहली गैर कांग्रेसी

सरकार का काम होगा कि वह राष्ट्र की सीमा सुरक्षा का संकल्प सिखाए और दृढ़ करे। सुरक्षा के लिए जरूरी है एक, संकल्प, दो, अर्थशक्ति, तीन, सेना शक्ति। अर्थशक्ति बाँह है और सेनाशक्ति मुट्ठी और पहली गैर कांग्रेस सरकार की कोशिश होगी कि बाँह लम्बी हो और मुट्ठी कसी हो। क्योंकि बाँह और मुट्ठी दोनों को ताकत दिल देता है इसलिए सुरक्षा के लिए सर्वोपरि आवश्यक है संकल्प। जहाँ यह संकल्प मजबूत होता है वहाँ बहुधा दुश्मन झाँकते तक नहीं, इसलिए पहली जन सरकार का काम होगा उस संकल्प को सुदृढ़ बनाना।

समाजवादी दल मानता है कि विश्व संसद और उसकी उत्तरदायी विश्व सरकार बनने के बाद राष्ट्रीय सीमाओं के प्रश्नों को हल करने का अधिकार उन्हें भी मिल जाता है। तब तक अपनी भूमि का एक इंच भी किसी विदेशी को हथियाने नहीं दिया जायेगा।

जन सरकार सैनिक संगठन में आमूल और चौरफा परिवर्तन करेगी। उसे आजाद देश के अनुरूप बनाएगी। युद्धकाल में सैनिक भर्ती लाजमी और उमर समूहों के अनुसार होंगी। इस सिद्धांत के तले कितने अन्य परिवर्तन किये जाएँगे, समाजवादी दल और उससे संबंधित सरकार का प्रयत्न होगा। कि हिन्दुस्तान की इतिहास, प्रकृति और पड़ोस प्रदत्त सीमाओं को हासिल करे, कम से कम पन्द्रह अगस्त सन सैतालिस की।जो देश अन्दर से अशक्य है और अपनी कमजोरियों को हटाने के लिए पग नहीं उठाता, उसकी विदेश नीति लम्बे अर्से के पैमाने पर नितांत अशक्य रहेगी।

कांग्रेस सरकार की विदेश नीति देशहित और विश्व हित, दोनों कसौटियों पर नितांत असफल रही है। उसने बिना पक्षपात अथवा बिनपसन्दगी के सिद्धांत को निरपेक्षता और बिनलगाव की नीति में बदल दिया। बिनलगाव, विनपसन्दगी का एक अंश था और अंश को पूर्ण समझने की गलती से विदेश नीति विकृत हो गयी। बिनलगाव से आभास होता है प्रभुसत्ता का वास्तव में असलियत ऐसी नहीं है। जो देश मन से और असल में प्रभुसत्ता सम्पन्न हैं वे अपनी चाल चलते हैं, अपनी शक्यता और मात्रा भेद इत्यादि को समझते हुए। जिन देशों की स्थिति डाँवाडोल है, विशेषकर जिनका मन अस्थिर है वे दूसरे शक्तिशाली देशों की चाल हमेशा देखते रहते हैं और अपनी आजादी इसी में समझते हैं कि वे किस-किस देश से कदम मिलाएँ अथवा नहीं। हाँ या ना करने की इस शक्यता को कभी-कभी आजादी

और निरपेक्षता समझ लिया जाता है। वास्तव में आजादी और प्रभुसत्ता निखरती है जब देश और उसके लोग साधन और उद्देश्य की स्वतंत्र नापतोल करके अपनी चाल स्वयं निर्धारित करते हैं। पहली जन सरकार स्वतंत्र विदेश नीति के इस स्वतंत्र चिन्तन के खम्भे को मजबूत बनाएगी। नयी दुनिया के निर्माण के लिए अमरीका, रूस दो शक्तिशाली देशों के बीच बिनपक्षपात की नीति बरतेगी और बिना किसी पूर्वाग्रह के उन लोगों और सरकार से बिनपक्षपात अपेक्षा करेगी कि वे सहयोग करें।

उधार वस्त्र, उधार कारखाने, उधार धन, उधार अन्न और उधार चिन्तन ने विदेश नीति को उखाड़ दिया है। विदेशनीति को सुधारने का पहला पग है, उधार चिन्तन का खात्मा और स्वतंत्र चिन्तन का आरम्भ, लेकिन यह पग तभी उठ सकता है जब उधार अन्न आना बन्द हो और उधार धन पर आश्रय न हो।

समाजवादी दल के लिए संसार से गरीबी मिटाने का कार्यक्रम उसी सिक्के का दूसरा चेहरा है जिसका एक चेहरा अनुचित ढ़ंग से ज्यादा विख्यात हो चुका है, संसार के निरस्त्रीकरण का कार्यक्रम। क्योंकि अभी तक रंगीन दुनिया में स्वतंत्र चिंतन शुरू नहीं हुआ है, इसलिए साम्राज्यशाही का सबसे विकराल रूप उत्पादन की असमता, लोगों की जवान पर नहीं चढ़ा है। समाजवादी दल और उससे सम्बन्धित सरकार इस सवाल को दुनिया की महफिलों में उठाएगी और दुनिया के शक्तिशाली अंग को मजबूत करेगी कि या वह मानव कुटुम्ब की बात करना बन्द कर दे और नहीं तो इस बात का सामना करे कि भारत अथवा इथियोपिया के साठ मिनट, चीन के चालीस, रूस के 6 और अमेरिका के 3 मिनट उत्पादन के हिसाब से क्रूर समता है।

दक्षिण अफ्रीका और रोडेशिया जैसे जाति असमता के प्रश्नों पर पहली जन सरकार कारगर पग उठाएगी।विभाजित देशों, विशेषकर भारत-पाक विभाजन के प्रश्न पर समाजवादी दल और उससे सम्बन्धित सरकार महासंघ अथवा एकीकरण के अपने स्पष्ट मत को चलाएगी। जहाँ यह सरकारी स्तर पर सम्भव न होगा, वहाँ लोक और उनके दल अथवा संस्थाएँ यह काम आगे बढ़ाएँगे।

समाजवादी दल बरसों से चिल्ला रहा है कि अकाल और कांग्रेसी सरकार जुड़वा

भाई-बहिन हैं। वैसे, अकाल वार्षिक घटना बन गया है, इस 1955-56 के साल के बिन खाये तड़पते लाखों लोगों के मरने की सम्भावना है। दिन-रात अकाल की राजनीति करने वाली और जनतंत्री विरोधियों को विध्वसंक करार देने वाली सरकार भूख मृत्यु होते ही सब दलों से राजनीति बन्द करने का चौतरफा निवेदन करने लगती है। समाजवादी दल साफ कहता है कि वह कारगर राहत कामों में, जब तक हो जहाँ कहीं हो, मदद देता रहेगा, किन्तु भूखों मरने के बदले और पहले अकालकर्ता के खिलाफ जनता के रोष को संगठित और प्रकट करना चुनाव अथवा आन्दोलन के जरिए, अपना पुनीत कर्तव्य समझता रहेगा।

कांग्रेस सरकार अकाल की सरकार है। वह झूठी और बेईमानी की सरकार है। परमार्थ और सर्वोदय का विनाश करके विशुद्ध स्वार्थ, सम्पत्ति संचय और फिजूल खर्ची की सरकार है कांग्रेस सरकार राष्ट्र की शरम की सरकार है सिकुड़ती सीमाओं और भूमि की सरकार है, ऐसी भी भूमि जो दुश्मनों के कब्जे में चली गई और जो देश के नक्शे से हटा दी गयी। उद्योगीकरण के नाम को बेचकर जिन्दा रहने वाली यह सरकार गरीबी की सरकार है। सामन्ती भाषा को पनपा कर लोक भाषाओं को मारने वाली सरकार है प्रदेश भाषा जाति, धर्म के अलगाव और झगड़ो को बढ़ाकर देश को छिन्न-भिन्न करने वाली तोड़क सरकार है। समाजवाद का मन्त्र जप कर आमदनी और खर्चों के हजारों और नित नये-नये स्तर कायम करने वाली एकात्मकता द्रोही और बगुला भगत सरकार है। कानून की व्यवस्था के नाम पर लोगों पर प्रायः रोज गोली चलाने वाली यह सरकार राजदण्ड पर इतना आश्रित हो चुकी है। कि इसकी मातहती में मनमानी, उच्छंखलता, कानून-भ्रष्टता, कत्ल बढ़ते जा रहे हैं और व्यवस्था तथा कानून का निरंतर कटाव होता जा रहा है। जनता ऊब कर त्राहि-त्राहि कर रही है और इस सरकार का अन्त चाहती है।

समाजवादी दल ने इस ऊब की अगुआगिरी की है। इसीलिए उसने केवल तालमेल से लेकर मोर्चे के रास्ते मिलन तक के कार्यक्रम विभिन्न विरोधी दलों के सामने रखे हैं। सरकारपरस्त लोगों ने इसीलिए उस पर अवसरवादिता और सिद्धांतहीनता का आरोप लगाया है, जबकि सही यह है कि सम्पत्ति और आमदनी, तथा रूस, अमरीका, चीन तथा हिन्दु मुसलमान सम्बन्धी सिद्धांतों और कार्यक्रमों में इसने रत्तीभर अवसरवादी हेरफेर नहीं किया और देश के किसी भी दल की अपेक्षा इसके निराकर सिद्धांत और साकार कार्यक्रम में

ज्यादा मेल है। समाजवादी दल ने तालमेल का कार्यक्रम इसलिए अपनाया कि गरीबी, अकाल, भ्रष्टाचार और राष्ट्रीय शरम की सरकार जल्दी हटायी जा सके और जनता की ऊब का सक्रिय सिद्धांतमय संगठन हो ताकि विभिन्न विरोधी दल सुधरे अथवा टूटें। समाजवादी दल स्वयं सुधरना और हटना चाहता है और अन्य विरोधी दलों को इसी पर चलने के लिये निमन्त्रण देता है मार्ग में अभी बहुत मोड़ आ सकते हैं किन्तु यह भी संभव है कि पहली मंजिल की सफलता अब दूर न हो। 40 करोड़ लोगों के जीवन में और सुलह के लिए समता और सम्पन्नता के लिए उनके अभेद देश के लिए समाजवादी दल उनके सामने प्रार्थी के रूप में खड़ा है ताकि वे उसे अपना नौकर और रक्षक बनायें।[1]

(ब) समाजवादी पार्टी के संसदीय दल की नीतियाँ :

डॉ. लोहिया समाजवादी पार्टी के संसदीय दल की निम्नवत नीतियाँ हैं-

1. कृषि एवं औद्योगिक कीमतों में समता के आधार पर कीमतों में कमी करना।
2. छोटी इकाई की मशीनों द्वारा उद्योगीकरण । उनके आविष्कार एवं निर्माण को राज्य एवं उत्पादकों के बहु-उद्देशीय सहकारी संगठनों द्वारा बढ़ावा।
3. क्षमता से कम काम करने वाले कारखाने का राज्य द्वारा अधिग्रहण एवं बुनियादी उद्योगों का तत्काल राष्ट्रीयकरण।
4. प्रत्येक राज्य एवं केन्द्रीय सरकार के स्वतंत्र विभागों में भ्रष्टाचार विरोधी आयुक्तों की नियुक्ति।
5. वास्तविक जोतकारों को भूमि और उनके बीच भूमि का पुनः वितरण जिससे प्रति परिवार कम से कम साढ़े बारह एकड़ और अधिक से अधिक तीस एकड़ भूमि मिले। भूमि या वासगीत जमीन से बेदखली बंद करना। सभी कृषि ऋणों की माफी।
6. राज्य द्वारा गठित भूमि-सेना द्वारा एक करोड़ एकड़ नयी जमीन में खेतों एवं पशुओं के लिए उपयुक्त चारा और प्रजनन के जरूरी साधन तैयार करना।
7. चौखम्भा राज्य की स्थापना के लिए शासन एवं अर्थव्यवस्था का विकेंद्रीकरण। अपराधशील जनजाति-कानून जैसे भेदभावमूलक कानूनों को रद्द करना, नागरिक स्वतंत्रता, ट्रेड यूनियनों, किसान एवं अन्य संगठनों के प्रति सरकार का समान रवैया।

---

1. बद्रीविशाल पित्ती, अध्यात्म त्रिपाठी- **लोकसभा में लोहिया,** भाग-13, पृष्ठ 264.

चौखम्भा राज्य के उपयुक्त अंग द्वारा आर्थिक नियंत्रण का प्रशासन।

8. पूर्ण रोजगार मुहैया कराने के लिए गृहनिर्माण कार्यक्रम एवं अन्य आर्थिक गतिविधियाँ चलाना।
9. युवजनों, महिलाओं एवं सांस्कृतिक कार्यों के लिए बहु-शिल्प विद्यालयों, जन-उच्च विद्यालयों एवं केन्द्रों की स्थापना।
10. उन मिलाये गये राज्यों एवं संघों, जिनमें प्रतिनिधित्व नहीं है, तत्काल वयस्क मताधिकार पर आधारित चुनाव।
11. अनार्थिक भूमि पर कोई कर नहीं।
12. जन-जीवन अंग्रेजी की समाप्ति।[1]

(स) लोकसभा में लोहिया का प्रवेश :

डॉ. राममनोहर लोहिया 1952 के पहले आम चुनाव में चुनाव नहीं लड़े। '1957 के दूसरे आम चुनाव में लोहिया उत्तर प्रदेश के चन्दौली क्षेत्र से कांग्रेस के त्रिभुवन नारायण सिंह लड़े और हार गये।'[2]

1963 में देश की दिशा को बदलने वाली घटनायें प्रारम्भ हो गयीं लोकसभा के तीन उपचुनाव होने थे। प्रतिपक्ष ने सामान्य सहमति से अपने उम्मीदवार लड़ाने का निर्णय लिया। फर्रूखाबाद से डॉ.लोहिया, अमरोहा से आचार्य कृपलानी तथा जौनपुर से पंडित दीनदयाल उपाध्याय उम्मीदवार हुए। लोहिया और कृपलानी चुनाव में भारी मतों से सफल हुए किन्तु जनसंघ के पंडित दीनदयाल उपाध्याय पराजित हो गए।

डॉ. लोहिया का लोकसभा के लिए चुनाव एक जनआन्दोलन था। इसकी चर्चा देश के कोने-कोने में थी। सोशलिस्ट इस चुनाव को अपनी प्रतिष्ठा का प्रश्न बनाकर लड़े थे। सुदूर गैर हिन्दी इलाके के ऐसे कार्यकर्ता इस चुनाव में भाग लेने आये थे जो हिन्दी भाषा को नहीं जानते थे। सम्पूर्ण फर्रूखाबाद लोहिया को विजयी बनाने के लिए एकजुट था। फतेहगढ़ में मतगणना हुई थी। फतेहगढ़ से फर्रूखाबाद तक का रास्ता भी लगभग चार किलोमीटर होगा, विजय जुलूस सम्मिलित लोगों से भरा हुआ था। लोग नाच रहे थे, उछल

---

1. रामवीर सिंह- **डॉ. राममनोहर लोहिया का व्यक्तित्व एवं कृतित्व,** पृष्ठ 224.
2. बद्रीविशाल पित्ती, अध्यात्म त्रिपाठी-**लोकसभा में लोहिया,** भाग-13, भूमिका से

रहे थे, होली के रंग में सराबोर नारे लगा रहे थे -'राष्ट्रपति को दे दो तार-कांग्रेस की हो गयी हार' तथा लोकसभा में डॉ. लोहिया देश का नेता डॉ. लोहिया से धरती गुंजायमान थी। कांग्रेस के विरूद्ध चीनी हमले के बाद जनअसंतोष उमड़ पड़ा था। तथा डॉ लोहिया प्रतिपक्ष की पहचान बन गये थे।

डॉ. लोहिया का सांसद के रूप में अत्यंत सफल उदाहरण माना जा सकता है। जब तक हमारी संसद में लोहिया जैसे सिद्धांतवादी मनीषी, कर्तव्यनिष्ठ, अध्ययनशील, निर्भीक, निर्लोभी, संयमी, समर्पित तथा मननशील व्यक्तित्व नहीं पहुँच पाते हैं तब तक संसद की समग्र कार्यवाही कुछ व्यक्तियों तक ही सुरक्षित रहेगी, और लोकतंत्र के स्थान पर निरंकुशता की संभावना बढ़ेगी। लोकसभा में लोहिया का प्रवेश किसी महत्वपूर्ण घटना से कम नहीं है।

डॉ. लोहिया के लोकसभा में आने के पहले वह एक लोहिया के शब्दों में "बच्चों को तहजीब सिखाने की पाठशाला थी।"[1] नेहरू के व्यक्तित्व एवं कांग्रेस की सदस्य संख्या से प्रतिपक्ष आतंकित था। यही कारण था कि 1963 से पूर्व नेहरू सरकार के विरूद्ध लोकसभा में अविश्वास प्रस्ताव तक पेश नहीं हो सका। ऐसा लोहिया के वहाँ पहुँचने के बाद ही हो सका। नेहरू के आतंक का उदाहरण उस दिन मिला जिस दिन लोहिया लोकसभा में पहुँचे प्रसोपा के सदस्य हेमबरूआ के एक प्रश्न के उत्तर में पंडित नेहरू ने अत्यंत रूखे ढ़ंग से कहा 'आप बैठ जायें इससे अधिक उत्तर नहीं दिया जा सकता।' हेमबरूआ तो बैठ गए किन्तु इस अहंकारपूर्ण जवाब से लोहिया तिलमिला गए। उन्होनें कहा "प्रधानमंत्री नौकर है सदन मालिक है। नौकर को मालिक को संतुष्ट करना पड़ेगा।"[2] संसदीय जीवन मे पहली बार प्रधानमंत्री को ऐसा सुनना पड़ा। अपने मालिक के अपमान से कांग्रेसी सांसद तिलमिला गए। एक शोर उठा 'वापस लो यह असंसदीय भाषा' लोहिया ने कहा; 'इस तरह के चपरासी नेहरू ने बहुत पाल लिए है। मैं इस झुंड से डरने वाला नहीं' नेहरू ने कहा 'डॉ. लोहिया सदन में पहली बार आए हैं। उन्हें संसदीय आचरण सीखना होगा'। डॉ. लोहिया ने तुरन्त कहा, 'आप को भी जान लेना चाहिए कि आपको अब बदलना होगा'। नेहरू का सारा अहंकार चूर चूर हो गया। समाचार पत्रों ने इस घटना को बहुत महत्व दिया था।

---

1. मुख्तार अनीस- **भारतीय समाजवाद के शिल्पी (प्रथमखण्ड)** पृष्ठ 159.
2. वही, पृष्ठ 158.

अविश्वास प्रस्ताव जिसे आचार्य कृपलानी ने प्रस्तुत किया था। लोहिया एक घंटा बोले थे। समय की कमी थी। सदस्यों ने अपना समय देकर लोहिया को विस्तार से बोलने का अवसर दिया था। नेहरू कागज व कलम लेकर लोहिया के भाषण को नोट कर रहे थे। नेहरू की अज्ञानता का उपहास करते हुए लोहिया ने कहा, 'हजारों एकड़ जमीन बेकार पड़ी है जिसे जोतकर खेती लायक बनाया जा सकता है। किन्तु प्रधानमंत्री ने नया नुस्खा दिया है। गमले में खेती करो, मकान की छत पर खेती करों। सम्पूर्ण सदन हँसी से लोटपोट हो गया। नेहरू की अज्ञानता पर यह जबरदस्त हमला था। लोहिया ने कहा 'प्रधानमंत्री के कुत्ते पर आठ रूपये रोज खर्च होता है जबकि 27 करोड़ लोगों की आमदनी तीन आने रोज है तो सदन स्तब्ध हो गया। पंडित नेहरू ने उत्तर देना चाहा तो लोहिया ने यह कहकर कि 'खेती और कल कारखाने का ज्ञान आपको बहुत कम है।' कहकर नेहरू को बिठा दिया। एक बार जब नेहरू ने अपनी बात कहनी चाही तो लोहिया ने कहा 'जिस अर्थशास्त्री ने आपको नोट दिया है वह गलत है। बहुत पछतायेंगे आप कहकर नेहरू के सलाहकारों की विद्वता को चुनौती दे डाली। अविश्वास प्रस्ताव पर लोहिया के ऐतिहासिक भाषण पर पूरा सदन मंत्रमुग्ध था। यहाँ तक की कांग्रेसी भी प्रसन्न थे। लोहिया ने उनकी भावना जान ली थी। इसलिए उन्होंने कहा, 'मेरे विरोध में और इस सरकार के समर्थन में वह चाहे जितनी तालियाँ बजायें किन्तु घर जाकर वह कहेंगे, लोहिया ने खूब भाषण दिया उसने हमारे दिल की बात कह दी।

तीन आने के प्रश्न पर लोकसभा में गंभीर चर्चा हुई। लोहिया ने अपना विस्तृत भाषण दिया। पंडित नेहरू का कहना था कि 27 करोड़ लोगों की प्रतिदिन आय 3 आना नहीं पन्द्रह आना है। लोहिया ने सिद्ध किया कि तीन आना है। गरीबी के प्रश्न को लोहिया ने इस प्रकार तार्किक ढ़ंग से उठाया था। सदन को लोहिया ने बताया था कि गाजीपुर के इलाके में लोग 'गोबर से दाना बीनकर खाते हैं।' तथा 'वाराणसी के घाटों पर गाय-भैंस जल रहे मुर्दे निकालकर खाती हैं।' लोहिया के इन मार्मिक वाक्यों पर सदस्यों की आँखो में आँसू आ गए। अनेक पूर्वी उत्तर प्रदेश के सदस्यों ने खड़े होकर लोहिया की बातों का समर्थन किया। स्वतंत्रता के बीस वर्षो से चल रही कांग्रेस सरकार एवं उसके प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू शर्म से पानी-पानी हो गए। लोहिया ने बिना कहे नेहरू को निकम्मा सिद्ध कर दिया था।

डॉ. लोहिया ने जब संसद मे प्रवेश किया था तो एक समाचार पत्र ने लिखा था 'A bull in china shop' (चीन की बाजार में साड़) किन्तु अपनी प्रतिभा, परिश्रम और चिंतन से समाजवादी सदस्यों ने इस कहावत को झूठ साबित कर दिया। इधर एक-दो नेहरू समर्थक पत्रकारों ने तथा अटल बिहारी ने कहा कि 'सोशलिस्टो ने संसद को अगंभीर बना दिया।' जिस समय लोहिया तथा उसके पश्चात मधुलिमये संसद में गए सोशलिस्ट सदस्यों की संख्या सात-आठ थी किन्तु महत्वपूर्ण मुद्दों को उठाकर वह संसद का मान बढ़ाते थे। उनके भाषणों से समाचार पत्रों को नयी जानकारी प्राप्त होती थी। मधुलिमये जब बोलने के लिए खड़े होते थे तो शोर मचाने पर मोरारजी देसाई कांग्रेस सदस्यों से कहते कि 'आप मधुलिमये को शांति के साथ सुनिये वह आपका ज्ञानवर्धन करेंगे।' लोहिया जब बोलते थे तो सदन एकदम शांत हो जाता था। वह गंभीर मुद्दों को उठाते और सत्तापक्ष पर तार्किक प्रहार करते। स्टेट्समैन के संवाददाता के.के.शर्मा ने संसोपा के संसदीय गरिमा की प्रशंसा करते हुए लिखा था कि 'इस दल के सदस्य अत्यन्त प्रतिभावान एवं विद्वान हैं। उन्हें संसदीय विषयों की पूरी जानकारी है तथा वह सभी लोकसभा में तैयार होकर आते है।' ब्लिट्ज के संवाददाता राघवन ने लिखा था कि 'संसोपा के सदस्य प्रश्न पूछने में माहिर हैं। उनकी प्रतिभा से इंकार नहीं हो सकता।' इसी प्रकार हिन्दु के संवाददाता रामास्वामी ने लिखा था, 'संसोपा सदस्य ताजा मुद्दों को सदन में उठाते हैं और उसे जीवंत बना देते हैं। वह संसदीय परम्पराओं का सदा निर्वहन करते हैं तथा संसदीय प्रक्रिया एवं नियमावली के मुताबिक कार्य करते हैं।'

पहले दिन से लेकर जीवनपर्यन्त जब तक डॉ. लोहिया संसद में रहे वह संसदीय प्रणाली के जितने भी नियम कायदे थे उनका इस्तेमाल करके सरकार को निरन्तर कटघरे में खड़ा रखते रहे। लोहिया ने कई अमूल्य बातें कहीं। जब उनकी बहसों की आलोचना करते हुए उनके ऊपर दोषारोपण लगाया कि संसद में वह ऐसी बातें कहते हैं जिनसे अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भारत का सिर नीचा होता है तो लोहिया ने कहा, ''सत्य के प्रकाशित होने से राष्ट्र का सिर नीचा नही होता। संसद को तो आइने के समान होना चाहिए जिसमें राष्ट्र का मानस साफ-साफ चित्रित हो।''[1] इन्हीं संसदीय बहसों में जनआन्दोलन के समर्थन में बोलते हुए उन्होंने कहा- जब बाहर की राजनीति और आन्दोलन तीव्र हो जाते हैं तब संसद का चरित्र भी प्रखर होता है और जब संसद के बाहर की राजनीति और आन्दोलन ठण्डे पड़ जाते हैं

1. इन्दुमति केलकर- **लोहिया सिद्धांत और कर्म**, पृष्ठ 64.

तब संसद का रूप निर्जीव होता है। इन्हीं संसदीय भाषणों पर बोलते हुए यह भी कहा- "जिन्दा कौमे पाँच साल तक खामोश नहीं बैठतीं। वह या तो सरकारों को शुद्ध करती हैं या उन्हें हटाती है।"[1]

लोकसभा में लोहिया ने रिक्शा चालकों के स्वास्थ्य के प्रश्न को मजबूती से उठाया। लोहिया का कहना था कि रिक्शा चालकों में टी.वी. की बीमारी आम है। यह चिन्तनीय विषय है। श्रम मंत्री जगजीवन राम का कथन था कि रिक्शा चलाने से टी.वी. नहीं होती। लोहिया ने गुस्से से कहा 'फिर दो-तीन लोगों को रिक्शा पर बिठाकर आप रिक्शा चलाइये मालूम हो जायेगा।'

डॉ. लोहिया ने केवल आर्थिक सवालों को ही नहीं उजागर किया अन्य विषयों पर भी चर्चा की। भाषा के प्रश्न पर वह लड़े किसी भी समाजवादी सांसद को अंग्रेजी में बोलने की अनुमति नहीं थीं। वह या तो मातृभाषा में बोलते थे या हिन्दी में। इसके कारण हिन्दी और मातृभाषाओं की प्रतिष्ठा बढ़ी। रामधारी सिंह दिनकर जो स्वयं उस समय राज्यसभा के सदस्य थे। लोहिया के सम्बन्ध में लिखते हैं, 'अंग्रेजी को वह एक क्षण के लिए भी बरदाश्त् करने को तैयार नहीं थे। उन्होंने अपने सारे भाषण हिन्दी में ही दिए और राजनीति के पेचीदा से पेचीदा बातों का उल्लेख भी उन्होंने हिन्दी में ही किया। उनकी विशेषता यह भी थी कि भारी से भारी विषयों पर भी वे बहुत सरल हिन्दी बोलते थे। दिल्ली में हिन्दी के विरोधी तरह-तरह के लोग हैं, किन्तु लोहिया साहब के भाषणों से उन सभी विरोधियों का यह भ्रम दूर हो गया कि हिन्दी केवल कठिन ही हो सकती और अंग्रेजी का सहारा लिए बिना हिन्दी में पेंचीदा बातों का बखान नहीं किया जा सकता है। टंडन के बाद संसद में वे हिन्दी के सबसे बड़े योद्धा थे।'

भारत की विदेश नीति पर बोलते हुए उन्होंने कहा था- "भारत सरकार शरीर के हिसाब से अमरीका की हो गई है और मन के हिसाब से रूस की। जब शरीर और मन अलग-अलग हो जाया करते है तो शरीर ज्यादा महत्वपूर्ण रहता है। भारत सरकार को आत्म-सम्मान के साथ अपनी एक नीति ऐसी बनानी चाहिए जिससे न सिर्फ अरब और इस्राइल ऐसे जितने इलाके हैं, जिनकों साम्राज्यवादियों ने तोड़ा है उनको जोड़ा जाय।"[2]

---

1. इन्दुमति केलकर- **लोहिया सिद्धांत और कर्म,** पृष्ठ 65.
2. वही, पृष्ठ 66.

लोकसभा में लोहिया ने सामाजिक, सांस्कृतिक, कला सम्बन्धी इतिहास, लेखन, भाषण के मुद्दों को जिस पर बहुत कम लोग जबान खोलते हैं। उन्होंने देश की सीमाओं उसके नक्शे और क्षेत्रफल के प्रश्न को उठाया और बहस की।

'पाकिस्तान के 2500 वर्ष' नामक पुस्तक पर उन्होंने घोर आपत्ति की और कहा जो देश काल्पनिक है और 20 वर्ष पूर्व निर्माण हुआ है उसे यूनेस्को ने 2500 वर्ष का कैसे कह दिया। उस समय के शिक्षामंत्री मोहम्मद करीम छागला ने सहमति व्यक्त की और इसे सुधारने की बात की। लोहिया ने खोपड़ी, चपरासी, पलटन, नौकर, मजिस्टर, आदि शब्दों का प्रचलन किया और उन्हें संसदीय सिद्ध किया।
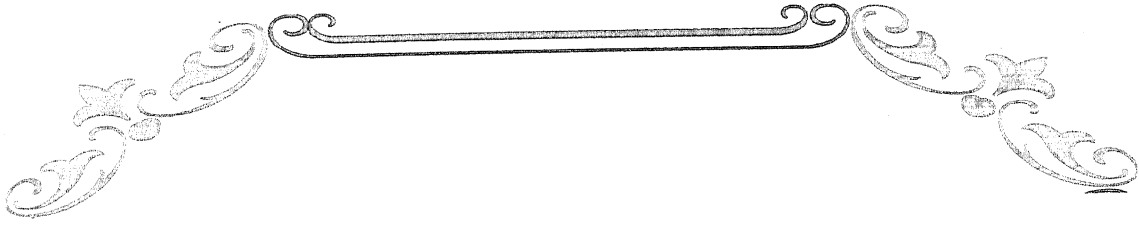
1967 के आम चुनाव में डॉ. लोहिया के चुनाव क्षेत्र में कुछ परिवर्तन कर दिया गया था। डॉ. लोहिया उन दिनों हिन्दू मुसलमान दोनों के लिए एक सिविल कानून के पक्षधर थे। अपने सिद्वान्त के अनुसार 1967 के चुनाव में डॉ.लोहिया ने मुस्लिम पर्सनल लॉ की कटु आलोचनायें की। नतीजा हुआ कि उनके चुनाव क्षेत्र में मुस्लिम मत कट गये और बमुश्किल लगभग चार सौ मतों से जीत मिली। इसका लोहिया को बड़ा दुख था, क्योंकि 1967 के चुनाव में मुस्लिम पर्सनल लॉ के अतिरिक्त दूसरा बड़ा मुद्दा था 'गैर कांग्रेसवादी' इतने कम मत मिलने का दुख तो डॉ.लोहिया को था ही साथ ही वह दुखी इस बात से भी थे कि 'गैर-कांग्रेसवाद' का जो सिद्धान्त उन्होंने बताया था उसका वांछित नतीजा नहीं निकला। प्रदेशों में तो वह नीति कुछ सफल रही पर केन्द्र में उसका उतना अच्छा नतीजा नहीं निकला।

डॉ. लोहिया एवं संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी के सांसदो ने संसद को जीवन्त संस्था बना दिया था। उनकी मृत्यु पर प्रधानमंत्री इन्दिरा गांधी ने ठीक ही कहा था, "उनकी मृत्यु के बाद यह सदन पहले जैसा नहीं रहेगा।"[1]

□□□□

---
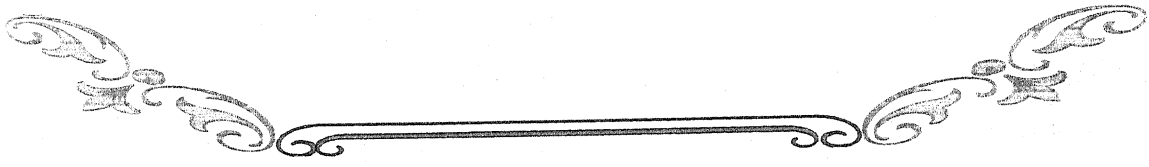
1. मुख्तार अनीस- **भारतीय समाजवाद के शिल्पी,** (प्रथमखण्ड), पृष्ठ 161.

अध्याय-पाँच

गाँधी, मार्क्स और लोहिया

(अ) गाँधी का समाजवाद

(ब) मार्क्स का समाजवाद

(स) डॉ. लोहिया का समाजवादी चिंतन

5

गाँधी, मार्क्स और लोहिया

मार्क्स, गाँधी और लोहिया तीनों ही समाजवादी विचारक थे। मार्क्स पश्चिम के, गाँधी पूर्व के, लोहिया पूर्व-पश्चिम के समाजवादी विचारक थे। गाँधी आत्मा को लेकर चले थे, मार्क्स पदार्थ को, एक का अध्यात्म में अटूट विश्वास था और दूसरे का भौतिकवाद में। लोहिया को इन दोनों की जरूरत महसूस हुई क्योंकि दोनों अतिवादी थे किन्हीं अंशों में या सीमा तक और लोहिया मध्य का मार्ग निकालकर पूर्व-पश्चिम की विचारधारा का लाभ समाज-देश को पहुँचाना चाहते थे। पूर्ण इन तीनों में कोई नहीं था, पूर्णता की ओर तीनों थे और बड़े उद्यम, श्रम, विवेक व्यवहार से मनुष्य को जटिलताओं के बीच से निकाल ले जाना चाहते थे। इन तीनों में समानता में यह थी कि ये तीनों निष्ठा से समाज के प्रति समर्पित थे। दूसरी और ये तीनों एक दूसरे से भिन्न थे कि उनकी आस्थाएँ मनुष्य को लेकर अलग-अलग थी। मार्क्स निम्न समाज के प्रस्तोता थे और गाँधी लोकतंत्र में रामराज्य के। 'लोहिया न मार्क्स के पक्षधर थे न उसके विरोधी। ठीक ऐसे ही गाँधी के न समर्थक थे न विरोधी।'[1]

यथार्थतः मार्क्स दार्शनिक साम्यवाद के प्रवर्तक थे और नवजीवन द्रष्टा। गाँधी उस अर्थ में दार्शनिक नहीं थे और न ही, जिस अर्थ में मार्क्स थे। गाँधी विचारक थे और मानवतावादी। इन दोनों के उदात्त समाज व राज्य का स्वप्न था। उसके लिए धरा तैयार की थी। मार्क्स की अपेक्षा गाँधी और लोहिया व्यवहारवाद तथा यथार्थवाद के अधिक करीब इसलिए थे कि दोनों सत्याग्रह, अहिंसा आंदोलन में गहरी आस्था रखते थे, परंतु लोहिया जहाँ गाँधी से कुछ अलग दृष्टिगत होते है। यहाँ पहले मार्क्स के साथ लोहिया को लेगें, फिर गाँधी के साथ लोहिया को , क्योंकि मार्क्स और गाँधी एकदम अलग है।

डॉ. लोहिया और मार्क्स :

डॉ. लोहिया ही अकेले ऐसे भारतीय समाजवादी चिन्तक थे, जिन्होंने मार्क्सवाद की गहराई से परीक्षा की । उन्होंने अपने लेख "इकोनोमिक्स आफ्टर मार्क्स"(1943) में मार्क्सवाद के प्रत्येक पक्ष की सूक्ष्मता से विवेचना प्रस्तुत की । किन्तु लोहिया में कभी भी

1. Lohiya Speech, Pachmarhi, May, 1952.

मार्क्सवाद के प्रति सैद्धान्तिक अपनत्व नहीं विकसित हो पाया। लोहिया के शब्दों में "मार्क्सवादी सिद्धान्त के अपने विशाल व्यावहारिक अन्तर्विरोधियों ने मुझे उद्विग्न कर दिया। अतः इसकी धाराओं के सत्य की खोज करने और उसके असत्य को नष्ट करने की मेरी इच्छा जगी।"[1] एक जागरूक विचारक के रूप में लोहिया ने कभी भी एक व्यक्ति के विचारों को अपना केन्द्र नहीं बनाया अर्थात् वे कभी एक व्यक्ति के विचारो पर आश्रित नहीं रहे। उन्होंने स्पष्ट किया कि हम वास्तविक ज्ञान तभी प्राप्त कर सकते हैं, जबकि अपने चिन्तन को केवल एक व्यक्ति तक ही सीमित न रखें। उन्होंने लिखा है किसी भी एक व्यक्ति के चिन्तन को राजनीतिक कर्म का केन्द्र नहीं बनाना चाहिए। यह चिन्तन में सहायता करे न कि विचारक के चिन्तन को नियन्त्रित। पूर्ण रूप से स्वीकृति तथा अस्वीकृति, दोनों ही अंधविश्वास के बदलते पहलू हैं। मेरा विश्वास है कि गाँधीवादी अथवा मार्क्सवादी होना मतिहीनता है और गाँधीवादी विरोधी या मार्क्सवाद विरोधी होना भी उतनी ही बड़ी मूर्खता है। गाँधी और मार्क्स दोनों के ही पास अमूल्य ज्ञान-भण्डार है, किन्तु यह ज्ञान तभी प्राप्त हो सकता है, जबकि चिन्तन संरचना किसी एक युग या व्यक्ति के विचारों तक ही सीमित न हो। लोहिया ने मार्क्स के जिन सिद्धान्तों की आलोचनात्मक व्याख्या की , वे निम्न हैं -

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद :

मार्क्स का मौलिक सिद्धान्त द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद है। वह मनुष्य की चेतना पर भौतिकवादी स्थितियों का स्पष्ट प्रभाव मानते हैं। मनुष्य की चेतना को उनके अनुसार भौतिकवादी स्थितियाँ निश्चित करती हैं। जबकि लोहिया के अनुसार मनुष्य की चेतना तथा भौतिक स्थितियाँ एक दूसरे पर आश्रित हैं। मन ठीक होगा तो पेट भी ठीक रहेगा। मार्क्स पेट को चेतना से अलग कर ठीक करने की बात करते हैं, लोहिया इस बात को स्वीकार नहीं करते। न आर्थिक उद्रिष्ट पाने पर दूसरे लक्ष्य प्राप्त हो सकते हैं, जैसा मार्क्स मानता है पर लोहिया नहीं। लोहिया ने स्पष्ट कहा कि आर्थिक लक्ष्य प्राप्ति के अतिरिक्त अन्य लक्ष्य जैसे सांस्कृतिक, सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक आदि को अलग से प्राप्त करना होगा। इसके लिए अलग से प्रयास करने होंगे। मनुष्य के लिए सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक लक्ष्य आर्थिक या भौतिक लक्ष्य से किसी भी तरह कम महत्व के नहीं हैं। माना कि अर्थ का अपना महत्व है, लेकिन मनुष्य के सर्वांगीण विकास में अन्य सभी लक्ष्यों को प्राप्त करना अपरिहार्य है।

---

1. लोहिया- **मार्क्स, गांधी एण्ड सोशलिज्म,** पृष्ठ 1.

डॉ. लोहिया का द्वंद्वात्मक भौतिकवाद विज्ञान-संगत है। मार्क्स आत्मा को पदार्थ नाम देते है। वह मानते है कि प्रत्येक वाद स्वतः प्रतिवाद के जन्म का हेतु है। उससे बहस शुरू होती है। लोहिया कहते है कि ''उनका सोचना कभी द्वंद्व का नहीं रहा। क्या आदमी का दिमाग खाली बाहरी आर्थिक और दूसरी परिस्थितियों तक सीमित है? क्या उसी का गुलाम रहता है या खुद भी सोचकर अपना और समाज का परिवर्तन किया करता है? उस पर बड़ी बहस चलती रही। जो ताजा-ताजा समाजवाद में आता है उसके लिए तो यह बहस बड़ी महत्वपूर्ण रहती है- व्यक्ति या समष्टि। फिर एक दूसरी बहस है - पुरूष या प्रकृति या यथार्थ अथवा आत्मा। आमतौर से जिसको लोग समाजवाद बोलते हैं उसमे पदार्थ को ही मुख्य मान लेते हैं। और फिर पदार्थ के मुख्य होने पर जो कुछ थोड़ी-बहुत आत्मा बगैरह को जगह रहती है, दिमाग को जगह रहती है, वह भी पदार्थ के चेले अथवा नौकर की हैसियत से ही।''[1]

डॉ. लोहिया कहते है कि एक वस्तु को एक ओर से देखो तो उसका शरीर या पदार्थ नजर आएगा और दूसरी तरफ से देखो तो वह आत्मा का, या दिमाग का अथवा पुरूष का रूप नजर आएगा। वे दोनों मानते हैं और उसी से उसकी पूर्णता भी मानते हैं। डॉ. लोहिया कहते हैं कि ''इतिहास पर द्वंद्वात्मक भौतिकवाद को जिस रूप से लागू किया गया है, उसके अंदरूनी तर्क की इस जाँच से पता चलता है कि वह उतना ही आध्यात्मिक है जितना अद्वंद्वात्मक और सरासर अनैतिहासिक है।''[2]

कार्ल मार्क्स पैदावर के तरीकों को इतिहास का प्रेरक मानते है। डॉ. लोहिया की दृष्टि में यह तर्क पूर्ण नहीं है। वे मार्क्स पर यह आरोप लगाते हैं कि द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी व्याख्या को जिस तरह इतिहास पर लागू किया है उससे यथास्थिति की सेवा करने वाला एक सिद्धान्त है- प्रमुखतया यूरोप की महानता के संदर्भ में। मार्क्स की तद्विषयक व्याख्या स्वंय ही अपना शिकार इसलिए हो जाती है क्योंकि पूँजीवाद अपने विरोधी श्रमिक-वर्ग का शोषण करता है और उन्हें ही क्रान्ति के लिए संगठित करता है। नतीजा यह निकलता है कि आखिर में वही उसके अंत का कारण बनता है।

---

1. ओंकार शरद- **लोहिया के विचार**, पृष्ठ 40.
2. डॉ. राममनोहर लोहिया-**इतिहास चक्र**, पृष्ठ 24.

वर्ग संघर्ष-

मार्क्स के अनुसार "आज तक का समस्त मानव इतिहास वर्ग-संघर्ष का इतिहास रहा है।"1 उत्पादन की शक्तियों तथा उत्पादन के संबंध के आपसी टकराव के कारण वर्ग संघर्ष होता है। जैसा कि कैपीटल के तीसरे खण्ड में मार्क्स ने लिखा है कि यह "उत्पादन की अवस्था के मालिक और उत्पादन करने वाले श्रमिकों के सीधे सम्बन्ध से जुड़ा हुआ है।"2 वर्ग संघर्ष का लक्ष्य उत्पादन की शक्तियों और साधनों को मुक्त कराना है जो तत्कालीन सभ्यता में प्रचलित व्यवस्था के विशेष ढाँचे के कारण दबे रहते हैं। लोहिया ने वर्ग संघर्ष की आलोचना दो स्तरों पर की है। (क) अन्य समाजवादियों से भिन्न- विशेषकर 'नरेन्द्रदेव जो कि स्वयं इतिहास को मार्क्स द्वारा व्याख्यातित इन्हीं तीन -चार युगों में बाँटते है।'3 लोहिया ने कहा, मानव विकास के इतिहास को यूरोप का इतिहास भी इसका अपवाद नहीं, मार्क्स द्वारा वर्गीकृत तीन चार युगों में विभाजित करना, समग्रता की अवहेलना करना है। (ख) लोहिया ने माना यह सही है कि इतिहास में वर्गों का संघर्ष चलता रहा है। इसमें कोई शंका नहीं है कि सभी युगों में आंतरिक असमानता रही है और यह उन वर्गों के माध्यम से प्रकट होती रही है जो आपस में संघर्ष करते हैं। किन्तु मुख्य प्रश्न यह है कि इस वर्ग संघर्ष का रूप और क्रम क्या रहा है। डॉ. लोहिया का मानना है कि वर्गों का आन्तरिक संघर्ष राष्ट्रों के बाहरी संघर्ष के साथ-साथ चलता है। लोहिया का आरोप यह था कि मार्क्स वर्ग संघर्ष के इस रुप को देखने में असफल रहा। डॉ. लोहिया के शब्दों में " मार्क्स ने अन्दरूनी सर्वहारा और बाहरी सर्वहारा के इस फर्क की ओर काफी ध्यान नहीं दिया। यदि वे देते तो अन्दरूनी सर्वहारा के समाजीकरण की बात करते और बाहरी सर्वहारा की बढ़ती हुई गरीबी की।"4

इतिहास की आर्थिक व्याख्या-

कार्ल मार्क्स की दृष्टि में " इतिहास की आर्थिक व्याख्या भौतिक साधनों की उत्पादन-पद्धति सामाजिक, राजनीतिक तथा बौद्धिक जीवन की संपूर्ण प्रक्रिया की स्थिति निर्धारित करती है।"5 वह भौतिक स्थिति के परिवर्तन से विचार प्रक्रिया में बदलाव आने पर विश्वास करते हैं न कि विचार-प्रक्रिया से भौतिक बदलाव की। लोहिया इतिहास के उत्थान-पतन, कौमों और वर्गों के उत्थान-पतन के संबंध में सिद्धान्त की बात उठाते हैं।

1. कार्ल मार्क्स- **कम्युनिस्ट मैनिफेस्टो (अनुदित)**, पृष्ठ 35.
2. कार्ल मार्क्स- **कैपीटल (अनुदित)**, खण्ड-3, पृष्ठ 772.
3. नरेन्द्र देव- **राष्ट्रीयता और समाजवाद**, पृष्ठ 419.
4. लोहिया- **इतिहास चक्र**, पृष्ठ 31.
5. कार्ल मार्क्स- **राजनीतिक अर्थशास्त्र की समालोचना (भूमिका)**

साथ ही अपने बारे में मनुष्य की जिज्ञासा को भी वे महत्ता देते हैं क्योंकि मनुष्य की लालसा अपूर्ण से पूर्ण बनने की होती है और यह जानने की भी होती है कि 'वह कहाँ से आया है, कहाँ जाएगा, यह जीवन जगत क्या है?' इससे लोहिया यह अर्थ निकालते है कि "और इसी खोज में जो कि मनुष्य के सारे इतिहास में उसके साथ रही मालूम पड़ती है उसने संस्थाएँ बनाई हैं और तोड़ी हैं, युद्ध किए हैं और शांति संधियाँ की हैं। इस सारे विकास में उसने बार-बार यह खोजना चाहा है कि क्या उन घटनाओं के द्वारा उसके जीवन का उद्देश्य पूरा हो सकता है, जो मिलकर इतिहास का क्रम बनाती हैं।"[1] लोहिया विचारों को मार्क्स की भाँति पदार्थ का प्रतिबिंब मात्र नहीं मानते। वे मनुष्य की चेतना तथा उसकी भौतिक परिस्थितियों को एक-दूसरे का पूरक मानकर चलते हैं- ये दोनों एक सिक्के के दो पहलू हैं। जीवन की समग्रता में सांस्कृतिक, सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक आदि की भूमि पर वे जोर देते हैं, जिनके प्रति मार्क्स आधारभूत दृष्टिकोण नहीं बनाता है।

अतिरिक्त मूल्य-

मार्क्स का अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त इस मान्यता पर आधारित है कि "श्रम ही मूल्य का एकमात्र निर्माता हैं।"[2] मार्क्स का मत है कि श्रम अन्य वस्तुओं की भाँति एक वस्तु है। हर अन्य वस्तु की भाँति श्रम का भी निश्चित मूल्य होता है। किन्तु अन्य वस्तुओं के विपरीत श्रम अपने अन्दर दो विरोधी मूल्यों को धारण किये हुए है जिससे वह फिर काम कर सकें। इस प्रकार एक विशेष समय में जो कुछ उसे "खाने" के रूप में दिया जाता है वही उसकी मजदूरी है। यह श्रम का एक मूल्य है। किन्तु श्रम का एक दूसरा मूल्य भी है- उसका उपयोगिता मूल्य, उसे खरीदने वाले पूँजीपति के लिए। पूँजीपति मजदूर की श्रमशक्ति के लिए दाम देता है, लेकिन उसके बदले, उसके द्वारा उत्पादित सारी वस्तुएँ पाता है। इन वस्तुओं का एक भाग मजदूरी में चला जाता है, किन्तु दूसरा भाग पूँजीपतियों के मुनाफे के रूप में बचा रहता है। मजदूर का दिन भी दो भागों में बँट जाता है। एक भाग में उनकी मजदूरी निकलती है और दूसरे से मुनाफा। पूँजीपति मुनाफे के स्रोत का उद्‌गम यही है, क्योंकि केवल श्रम ही मूल्य का एकमात्र निर्माता है। दोनों मूल्यों का यही अन्तर ही अतिरिक्त मूल्य का स्रोत है अर्थात् श्रम-मूल्य और उसकी उपयोगिता -मूल्य के अन्तर को अतिरिक्त मूल्य की संज्ञा दी जाती है। डॉ. लोहिया ने मार्क्स द्वारा व्याख्यापित अतिरिक्त मूल्य के

---

1. डॉ. लोहिया- **इतिहास चक्र**, पृष्ठ 6.
2. डॉ. लोहिया- **मार्क्स गाँधी एण्ड सोशलिज्म**, पृष्ठ 3.

सिद्धान्त की आलोचना करते हुए कहा कि पूँजीवादी व्यवस्था के अन्तर्गत श्रम के दो रूप रहे हैं- एक जो साम्राज्यवादी देशों में प्रचलित है तथा दूसरा वह जो उपनिवेशी देशों में - जो एक दूसरे से इतने भिन्न हैं कि उन्हें एक साथ देखने पर, कभी भी ठीक-ठाक नहीं समझा जा सकता। मार्क्स श्रम के इस दोहरे स्वरूप को देखने में असफल रहें। डॉ. लोहिया के शब्दों में "श्रम या तो साम्राज्यवादी रहा है या औपनिवेशिक और दोनों के मूल्यों में बड़ा अन्तर भी रहा है मानवी श्रम ने जीवित रह कर, काम करने की बहुत बड़ी शक्ति दिखायी है और औपनिवेशिक श्रम के दो आने प्रतिदिन से साम्राज्यवादी श्रम के चार रूपये प्रतिदिन तक उसकी आवश्यकतायें रही हैं। इससे प्रकट होता है कि श्रम की आवश्यकतायें शरीर अथवा प्रकृति द्वारा निर्धारित न होकर, इतिहास द्वारा निर्धारित होती हैं।"[1]

श्रमिक की शारीरिक शक्ति और कौशल का प्रयोग समस्त विश्व में समान रूप से होता है तथा वैज्ञानिक सुविधायें समान हैं तो उत्पादन भी समान ही होगा। किन्तु औपनिवेशिक श्रम का 99 प्रतिशत अतिरिक्त मूल्य के रूप में चला जाता है, जबकि साम्राज्यवादी श्रम का यह प्रतिशत केवल दस ही रहा है। इस प्रकार इन दोनों मूल्यों में जो अन्तर है उसको एक साथ नहीं ले सकते। अतः अतिरिक्त मूल्य के सिद्धान्त को पूँजीवाद-साम्राज्यवाद के संयुक्त विकास में ही समझा जा सकता है।

डॉ. लोहिया और गाँधी-

महात्मा गाँधी मौलिक विचारक थे और उन्होंने विचारों को करके जाना था। अर्थात् कर्म-प्रधान थे उनके विचार । दक्षिण अफ्रीका और भारत उनका कार्यक्षेत्र रहा था। दक्षिण अफ्रीका में उन्होंने अनेक प्रयोग किए थे। वहाँ के अनेक अनुभवों ने उन्हें चिंतक बनाया। उन्हें सोचने के लिए बाध्य होना पड़ा कि समाज क्या है, मनुष्य क्या है, असमानता क्यों है, गरीबी क्यों है, क्यों है छुआछूत? उनका प्रयास था कि एक उदात्त समाज बने, सर्वहितकारी समाज बने। वे रामराज्य को समाज-दर्शन और समाजवाद मानते थे। वे आस्तिक थे जबकि लोहिया नास्तिक। वे आत्मा की बात करते थे गहरे में डूबकर प्रार्थना से साक्षात्कार करते हुए। जबकि लोहिया कर्म में अटूट आस्था रखते हैं। भक्ति से वे दूर रहे, परंतु चित्रकूट में रामायण-मेला की भूमिका एक नास्तिक की कल्पना नहीं हो सकती। वे राम

---

1. डॉ. लोहिया- **मार्क्स गाँधी एण्ड सोशलिज्म,** पृष्ठ 16.

से, राम की मुद्रा में, शिला पर खड़े होकर अपने सवाल के उत्तर बनने की प्रतीक्षा में मौन और अविचल रहकर प्रतीक्षा कर सकते थे। वे गाँधी की तरह अहिंसा में विश्वास करते थे और सत्याग्रह, सविनय अवज्ञा आंदोलन आदि में गहरी निष्ठा रखते थे। यह कहना गलत नहीं है कि डॉ. लोहिया गाँधी के शिष्य थे। गुरु-शिष्य परंपरा उनमें सच्चे मन से, संपूर्ण आस्था और कर्म से चरितार्थ हुई थी। ज्ञातव्य है कि लोहिया विचारक थे और विचार व कर्म से भी वे गाँधी की तरह मौलिक थे, उनकी प्रतिलिपि या छाया मात्र नहीं। स्वतंत्रता में विश्वास रखने वाला जीवट इंसान गुलामी का फंदा अपने गले में नही डाल सकता और न गाँधी ऐसे थे कि पकड़ कर शिष्य बनाते। उनके सच्चे शिष्य वे ही हैं जो स्वचेतना से संचालित होते हैं और अपनी स्वतंत्रता को कभी किसी रूप में नहीं खोते। शिष्य की यही तो प्रेरणा है जो ज्योति को ज्योति बने रहने में अटूट आस्था रखती है। फिर भी, गाँधी और लोहिया के जीवन-दर्शन के साम्य, भाष्य और चरितार्थ को समझने के लिए निम्नलिखित क्षेत्रों का चयन किया जा सकता है -

1. समाज का स्वरूप अनुचिंतन
2. राजकेंद्रित अनुचिंतन
3. अर्थविषयक अनुचिंतन
4. भाषा-विचार
5. बसुधैव कुटुंबकम का स्वप्न

समाज का स्वरूप अनुचिंतन :

मार्क्स के भी पंचसूत्रीय क्षेत्र थे और गाँधी के भी। गाँधी पूर्णतया अहिंसक थे। उनके कार्य करने का आधार सत्यानुप्रेरित था। वे करुणा की प्रतिमूर्ति थे। उनके मन में सबके प्रति सद्भाव था। सहानुभूति थी और करुणा थी। वे समाज तथा राज्य की दुर्दशा से अत्यंत दुखी थे। गुलामी उन्हें किसी स्थिति में स्वीकार नहीं थी। दुःख की तह में वे गए थे, लेकिन मार्क्स के परिणाम पर नहीं पहुँचे।

महात्मा गाँधी विश्व-संस्कृति के हामी स्वर थे। भारतीय संस्कृति के वे पुजारी थे। वर्ण-व्यवस्था उन्हें स्वीकार थी। वे मालिक और मजदूर के अंतर्संबंधों पर जोर देते थे और

उनके सामने 'ट्रस्टीशिप' का प्रस्ताव रखते थे ताकि दोनों का अस्तित्व इस तरह बना रहे कि दोनों एक-दूसरे के अनुपूरक हो सकें और लाभ में दोनों की विश्वसनीय भागीदारी बनी रहे। वे साम्राज्यवाद के विरूद्ध थे। ग्रामीण तथा सहज प्रकृतात्मक प्रवाह में बहने के समर्थक थे। वर्ण-व्यवस्था को वे प्राकृत व्यवस्था के अनुरूप मानते थे। वर्ण-व्यवस्था पैतृक हुनर तथा पैतृक व्यवसाय को समुन्नत करने में बहुत सहायक है, ऐसी उनकी मान्यता थी। जातिवाद का वे समर्थन नहीं करते थे। जातिवाद लोकतंत्र को खोखला करता है, उसे मिटाना बहुत जरूरी है, क्योंकि उससे लोकतंत्र को खतरा है। उससे समतावादी समाज की स्थापना को भी खतरा है। वे किसी से भी घृणा नहीं कर सकते थे, क्योंकि सबमें वे एक ही आत्मा के दर्शन करते थे। भगवान को वे मानते थे पूर्ण निष्ठा से। वर्ण-व्यवस्था का आधार भी वही है। उन्होंनें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चार वर्ण की वकालत भी की थी। शूद्र के लिए बाद में उन्होंनें 'हरिजन' की संज्ञा दी थी। वर्ण-व्यवस्था उनकी दृष्टि में इस बात का आग्रह करती है कि व्यक्ति का जिस जाति में जन्म हुआ है, प्रायः वह व्यक्ति अपने खानदानी व्यवसाय में जुड़े, क्योंकि खानदानी व्यवसाय का प्रशिक्षण वह अपने परिवार के साथ रहकर पूरा कर लेता है। दूसरे, उससे छोटे उद्योगों को भी अवलंब मिलता है। वे कुटीर उद्योग के पक्षधर थे, भारी उद्योग के नहीं। भारी उद्योग से लोभ की धाराएँ निकलती हैं और पूँजी पर बड़े लोगों का आधिपत्य हो जाता है। वर्ण-व्यवस्था सामाजिक न्याय का एक सशक्त साधन है। वे वर्ण-व्यवस्था को जन्म से नहीं कर्म से मानते थे। वंशानुक्रमण का प्रभाव मनुष्य पर पड़ता है। दूसरे, पुश्तैनी रोजगार से नौकरी की ओर ध्यान नहीं जाता और न बेकारी की समस्या सामने आती है।

डॉ. लोहिया गाँधी की तरह न वर्ण-व्यवस्था की वकालत करते हैं और न जाति-प्रथा की। वे वर्ण और जाति को एक मानकर चलते हैं। उनकी दृष्टि में इन दोनों का अस्तित्व समाप्त होना आवश्यक है। इन दोनों के बने रहने से समाज और राज्य का विकास अवरूद्ध हो जाता है। डॉ. लोहिया का मत था कि "प्रशासन और सैनिक सेवाओं में शूद्र और द्विज के बीच विवाह की योग्यता और सहभोग को अस्वीकार एक अयोग्यता मानी जानी चाहिए।"[1] वे संयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा परिषद में पाँच बड़े राष्ट्रों की स्थायी सदस्यता और निषेधाधिकार को जाति-प्रथा के अंतर्गत ही मानते थे। उन्होंने नीग्रो लोगों को

---

1. डॉ. लोहिया- **जाति प्रथा,** पृष्ठ 4.

जाति-भेद- नीति से मुक्ति पाने का परामर्श दिया था। वे जाति- प्रथा के अस्तित्व को जन्म से नहीं, दौलत, स्थान और बुद्धि में जकड़न आ जाने से मानते थे। उनकी सोच थी कि वास्तव में मानव-मस्तिष्क एक पेचीदा तंत्र है जो आंतरिक वर्ण-व्यवस्था के विरूद्ध न्याय के लिए अपनी सारी शक्ति लगाकर भी अंतर्राष्ट्रीय वर्ण-व्यवस्था के अन्याय को बिल्कुल देख और समझ नहीं पाता। वे 'वर्ण-व्यवस्था की स्थापना को कभी वर्गों का अंत समझने की भूल से सावधान करना चाहते हैं।'[1] उनकी दृष्टि में वर्ण और वर्ग दोनों का एकसाथ खात्मा होना चाहिए तभी मनुष्य की मुक्ति है। क्योंकि लोहिया समन्वयवादी नहीं थे। गाँधी थे। लोहिया का आक्रमण सीधा था, उन्हें बिल्कुल समझौते की आवश्यकता नहीं थी।

राजकेंद्रित चिंतन :

गाँधी की भूमिका एक महात्मा की थी। वे हृदय की बात करते थे, परमेश्वर पर भरोसा रखते थे। उनमें सुधार की प्रबल इच्छा थी। उनके लिए राज्य की अपेक्षा समाज प्रमुख था। वे समाज-सुधारक पहले थे, राजनीतिक चिंतक बाद में। डॉ. लोहिया की दिशा ठीक इसके विपरीत थी। वे तर्क और बुद्धि को हृदय की अपेक्षा अधिक महत्व देते थे। गाँधी के पदचिन्हों पर चलते हुए लोहिया ने सत्याग्रह, सविनय अवज्ञा आंदोलन, अहिंसा पर अटूट आस्था को अपने से व्यक्त किया। डॉ. लोहिया राजनीतिक चिंतक थे। उनकी पहली चिंता राज्य को लेकर थी। समाज की चिंता उनमें दूसरे नंबर की थी। लोहिया ने 'इतिहास-चक्र' जैसा मौलिक ग्रंथ देकर राजनीतिक चिंतन को गहरा किया था और उसे एक दिशा प्रदान की थी।

महात्मा गाँधी की तरह डॉ. लोहिया भी सत्ता के विकेंद्रीकरण में आस्था रखते थे। वे दोनों ही नहीं चाहते थे कि सत्ता का केंद्रीयकरण हो। ऐसा होने से सत्ता पर से अंकुश हट जाएगा। सत्ता निरंकुश हो जायेगी। सत्ता बँटेगी तो उत्तरदायित्व की भावना बढ़ेगी। जनता भी सत्ता से जुड़ सकेगी। ग्राम राज्य गाँधी का रामराज्य था। वे सत्ता और राज्य का कम से कम दखल चाहते थे। गाँधी, राज्य से मनुष्य की व्यक्तिगत विशेषता को हानि होती है, ऐसा मानते थे, जबकि लोहिया की राज्य में पूर्ण आस्था थी। वे राज्य के प्रति बिलकुल भी शंकालु नहीं थे और उसे मनुष्य के विकास की एक आवश्यक कड़ी मानते थे।

---

1. डॉ. राममनोहर लोहिया- **इतिहास चक्र**. पृष्ठ 38.

महात्मा गाँधी ग्राम को स्वतंत्र इकाई के रूप में शक्तिमान बनाना चाहते थे। ग्राम का आत्म-निर्भर होना उनकी दृष्टि में सर्वोपरि था। जबकि लोहिया राज्य को गाँव से सुसमृद्ध बनाए रखने के पक्ष में थे। गाँव स्वतंत्र होते हुए भी आपस में और राज्य से जुड़े हों, वे यह जरूरी मानते थे।

महात्मा गाँधी की तरह लोहिया भी साध्य तथा साधन की शुचिंता को अपरिहार्य मानते थे। साध्य-साधन में आपसी वही संबंध है जो बीज और वृक्ष में है। साधन की पवित्रता साध य को स्वतः पवित्र बना लेती है। इसके लिए लोहिया ने विश्व के सामने साक्षात्कार का सिद्धांत प्रस्तुत करते हुए कहा था कि साक्षात्कार का सिद्धान्त प्रत्येक कार्य का औचित्य स्वतः उसमें ही देखता है, उससे बाहर नहीं। उस कार्य का औचित्य प्रमाणित करने के बाद किसी अन्य औचित्य की आवश्यकता नहीं। वे चाहते थे कि समाजवादी औद्योगीकरण व नियोजन, शासन संस्था आदि सभी कार्यों की कसौटी साक्षात्कार का सिद्धान्त होना चाहिए। इसके द्वारा वे सामाजिक क्रांति एवं चरित्र-निर्माण को साथ-साथ देखना चाहते थे। इस तरह वे समाजवाद को अराजकता एवं हिंसा से मुक्ति दिलाने की बात सोचते थे।

डॉ. लोहिया ने अपनी क्रांति को सत्याग्रह से जोड़े रखा। वे शोषित के प्रति उग्र व रोष से भरे नजर आए और शोषितों के प्रति प्रेम से। वे गाँधी के सविनय अवज्ञा आंदोलन तथा हड़ताल को तो बहुत महत्वपूर्ण मानते थे, परंतु उपवास के प्रति उनकी तीखी प्रतिक्रिया थी। वे उसे छल मानते थे। अंततोगत्वा लोहिया इस क्षेत्र में आंशिक अंतर के साथ गाँधी की ही अनुशंसा करते प्रतीत होते हैं।

जहाँ गाँधी ने कर्तव्य को अधिकार की अपेक्षा अधिक महत्व दिया है, वही लोहिया ने अधिकार को प्रधानता दी है। वे मानते हैं कि अधिकार-बोध व्यक्ति में स्वाभिमान जगाता है। स्वाभिमान से कर्तव्य-बोध का गहरा अहसास होता है, वह कर्तव्यानुप्रेरित होता है और इसे ठीक ढंग से निभाता भी है।

इसी तरह धर्म में राजनीति या राजनीति में धर्म विशेष को दोनों ही उपयुक्त नहीं मानते। दोनों मानव धर्म में आस्था रखते हैं। गाँधी की ईश्वर में अगाध आस्था थी पर लोहिया की नहीं। हृदय की अपेक्षा लोहिया तर्क और विवेक का अवलंब लेना ज्यादा जरूरी समझते थे। पुनर्जन्म में गाँधी का विश्वास था, लोहिया का नहीं। राजनीतिक चिंतन में दोनों में अंतर होते हुए भी मुख्य बिंदुओं पर दोनों में सहमति थी। लोहिया आज के संदर्भ में अधिक यर्थाथवादी लगते हैं अपेक्षाकृत गाँधी के।

अर्थ-विषयक अनुचिंतन -

मार्क्स, गाँधी और लोहिया तीनों ही ऐसे समाज की संकल्पना करते हैं जिसमें शोषक और शोषित न हो। गाँधी कुटीर उद्योग धंधों को सर्वाधिक महत्त्व देते थे। लोहिया भी गाँधी की तरह बड़े उद्योगों को शोषण का माध्यम मानते थे। बड़े उद्योगों में क्रियाशील यंत्र मनुष्यों से उसका रोजगार छीनते हैं। गाँधी ग्रामोद्योग और चरखे से अर्थतंत्र को शोषकविहीन बनाने की दिशा में निर्णय लेते हैं। सत्ता के विकेंद्रीकरण के साथ अर्थ का विकेंद्रीकरण भी होता है जो सबको अर्थ के विज्ञान से जोड़ता है और सबको समुचित लाभ पहुँचाता है।

महात्मा गाँधी श्रम की प्रतिष्ठा में विश्वास करते हैं और लोहिया भी। श्रम की प्रतिष्ठा के साथ लोहिया खर्च की सीमा बाँधने की चेष्टा करते हैं। लोहिया ने आय-नीति तथा मूल्य-नीति को निर्धारित करने की दिशा में 1:10 का अनुपात तय किया था। श्रमिक को यथोचित मजदूरी मिले, जिससे वह अपना तथा अपने परिवार का सुचारू रूप से पालन करने में सक्षम हो सके।

भूमि के मालिकाना हक के संबंध में गाँधी भूमि पर उसका हक मानते थे जो खेती करे। पर ऐसा कैसे संभव होगा? इस पर गाँधी नहीं, लोहिया गहराई से विचार करते हुए भूमि के पुनर्वितरण पर जोर देते हैं और भूमि का पुनर्वितरण 1:3 से अधिक नहीं हों, इसके लिए वे कानून की मदद पर भी जोर देते हैं।

डॉ. लोहिया, गाँधी के विपरीत कारखाने बढ़ाने की बात करते हैं - सरकारी

राष्ट्रीय कारखाने। वे कहते हैं कि नए-नए कारखाने खुलते जाएँ। कारखानों में ही नहीं, वह जो पैसा बचता है नफे वाला पैसा उसको खेती में लगाना है, खेती बहुत बड़ी तादाद में बढ़ानी है। पानी देना है, सिंचाई का पानी, पीने का पानी। उनका मत है कि "अगर आमदनी बाँटने का या श्रम के फल को बाँटने का वही अनुपात रहा, वही शैली रही, जो पूँजीपति के कारखाने में होती है, तो फर्क कहाँ हुआ? "उस परिस्थिति को बदलो।" जब तक हिंदुस्तान में दौलत प्रचुर नहीं हो जाएगी, आमदनी नहीं बढ़ पाएगी, तब तक संपत्ति के मालिक का सवाल रहेगा, नंबर एक का सवाल रहेगा।"[1] वे राउरकेला में सरकारी इस्पात कारखाने का उल्लेख करते हुए यह अंतर अवश्य देखना चाहते हैं कि जमशेदपुर में टाटा के कारखाने से इस्पात का कारखाना अलग हो, श्रम से कमाए मुनाफे का बँटवारा समाज के हित में हो और एक कारखाना दूसरे कारखाने को जन्म दे। गाँधी राष्ट्रीयकरण के पक्ष में नहीं थे और वे निजी कल-कारखानों के पक्षधर थे। उन्होंने 'ट्रस्टीशिप' का विचार जरूर दिया था, परंतु ग्राम को अर्थ की दृष्टि से स्वावलंबी बनाने का उनका स्वप्न था-ग्रामराज। यदि ग्राम साधन-संपन्न हों, आर्थिक दृष्टि से सुदृढ़ हों और उनमें हरएक की रोजी-रोटी का सम्मानजनक इंतजाम हो, तो उनकी दृष्टि में वही ग्रामराज है, स्वराज्य है और विकेंद्रीकरण का उससे आम जनता को पूरा-पूरा लाभ है। वे टहनियों, पत्तों, फल-फूल को नहीं जड़ को सींचने के पक्षधर थे।

भाषा-विचार :

महात्मा गाँधी और डॉ. लोहिया इस विषय पर लगभग एकमत थे और भारत की राष्ट्रभाषा हिंदी को सार्वजनिक तथा राष्ट्रीय जीवन में और हर जगह काम करते देखना चाहते थे। जिस देश के पास अपनी समृद्ध भाषा नहीं, वह देश स्वतंत्रता पाकर भी क्या कर सकेगा? और कुछ करेगा भी तो कितना न्याय कर सकेगा अपने देशवासियों के साथ? भाषा सरल हो, सबकी हो, आम आदमी की समझ की हो। अपना देश, अपनी भाषा, यही उनकी दृष्टि में अपने देश की पहचान थी।

महात्मा गाँधी ने हिंदी को राष्ट्रभाषा कहा था और उसके लिए कुछ-कुछ किया भी; परंतु डॉ. लोहिया ने तो हिंदी के लिए समर्पित भाव से, जी-तोड़ प्रयत्न किया, संघर्ष

---

1. ओंकार शरद-**लोहिया के विचार,** पृष्ठ 59-60.

किया और धरने दिए, आंदोलन चलाए, परंतु उनके बाद धीरे-धीरे वह जोश, वह मन और समर्पण कम होता गया और अंत में हिंदी प्रदेश में भी वहाँ की भाषाएँ सिर उठाने लगी, जबकि वहाँ अंग्रेजी का किसी ने विरोध नहीं किया। आज अंग्रेजी का चलन हिंदी की अपेक्षा ज्यादा है।

बसुधैव कुटुंबकम् का स्वप्न-

सारा विश्व मेरा घर है, मेरा परिवार है और मेरा समाज है। आज जरूरत इस बात की है कि आपस में विश्व-स्तर पर हम एक-दूसरे के मददगार सिद्ध हों। गाँधी की तरह लोहिया भी धरने, सत्याग्रह, सविनय अवज्ञा आंदोलन के द्वारा विश्व में शांति चाहते थे और मनुष्य को मनुष्य के नजदीक लाकर एक दूसरे के सुख के लिए योजना बनाकर उसकी क्रियान्विति भी देखना चाहते थे। दोनों की निःशस्त्रीकरण, विश्व संघ, अंतर्राष्ट्रीय आत्मवाद में गहरी आस्था थी। गाँधी विश्व-मंच के पुरोधा थे। डॉ. लोहिया उसके पक्के समर्थक, प्रचारक और मौलिक चिंतक थे। गाँधी से अलग हटकर उन्होंने विश्व-सरकार की योजना सतर्क, गहरी छानबीन और आपसी सूझबूझ के साथ प्रस्तुत की थी जो निश्चय ही 'लींग ऑफ नेशंस' या 'संयुक्त राष्ट्र संघ' से एकदम अलग थी पर प्रभावशाली थी, शक्तिसंपन्न थी, सुदृढ़ थी और लोकतंत्र की अंतदृष्टि को व्यापक, गहन तथा अच्छा बनाने वाली थी। यह संकल्पना उनकी मौलिक तथा विश्व-बंधुत्व की भावना को सघन, पुख्ता और आत्मविश्वासी बनाने वाली थी। युद्ध को दोनों ही मानवता का शत्रु मानते थे और उसकी भरपूर भर्त्सना भी करते थे।

डॉ. लोहिया की मंशा मानव को विश्व-नागरिक बनाने की थी। विशेषाधिकार के वे विरूद्ध थे। दोनों ही साम्राज्यवाद के खिलाफ थे। दोनों ही समाजवाद में आस्था रखते थे। परंतु गाँधी की आस्था नैतिकता पर आधारित थी जबकि लोहिया की आस्था में कानून का बल था। गाँधी के विश्व में अमीर-गरीब, मालिक-मजदूर, राजा-प्रजा आदि दोनों ही सुरक्षित थे, संतुष्ट थे और भ्रातृत्व-भाव से परिपूर्ण थे, जबकि लोहिया निर्धनता को बर्दाश्त नहीं करते थे। वे जमींदारी-उन्मूलन के पक्षधर थे। राजा का उनके विश्व में अस्तित्व नहीं था। गाँधी का अद्वैतवाद उनकी दृष्टि में अधूरा तथा अपरिपक्व था, क्योंकि गरीबी के रहते हुए व्यक्ति

और समाज कभी सुखी नहीं हो सकते। वे हृदय-परिवर्तन का इंतजार नहीं कर सकते थे। गाँधी संतधारा के प्रवक्ता-चिंतक और प्रस्तोता थे, जबकि लोहिया यर्थाथवादी, मानवतावादी और व्यवहारवाद के अगुवा थे। गाँधी ने कर्म के फल पर विश्वास करने की आस्था बनाए रखने का रास्ता दिखलाया था ताकि निर्धन विद्रोही न बने, जबकि लोहिया मनुष्य को समता, स्वतंत्रता और भ्रातृत्व के लिए अधिकार पर जोर देते थे ओर अधिकार से कर्तव्य की ओर आते थे।

यदि हम इन तीनों महान् व्यक्तियों के दर्शन-विचारों पर गंभीरता से विचार करें तो लगेगा कि गाँधी और मार्क्स दोनों ही दो ध्रुव थे, जबकि लोहिया मध्यमवर्गीय थे। लोहिया की मौलिकता इस बात में है कि वे अधिक व्यवहारी बने रहे, हाड़-माँस के अधिक नजदीक रहे और मनुष्य के मन में बैठकर उसका अध्ययन करते रहे। हालाँकि विश्व-सरकार की उनकी कल्पना भी अतिवाद का मार्ग पकड़ती प्रतीत होती है। परंतु एक बात पर तीनों सहमत थे कि शोषण मिटे, इंसान को जीने का हक मिले, अन्याय तथा अत्याचार से समाज मुक्त हो और वह सहज व अबाध बहे, आनंद से भरा हो सबके लिए मंगल भाव से पूरित होकर और एक नए समाज का स्वर्ग धरती पर उतारने के लिए।

(अ) गाँधी का समाजवाद -

महात्मा गाँधी समाजवादी थे। उनका समाजवाद अपने किस्म का था। अगर मार्क्स के सिद्धान्तों का चश्मा लगाकर गाँधी को समाजवादी तौलने बैठेगें तो सम्भवतः गाँध ी समाजवादी घोषित न किये जायेंगे। गाँधी अपने को समाजवादी कहते थे। उन्होंने लुई फिशर से कहा था, "मैं उस समय से समाजवादी हूँ जब उन बहुत से व्यक्तियों का जन्म भी नहीं हुआ था जो आज अपने को समाजवादी घोषित कर रहे हैं। मेरा समाजवाद उस समय भी जीवित रहेगा जब उनका समाजवाद समाप्त हो गया होगा।"[1] गाँधी का समाजवाद भारतीय सिद्धान्तों पर आधारित है उनका हृदय और मस्तिष्क भारतीय था। वे भारतीय दृष्टिकोण से ही किसी समस्या का समाधान करने का प्रयत्न करते थे।

महात्मा गाँधी के समाजवाद का अर्थ है एक ऐसी नवीन सामाजिक व्यवस्था

---

1. डॉ. बी.एन. सिंह-**भारतीय सामाजिक चिंतन**, पृष्ठ 207.

जिसमें न्याय एवं समानता हो, व्यक्ति, व्यक्ति का शोषण न करे और प्रत्येक व्यक्ति को अपने व्यक्तित्व का विकास करने के लिए समान अवसर प्रदान किया जाय। उनका समाजवाद भाईचारे पर आधरित है। सहयोग, प्रेम और अहिंसा उनके मूलमंत्र हैं। वे भारतीय समाज के ढाँचे में अहिंसा द्वारा क्रांति लाना चाहते हैं। उनका अहिंसा का मंत्र केवल हिंसा तक की सीमित नहीं है, वरन किसी के प्रति बुरा सोचना भी हिंसा है। उनके सम्पूर्ण सिद्धान्त की यह मूल भावना दूसरे को दुःखी कैसे कर सकती है। वह एक ऐसे समाज की रचना करना चाहते थे जिसमें राजा और रंक बराबर हों। दोनों वर्गों को श्रम करना आवश्यक हो। दोनों की आवश्यकताओं की पूर्ति पर समानरूप से ध्यान दिया जाता है। वहाँ छोटे-बड़े का भेद नहीं, नाई और वकील दोनों ही समान हैं।

ऐसे समाज का दर्शन यह नहीं है कि 'प्रत्येक व्यक्ति अपने लिए है' वरन यह होता है कि प्रत्येक व्यक्ति सबके लिए होता है। गाँधी के समाजवाद का दर्शन इससे भी एक कदम आगे है-'सबके लिए जियो अपने लिये नहीं।' ऐसे समाज के उत्पादन पर व्यक्ति का अधिकार रह सकता किन्तु व्यक्तिगत लाभ की भावना नहीं। गाँधी पूँजीपति वर्ग को नष्ट नहीं करना चाहते थे, क्योंकि इस वर्ग की अपनी विशेषता है जो अन्य किसी वर्ग में नहीं है। पर उनका कहना था कि उन्हें हृदय परिवर्तन के द्वारा बदलना है। उनके मस्तिष्क में यह बात बिठानी है कि वे समस्त सम्पत्ति के स्वामी नहीं हैं, क्योंकि वह जनता के द्वारा कमाई गई है। अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करने के पश्चात जो धन बचता है, उसका उपयोग जनता के लिए करना चाहिए। वह उसके संरक्षक हैं, उपभोक्ता नहीं, गाँधी के समाज में कोई भी व्यक्ति विलासिता का जीवन व्यतीत करे इसके पूर्व उसे अनेक व्यक्तियों की आवश्यकताओं की पूर्ति करनी चाहिए।

समाजवाद का अर्थ है व्यक्तिगत स्वार्थों की समाप्ति। इसमें समाज के सम्पूर्ण व्यक्तियों का हित सर्वोपरि होता है गाँधी व्यक्तिगत सम्पत्ति को चोरी समझते थे। गाँधी का विचार था कि पूँजीपति शोषण नहीं करता वरन् पूँजीवादी व्यवस्था शोषण करती है। इस व्यवस्था को अहिंसा, हृदय परिवर्तन तथा सहयोग के द्वारा परिवर्तित किया जा सकता है। वह वर्ग संघर्ष के स्थान पर वर्ग सहयोग को बल देते थे। वह पूँजीपतियों से कहते थे कि

"तुम्हारे पास जो धन का भण्डार है वह तुम्हारा ही नहीं है वरन् उसमें जनता का भी भाग है। प्रत्येक वस्तु ईश्वर की है। उस पर व्यक्ति का अधिकार नहीं है सबै भूमि गोपाल की है जिसमें कहीं मेरी और तेरी की सीमायें नहीं हैं ये सीमायें आदमियों ने बनाई हुई हैं इसलिए वे इन्हें तोड़ भी फेंकते हैं।"[1] गोपाल का अर्थ ईश्वर से है। आधुनिक अर्थ में गोपाल यानि राज्य यानी जनता है। धनी व्यक्ति इस विचार से सहमत न हो तो श्रमिक का यह कर्तव्य है कि सत्याग्रह द्वारा उन्हें, उसका ज्ञान कराये। इसके लिए श्रमिक संगठन बनने चाहिए जिससे वे अपना हिस्सा प्राप्त कर सकें।

महात्मा गाँधी का समाजवाद इस बात का प्रयत्न करता है कि समाज में गरीब और अमीर के बीच की खाई समाप्त की जाय। इसके लिए वे श्रम को महत्व देते हैं। जो श्रम नहीं करेगा उसे भोजन प्राप्त नहीं होगा। इसी स्थान पर वे वर्ण-व्यवस्था से उत्पन्न खाई को समाप्त करना चाहते हैं। वे वर्ण-व्यवस्था में विश्वास करते हैं, किंतु जिस रूप में वर्ण व्यवस्था स्थापित है वह भारतीय संस्कृति के लिए कलंक और काला धब्बा है। वर्ण का अर्थ था परम्परात्मक कार्य करना, किन्तु इस भावना ने छोटे और बड़े की भावना को उत्पन्न किया। श्रम सेवा और वर्ण की योग्यता क्षमता की भावना से हट गई। शूद्र चूंकि निम्न कार्य करता है इसलिए वह निम्न है। वास्तविकता यह हैं कि वह दूसरों की सेवा हृदय से करता है। एक डाक्टर, नर्स, माँ जो गन्दे से गन्दा कार्य करती हैं उसे हम आदर देते और शूद्र से घृणा। यह न्यायोचित नहीं। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति को सर्वप्रथम शूद्र बनना है। वह समाज की इस गन्दगी का समानता, श्रम एवं सेवा की भावना से अन्त करना चाहते थे। गाँधी कहते है, "समाजवाद एक सुन्दर शब्द हैं और जहाँ तक मुझे मालूम है, समाजवाद में समाज के सब सदस्य बराबर होते हैं- न कोई नीचा होता है और न पैर के तलवे जमीन को छूने के कारण नीचे होते हैं। जैसे व्यक्ति के शरीर के सब अंग बराबर होते हैं, वैसे ही समाज रूपी शरीर के सारे अंग भी बराबर होते हैं। यही समाजवाद है।"[2]

महात्मा गाँधी के समाजवाद की स्थापना में बेसिक शिक्षा का सिद्धांत महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इस शिक्षा पद्धति द्वारा प्रत्येक व्यक्ति को अपनी अजीविका और अपना कार्य प्रारम्भ करने के योग्य बनाना चाहते है। प्रत्येक व्यक्ति स्वावलम्बी होगा तो कौन

1. महात्मा गांधी- **मेरा समाजवाद**, पृष्ठ 5.
2. वही, पृष्ठ 6.

किसका शोषण करेगा। श्रम की यह मूलभूत भावना व्यक्ति के अन्दर समानता की शिक्षा प्रदान करती है। हम यह कह सकते हैं कि गाँधी का समाजवाद भौतिक प्रगति, सुख पर आधारित न होकर व्यक्ति की समानता पर अधिक बल देता है। यह समानता भाईचारे, सहयोग, प्रेम, अहिंसा, समानावसर की है। उनका समाजवाद भारतीय शास्त्रों से प्रेरित है, हिंसात्मक कार्यों से नहीं।

महात्मा गाँधी का व्यक्तिगत समानता, स्वतंत्रता एवं सामाजिक न्याय के श्रेष्ठ आदर्शों में अटल विश्वास था। वे अस्तेय, अपरिग्रह, शरीरिक श्रम एवं संरक्षकता के सिद्धान्तों द्वारा समाज में आर्थिक विषमता के उन्मूलन राष्ट्रीय सम्पत्ति के समान वितरण और आर्थिक अवसरों की अधिकतम समानता पर बल देते थे। वे भूमि एंव पूँजी पर व्यक्तिगत स्वामित्व को प्राकृतिक नियमों के प्रतिकूल मानते थे और धनवानों द्वारा निर्धनों के शोषण का अन्त किये जाने के पक्ष में थे।

पूँजीवाद का अन्त करने के लिए गाँधी उतने ही इच्छुक थे, जितना बड़े से बड़ा समाजवादी हो सकता है। वे सामाजिक समानता के महान पोषक थे। उनकी अभिलाषा यही थी कि सब व्यक्तियों और सब व्यवसायों का समान रूप से आदर किया जाय। वे समाज के समस्त वर्गों का कल्याण चाहते थे और उनके प्रति किये जाने वाले सभी अन्यायों एवं अत्याचारों की समाप्ति के शक्तिशाली समर्थक थे। इसीलिए, उनको सच्चा समाजवादी माना जाता है।

यदि समाजवादी एक ऐसे व्यक्ति को कहा जाता है जो कि सामाजिक समानता और सामाजिक न्याय के आदर्शों में विश्वास करता है, भूमि तथा पूँजी पर व्यक्तिगत स्वामित्व को प्राकृतिक नियमों के विरूद्ध समझता है और अमीरों द्वारा गरीबों पर किये जा रहे सभी प्रकार के शोषण को समाप्त करने के लिये कटिबद्ध हैं, तो महात्मा गाँधी को एक सर्वश्रेष्ठ समाजवादी मानना होगा।

सम्पत्तिविहीन वर्ग के हितों की रक्षा के लिए वे जिस उत्साह से साथ आगे बढ़े

उसका कोई दूसरा उदाहरण नहीं है। आर्थिक समानता उनके रचनात्मकता का एक अंग थी और उनका विचार था कि आर्थिक समानता के ठोस आधार के बिना रचनात्मक कार्यक्रम बालू की दीवार के समान होगा। वास्तव में अपने तथाकथित समाजवादियों से कहीं अधिक सच्चे समाजवादी थे, क्योंकि उनका आचरण भी उनके सिद्धान्तों के ही अनुरूप था।

महात्मा गाँधी ने कहा था-"आर्थिक समानता का सच्चा अर्थ है जगत के सब मनुष्यों के पास एक समान सम्पत्ति का होना, यानी सबके पास इतनी सम्पत्ति होना, जिससे वे अपनी कुदरती आवश्यकताएँ पूरी कर सकें।"[1] महात्मा गाँधी का समाजवाद खोखला नारा नहीं था और वे स्वयं इसके लिए सावधान थे। इसीलिए बार-बार गाँधी जी ने स्वराज्य को रामराज्य के साथ जोड़ा, जहाँ तक दायित्व बोध था, वचन की मर्यादा थी त्याग की भावना थी, कहीं भी उन्होंने समाजवाद का मुलम्मा नहीं चढ़ाया।

महात्मा गाँधी के समानता संबंधी इस तर्कसंगत दृष्टिकोण के कारण समालोचक उन्हें एक सच्चा समाजवादी कहते हैं। वह चाहते थे कि प्रत्येक को खाने को भोजन पहनने को कपड़े मिलें। वह बड़ी गम्भीरता से अनुभव करते थे कि यदि लाखों लोग भूखे और नंगे रहे तो प्रजातंत्र और स्वतंत्रता मात्र विडम्बना ही रह जाएगी। अभाव से मुक्ति उनके आर्थिक सिद्धान्त का मुख्य मुद्दा था तथा उन्होंने लोगों को दरिद्रता की अपमानजनक स्थिति से उबारने का आजीवन प्रयत्न किया। 1922 में अपने प्रथम मुकदमें के अवसर पर उन्होंने कहा था, "नगर में रहने वालों को कदाचित ही उसका अनुभव है कि भारत के आधे भूखे भारतीय किस प्रकार धीरे-धीरे मृत्यु की ओर बढ़ रहे हैं। किसी भी प्रकार का वाक्छल और अंकों की भ्रामक जादूगरी उस तथ्य को छिपा नहीं सकती जिसे नरमुण्ड हमारी आँखों के सामने लाते हैं।"[2] वह सभी के लिए ऐसा चाहते थे कि उसका निर्वाह हो सके। अतः जीवन की मौलिक आवश्यकताओं के लिए आवश्यक वस्तुओं का उत्पादन वह सर्वसाधारण के नियंत्रण में देना चाहते थे। वह चाहते थे कि वह सभी को ऐसे ही सुलभ हों, जैसे परमात्मा द्वारा वायु और जल मिलते हैं या मिलने चाहिए। उन्हें यातायात का यान बनाकर दूसरों के शोषण के लिए प्रयोग में नहीं लाना चाहिए।

---

1. शंकरदयाल सिंह-**महात्मा गांधीः सत्य से सत्याग्रह तक,** पृष्ठ 161.
2. डॉ. विष्णु भगवान- **भारतीय राजनीतिक विचारक,** पृष्ठ 89.

गाँधीवादी समाजवाद जीवों की एकता की संकल्पना पर बल देता है। वहाँ व्यक्तियों को समान महत्व है और प्रत्येक की अपनी उन्नति प्रत्येक अन्य व्यक्ति पर निर्भर है। गाँधी का समाजवाद व्यक्ति की क्षमता का महत्त्व दर्शाता है। इस प्रकार इसका उद्देश्य व्यक्ति अथवा व्यक्तियों के समूह का हित है। गाँधी ने कहा था, ''मेरा समाजवाद प्रत्येक व्यक्ति का हित चिन्तक है। मैं अन्धों बहरों और गूंगों की राख पर खड़ा होकर उन्नति नहीं चाहता। मैं अपने व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति के लिए पूर्ण स्वतंत्रता चाहता हूँ। समाज के दूसरे प्रकारों के अधीन वैयक्तिक स्वाधीनता नाम की कोई वस्तु नहीं है वहाँ आप कुछ भी नहीं यहाँ तक कि आपका शरीर भी कुछ नहीं है।''[1]

गाँधीवादी समाजवाद पश्चिम में विकसित हुए समाजवाद के विभिन्न रूपों से बहुत अधिक भिन्न है। उनका प्रेरणा स्रोत कार्लमार्क्स या पश्चिम का अन्य कोई विचारक नहीं, वरन् भारतीय संस्कृति और उसका अहिंसा का सिद्धान्त ही है। समाजवाद उनके स्वभाव का एक अंग है और उनका विचार है कि केवल अहिंसावादी और शुद्ध हृदय वाले व्यक्ति ही सच्चे समाजवादी समाज की स्थापना कर सकते हैं। जहाँ पश्चिमी समाजवाद हिंसा और वर्ग संधर्ष में विश्वास करता है, विश्व में महात्मा गांधी एक ऐसे विचारक हुए हैं, जिन्होंने की मूल लक्ष्य समानता और समाजिक न्याय की प्राप्ति के लिए केवल सत्य और अहिंसापूर्ण साधनों को ही अपनाया है।

गाँधीवादी समाजवाद, समाजवाद के अन्य रूपों से इस दृष्टि से भी भिन्न है कि जहाँ पश्चिमी समाजवाद भौतिकवादी है, गाँधीवादी समाजवाद अध्यात्मवादी है। प्रचलित समाजवाद के अन्तर्गत प्रत्येक मूल्य पर भौतिक साधनों के अधिकाधिक विकास पर बल दिया गया है, जबकि गाँधीवादी समाजवाद भौतिक विकास की अपेक्षा नैतिक और आध्यात्मिक विकास के लिए अधिक प्रयत्नशील है।

ये दोनों व्यवस्थाएँ इस रूप में भिन्न हैं कि गाँधीवादी सामाजवाद प्रचलित समाजवाद की वर्ग संधर्ष की धारणा के विरूद्ध वर्ग सहयोग तथा वर्ग सामंजस्य के मार्ग में विश्वास करता है।

---

1. डॉ. विष्णु भगवान-**भारतीय राजनीतिक विचारक,** पृष्ठ 91.

कुछ विचारकों के द्वारा इस मत का प्रतिपादन किया गया है कि गाँधी वर्ग संघर्ष, पूँजीवादियों को समाप्त करने, बड़े पैमाने के उद्योग और उद्योगों पर राज्य के नियंत्रण का विरोध करते हैं, इस कारण गाँधीवादी विचारधारा को समाजवादी नहीं कहा जा सकता। किन्तु वास्तव में, इन विचारकों का दृष्टिकोण बहुत अधिक भ्रमपूर्ण है। समाजवाद का अर्थ वास्तव में वर्ग संघर्ष नहीं है। इसका वास्तविक अर्थ तो एक ऐसी नवीन सामाजिक व्यवस्था का निर्माण होना चाहिए, जिसका आधार सामाजिक न्याय और समानता हो, जिसमें एक मनुष्य दूसरे मनुष्य का शोषण न कर सके और जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का विकास करने हेतु पूर्ण स्वतंत्र हो। समाजवादी समाज तो एक ऐसा सहयोगी समाज होता है जिसके सभी सदस्य भ्रातत्व के सूत्र में बँधे होते हैं। इस दृष्टि से गाँधी निःसंदेह विश्व के एक महान समाजवादी हैं। उनका समाजवाद, समाजवाद के अन्य रूपों की तुलना में इस दृष्टि से अधिक महान् और उच्चतर है कि यह अहिंसात्मक और अर्थनीति पर धर्म की श्रेष्ठता का प्रतिपादन करता है। आज संघर्ष से पीड़ित मानवता को गाँधीवादी समाजवाद की ही आवश्यकता है।

(ब) मार्क्स का समाजवाद –

कार्लमार्क्स आधुनिक युग का ऐसा दार्शनिक है जिसने न केवल समाजवादी विचारधारा का प्रतिपादन किया है, अपितु सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था में परिवर्तन लाने के वैज्ञानिक नियमों की खोज भी की है। मार्क्स का अमर ग्रन्थ 'कैपीटल' तथा 'कम्युनिस्ट मैनिफेस्टो' समस्त समाजवादी विचारों की खान माने जाते हैं। मार्क्सवादी समाजवाद को प्रायः 'सर्वहारा समाजवाद' अथवा वैज्ञानिक समाजवाद के नाम से पुकारा जाता है। यह सच है कि मार्क्स के विचारों को एकदम मौलिक नहीं कहा जा सकता, अपितु मैक्सी के अनुसार, इससे हम उसे द्वितीय श्रेणी का दार्शनिक नहीं कह सकते और न ही इससे उसका महत्व ही कम हो जाता है। मार्क्स के पूर्व अनेक अंग्रेज तथा फ्रेन्च विचारक हुए जिनके द्वारा समाजवादी विचार व्यक्त किये जा चुके थे। इनमें मुख्य थे – राबर्ट ओवेन, सेण्ट साइमन, प्रूदों, चार्ल्स फूरियर, लुई दलां आदि। राबर्ट ओवेन का विचार था कि नयी औद्योगिक व्यवस्था। प्रतिस्पर्द्धात्मक होने के बजाय सहयोगात्मक होनी चाहिए। सेण्ट साइमन वर्ग संघर्ष सिद्धान्त

का समर्थक था। प्रूदों ने यह प्रतिपादित किया कि सारी सम्पत्ति चोरी है। कार्लमार्क्स ने इन सब विचारकों को काल्पनिक समाजवादी कहकर पुकारा है। वस्तुतः ये विचारक आर्थिक विषमता के स्थान पर समाज में धन के न्यायोचित वितरण पर बल देते, किन्तु इन्होंने यह नहीं बताया था कि यह विषमता किन कारणों से उत्पन्न होती है और उसका उत्पादन की विधियों के साथ क्या सम्बन्ध है? उन्होंने समाज की प्रगति और विकास के नियमों को समझने का प्रयत्न नहीं किया था। समाज में परिवर्तन का तरीका क्या है और उसका प्रयोग कर समाजवादी व्यवस्था को कैसे स्थापित किया जाता है आदि प्रश्नों का उत्तर स्वप्नलोकीय समाजवादियों ने नहीं खोजा। वेपर ने इस सम्बन्ध में ठीक ही लिखा है कि ''उन्होंने सुन्दर गुलाबों के सपने तो अवश्य देखें, किन्तु गुलाब के पौधे उगाने के लिए जमीन तैयार नहीं की।''[1]

ऐसे स्वप्नलोकीय (यूरोपियन) समाजवाद को वास्तविकता के धरातल पर उतारने का महान कार्य कार्लमार्क्स ने किया। उसके हाथों समाजवाद काल्पनिक आदर्श से व्यावहारिक आदर्श बन गया। मार्क्स ने एक वैज्ञानिक की तरह ऐतिहासिक तथ्यों का विश्लेषण किया और सामाजिक प्रगति के लिए उत्तरदायी तत्वों को खोज निकाला। उसने पूँजीवाद के दोषों का वर्णन करने के साथ-साथ पूँजीवाद का अन्त कर वर्ग विहीन समाज की स्थापना करने के लिए एक विधिवत प्रक्रिया का निरूपण भी किया। 'दास कैपीटल के पहले खण्ड के अध्याय 32 में जिसका शीर्षक हैः 'पूँजीवादी संचय की ऐतिहासिक प्रवृति' मार्क्स ने वे निष्कर्ष सूत्रबद्ध किए हैं जिन पर वह पूँजीवादी समाज के विकास के आर्थिक नियम की खोज के फलस्वरूप पहुँचे थे। अकाट्य तर्क देते हुए मार्क्स ने यह प्रमाणित किया कि पूँजीवाद स्वयं अपने विकास की प्रक्रिया में समाजवाद के लिए भौतिक पूर्वाधार बनाता है और उस सामाजिक शक्ति को जन्म देता है जो पूँजीवाद को दफन करेगी और अधिक प्रगतिशील समाजवादी उत्पादन पद्धति का सृजन करेगी। इस प्रकार समाजवाद को उसकी भावुक तथा काल्पनिक पृष्ठभूमि से निकालकर उसे वैज्ञानिक रूप प्रदान किया। केवल इतना ही नहीं वरन् समाजवादी व्यवस्था की स्थापना के उद्देश्य से उसके द्वारा 'विश्व के मजदूरों एक हो जाओं' इन शब्दों में श्रमिक वर्ग का क्रान्ति के लिए आवाह्न किया गया और इस दृष्टि से 1864 में 'प्रथम अर्न्तराष्ट्रीय' श्रमिक मंच की स्थापना एक महत्वपूर्ण कदम था। उसने

1. डॉ. बी.एल. फड़िया-**पाश्चात्य राजनीतिक चिंतन का इतिहास,** पृष्ठ 621.

सर्वहारा वर्ग को तर्क संगत सिद्धान्त देकर महान शक्ति और गति प्रदान की। जोड़ के शब्दों में, "मार्क्स प्रथम समाजवादी लेखक है जिसके कार्य को वैज्ञानिक कहा जा सकता है उसने अपने वांछित समाज का चित्रण ही नहीं किया हैं, वरन उन परिस्थितियों का विस्तृत वर्णन भी किया है जिसके माध्यम से इस लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है।"[1] प्रो. लास्की के शब्दों में "मार्क्स ने साम्यवाद को अस्त-व्यस्त रूप में पाया तथा उसे एक नया आंदोलन बना दिया। उसके द्वारा उसे एक दर्शन मिला और एक दिशा मिली।"[2]

मार्क्स का विश्वास था कि पूँजीवादी व्यवस्था के अन्तर्गत श्रमिक वर्ग का शोषण इस सीमा तक पहुँच गया है कि वैज्ञानिक तरीके से समाप्त नहीं किया जा सकता क्योंकि राज्य सत्ता पर पूँजीपतियों का ही प्रभाव हैं। स्वयं पूँजीवाद नें अपने विनाश का मार्ग प्रशस्त कर लिया है और शोषित वर्ग की चेतना इतनी बढ़ चुकी है कि वह अब संगठित होकर अपने शोषितों के विरूद्ध क्रांति करके उन्हें नष्ट कर देगा। सी.एल. वेपर के अनुसार - "मार्क्सवाद की उड़ान निश्चय ही विकासवाद की ओर है उत्पादन शक्तियाँ प्रत्येक समाज में पूर्णतया तभी तक विकसित होती हैं, जब तक कि वहाँ कोई परिवर्तन न आये। यह परिवर्तन उसी प्रकार आकस्मिक होगा जिस प्रकार पानी का वाष्प में परिवर्तन हो जाना। इस आकस्मिक क्रांतिकारी परिवर्तन में सम्पूर्ण समाज का रूप परिवर्तित हो जायेगा और एक नवीन समाज का निर्माण होगा।"[3]

मार्क्स का मत है कि क्रांति के पश्चात् राज्य की सत्ता पर विजयी सर्वहारा वर्ग का अधिनायकवादी शासन कायम रहेगा। क्रांति के पूर्व बुर्जुआ वर्ग का अधिनायकवाद था, उसके बाद सर्वहारा वर्ग का अधिनायकवाद होगा। सर्वहारा वर्ग के हाथ में ही पूर्णतया स्वामित्व तथा नियंत्रण उत्पादन के समस्त साधनों पर रहेगा।

मार्क्स ने पूँजीवाद के अंत हो जाने पर जिस समाजवादी व्यवस्था की कल्पना की है, वह साम्यवादी समाज है। वह समाज वर्ग विहीन तथा राज्य विहीन होगा। इसमें समस्त व्यक्तियों को समान समझा जायेगा। इसमें मानवों को साध्य समझा जायेगा। न कि किसी वर्ग विशेष के हित का साधन। सी.एल.वेपर के अनुसार "उसका विश्वास था कि भविष्य में एक

---

1. डॉ. बी.एल. फड़िया-**पाश्चात्य राजनीतिक चिंतन का इतिहास,** पृष्ठ 621-22.
2. वही, 62.
3. सी.एल. बेपर-**राज्य दर्शन का स्वाध्ययन,** पृष्ठ 212.

वर्गविहीन समाज की स्थापना होगी क्योंकि वर्गों के आपसी संघर्ष के परिणामस्वरूप क्रांति में पूर्ण वर्ग समाज नष्ट हो जायेगा क्योंकि वर्गों का विनाश कभी नहीं हुआ है अतः वर्ग विहीन समाज की कल्पना एक आशा रहित है।"[1]

मार्क्स मानता है कि साम्यवादी समाज में सभी मानवों को पूर्ण स्वतंत्रता होगी। मनुष्यों को वेविध्य पूर्ण विकास का अवसर प्राप्त होगा। वह समाज से शोषण का अंत करना चाहता था। अमर बहादुर अमरेश के अनुसार- "मार्क्स के आर्थिक सिद्धान्तों का आधार मजदूरों के वर्ग संघर्ष के रूप में संसार के शोषितों का आर्थिक इतिहास है। उन्होंने प्रमाणित कर दिया है कि पूँजीवादी अर्थव्यवस्था का जब तक सर्वनाश नहीं हो जाता और समाजवादी समाज की स्थापना नहीं हो जाती, वर्ग मिट नहीं सकता। एक का सर्वनाश और दूसरे की प्रतिष्ठा अवश्यम्भावी है।"[2]

मार्क्स व्यक्तिगत सम्पत्ति को अपनी सामाजिक व्यवस्था में स्थान नहीं देता है। वह पूँजीवादी व्यवस्था की समस्त बुराइयों को अपने साम्यवादी समाज से दूर करना चाहता है। गोपीनाथ दीक्षित के अनुसार, "आज कम्युनिस्ट देशों में जैसी तानाशाही पाई जाती है वैसे ही कम्युनिस्ट तानाशाही सारे विश्व में स्थापित करना मार्क्सवाद का व्यवहारिक लक्ष्य था ताकि औद्योगिक उन्नति के लिए समस्त मौलिक साधनों का और मानव बुद्धि का उपयोग किया जा सके। ईश्वर धर्म और वे कार्य और विचार जिन्हें दार्शनिकों और संतों ने आध्यात्मिक माना था, मार्क्सवादी दर्शन में कोई स्थान नहीं रखते।"[3]

मार्क्सवाद 'वैज्ञानिक समाजवाद' -

कार्लमार्क्स को वैज्ञानिक समाजवाद का प्रवर्तक माना जाता है। मार्क्स के पूर्ववर्ती विचारकों ने नवयुग के सपने लिए थे, किन्तु मार्क्स ने उन सपनों को साकार बनाने के लिए प्रयास किया। मार्क्स ने अपने विचारों को 'वैज्ञानिक समाजवाद' बतलाया। उसने अपने विचारों को वैज्ञानिक इसलिए कहा है कि उसने एक वैज्ञानिक की भाँति समाज के स्वरूप एवं विकास के नियमों की खोज करने का प्रयत्न किया था। उसने यह पता लगाया कि समाज में परिवर्तन क्यों होते हैं, भविष्य में ये परिवर्तन किस प्रकार तथा किस दिशा में होंगे वह

---

1. सी.एल. वेपर-**राज्य दर्शन का स्वाध्ययन**, पृष्ठ 221.
2. अमर बहादुर अमरेश-**हमारा समाजवाद**, पृष्ठ 28.
3. गोपीनाथ दीक्षित-**गांधी जी की चुनौती कम्युनिज्म**, पृष्ठ 22.

इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि मानव समाज में परिवर्तन अकस्मात् नहीं होते हैं, अपितु कुछ विशिष्ट नियमों के अनुसार होते हैं।

'मार्क्स द्वारा प्रतिपादित समाजवाद को एक दूसरे नाम 'क्रांतिकारी समाजवाद' से भी जाना जाता है।'[1] इसका कारण यह है कि यद्यपि मार्क्स विश्व के कुछ देशों में पूँजीवाद के स्थान पर समाजवाद की स्थापना के लिए प्रजातंन्त्रात्मक पद्धति की ओर देखता है लेकिन उसकी सामान्य विचारधारा यही है कि पूँजीवाद के अन्त और समाजवाद की स्थापना के लिए क्रान्ति का मार्ग अपनाना आवश्यक है।

मार्क्स का समाजवाद इतिहास में गूढ़ अध्ययन पर आधारित है। मार्क्स उन इतिहासकारों से बिल्कुल सहमत नहीं है, जिन्होंने इतिहास को कुछ महान् व्यक्तियों के कार्यों का परिणाम मात्र समझा है। इतिहास के विकास को समझने के लिए उसके द्वारा हीगल की द्वन्द्वात्मक पद्धति को अपनाया गया है और उसका विश्वास है कि आर्थिक शक्तियों के आधार पर इतिहास का अनवरत विकास हुआ है। मार्क्स प्रथम व्यावहारिक दार्शनिक है जिसने इस बात पर अत्यधिक बल दिया है कि ऐतिहासिक घटनाओं पर आर्थिक परिस्थितियाँ अपना गहरा प्रभाव डालती हैं।

लेन लंकास्टर के अनुसार, ''मार्क्सवाद के वैज्ञानिक समाजवाद होने के दो प्रमुख आधार हैं। प्रथम यह वास्तविकता पर आधारित है न कि कल्पना पर। द्वितीय यह पुरानी व्यवस्था को ही वैज्ञानिक तरीके से नहीं समझता वरन् नयी व्यवस्था प्राप्त करने के लिए भी वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाता है।''[2]

प्रसिद्ध इतिहासकार टेलर का मत है कि, ''मार्क्सवाद में सामाजिक परिवर्तन करने वाली शक्तियों की जो व्याख्या है, वह उसे वैज्ञानिकता प्रदान करती है। इसके अलावा इन परिवर्तन करने वाली शक्तियों की व्याख्या 'मानव मनोविज्ञान' पर आधारित है।''[3]

---

1. विश्वासचन्द्र श्रीवास्तव, जितेन्द्र सिंह-**समाजवाद : संकल्प और संघर्ष,** पृष्ठ 19.
2. L.W. Lancaster- **Master of political thought**, vol, 111, p - 163
3. Manidsto of the cammunist party- indroduction by A.J.P Taylor, p- 10 - 11.

मार्क्स की समाजवादी व्यवस्था–

पूँजीवादी व्यवस्था में पाये जाने वाले अर्न्तद्वन्द्व के परिणामस्वरूप जिस समाजवादी व्यवस्था का आगमन होने की बात मार्क्स ने कही है, उसके विषय में उसने विस्तार से कुछ नहीं लिखा है। मार्क्स के अनुयायियों का इस संबंध में कहना यह है कि मार्क्स स्वप्नदर्शी न होकर एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण का व्यक्ति था। यही कारण है कि आगे की समाज व्यवस्था के विषय में उसने यूरोपियाई (काल्पनिक) ढ़ंग से लिखना उचित नहीं समझा है। मार्क्स का मत था कि समाज का विकास कुछ निश्चित वस्तुगत नियमों के अनुसार होता है, उसे कल्पनाओं व सद्भावनाओं के आधार पर ही नहीं बनाया जा सकता। अतः उसका विचार था कि पूँजीवादी व्यवस्था के बाद जिस किसी व्यवस्था का उदय होगा वह पहले से विद्यमान परिस्थितियों में से ही होना है, उसके विषय में केवल कल्पना के आधार पर ही नहीं सोचा जा सकता। फिर भी पूँजीवादी व्यवस्था के बाद जिस समाजवादी व्यवस्था के आने की बात मार्क्स ने कही है तथा उसके विषय में जो कुछ उसने कहा है, उसके आधार पर यह कहा जा सकता है उसकी निम्नलिखित विशेषतायें होंगी :-

1. उत्पादन के साधनों का सामाजिक स्वामित्व– उत्पादन के सब साधनों का स्वामित्व सामाजिक होगा। कारखाने, खानें, मशीनें, जहाज, रेलें आदि सब साधन समाज की सम्पत्ति होंगे तथा उनका प्रयोग किसी व्यक्ति अथवा वर्ग विशेष के लाभ के लिए न होकर सम्पूर्ण समाज के लाभ के लिए किया जायेगा।

2. नियोजित उत्पादन –उत्पादन नियोजित ढंग से किया जायेगा, जिससे उत्पादन के साधनों पर मानव–श्रम का उपयोग किसी निश्चित योजना के अनुसार किया जा सकें। इस ढंग से समाज की ओर से उत्पादन किये जाने का लाभकारी परिणाम यह भी होगा कि आर्थिक जीवन से प्रतियोगिता तथा उससे उत्पन्न अपव्यय की समाप्ति हो जायेगी।

3. योग्तानुसार काम और काम के अनुसार वेतन के आधार पर वितरण– वितरण समाजवादी व्यवस्था में 'प्रत्येक से उसकी योग्यतानुसार काम और प्रत्येक को उसके काम के अनुसार वेतन' के आधार पर होगा। समाजवादी व्यवस्था के विषय में सामान्यतः यह धारणा प्रचलित है कि उसका आदर्श वस्तुओं का सब में समान वितरण करना है। पर इस

सम्बन्ध में मार्क्स का मत है कि समाजवाद का मन्तव्य यह नहीं है। मार्क्स का कहना था कि समाजवादी ढाँचा पूर्णतया नयी नीवं पर खड़ा नहीं किया जा सकता। उसका ढाँचा उन्हीं परिस्थितियों पर खड़ा किया जा सकता है, जो पूँजीवाद से विरासत के रूप में मिलती हैं। पूँजीवादी व्यवस्था में वितरण की जो व्यवस्था चलती है, उसके परिणामस्वरूप कुछ लोगों को अत्यधिक या कुछ को अत्यन्त कम मिलता है। अतः ऐसी स्थिति में यदि वितरण का आधार समानता को मानकर चला जाएगा, तो वह न्याय नहीं होगा। मार्क्स के ही शब्दों में पूँजीवाद द्वारा छोड़ी हुई असमान परिस्थितियों के आधार पर समानता की स्थापना करना न्याय नहीं अन्याय है। अतः समाजवाद में अधिकार समान नहीं असमान होने चाहिए। न्याय समाज की आर्थिक परिस्थितियों तथा उनसे निर्धारित सामाजिक व सांस्कृतिक विकास की स्थिति से ऊँचा नहीं उठ सकता। इसलिए मार्क्स का प्रतिपादन है कि समाजवाद में वितरण की व्यवस्था का आधार ''प्रत्येक से उसकी योग्यतानुसार काम तथा प्रत्येक को उसके काम के अनुसार वेतन''[1] होगा। समाजवादी व्यवस्था में इस प्रकार वस्तुओं का वितरण समान न होकर औचित्यपूर्ण होगा फिर भी उसमें शोषण समाप्त हो जायेगा क्योंकि कोई व्यक्ति या वर्ग बिना काम कियें दूसरों के द्वारा की गई कमाई को हड़प कर आराम का जीवन नहीं बिता सकेगा तथा प्रत्येक व्यक्ति को अपने जीवन-निर्वाह के लिए काम करना पड़ेगा।

4. राज्य शक्ति का सर्वहारा का अधिनायकीय अधिकार– समाजवादी व्यवस्था में राज्य का रूप भी समाजवादी होगा तथा उसकी सब संस्थायें, कानून, न्याय आदि समाजवादी व्यवस्था के हित में कार्य कर सकें इसके लिए उसका रूप सर्वहारा के अधिनायकतंत्र का होगा तथा राज्य की शक्ति का सर्वहारा वर्ग का अधिनायकीय अधिकार होगा

(स) डॉ. लोहिया का समाजवादी चिन्तन :

विश्व साहित्य में समाजवाद ही एक ऐसा शब्द हैं जिसके सर्वाधिक अर्थ लगाए गए हैं। डॉ. लोहिया ने विदेश प्रवास के दौरान मार्क्स का गहन अध्ययन किया था। विश्व के समाजवादी नेताओं के सम्पर्क में आने के कारण समाजवादी परिस्थितियों का गहन निरीक्षण किया। उस समय संसार में अनेक समाजवादी विचारधाराएँ प्रचलित थी। हालांकि प्रत्येक का लक्ष्य सामान्य जनता को आवश्यक आवश्यकताओं की पूर्ति करना था, परंतु लक्ष्य

---

1. Marx, Engels- **Selected work**, vol II, p. 23

एक था, साधनों में भिन्नता थी। डॉ. लोहिया ने भारतीय परिवेश के अन्तर्गत समाजवाद को विकसित किया।

समता डॉ. लोहिया के समाजवाद का दर्शन है। डॉ. लोहिया के अनुसार "समाजवादी का मतलब होता है, जो निजी सम्पत्ति को बढ़ाने के बजाय सामूहिक लक्ष्य की सम्पत्ति को बढ़ाने की बात सोचे और करें।"[1] लोहिया के अनुसार अधिकाधिक सम्पत्ति का राष्ट्रीयकरण हो, लेकिन साथ में उसमें वृद्धि हों। कुछ लोगों का कहना है कि लोहिया ने समाजवाद को मार्क्सवाद के संशोधन के रूप में भारतीय परिस्थितियों के लिए प्रस्तुत किया है। परन्तु सत्य यह है कि लोहिया का समाजवाद मार्क्सवाद का परिणित नहीं हो सकता, बल्कि वह अपने में नया मौलिक व निराला सिद्धान्त है।

डॉ. लोहिया ने कहा था कि "समाजवाद, पूँजीवाद और कम्युनिज्म के बीच एक मध्यम मार्ग नहीं है यह तो भारत के नए समाज, स्वतंत्र मानवों के समाज का एकमात्र पथ है तूफान के बीच एक पथ को पुष्ट तथा प्रशंसा करना इतिहास की माँग को पूरा करता है।"[2] लोहिया के अनुसार- साम्यवाद व पूँजीवाद दोनों में ही बेरोजगारी है एक में प्रकट है और दूसरे में अर्धबेरोजगारी के रूप में छिपी है। इसे दूर करने के लिए समायुक्तिकरण और स्वामित्व की संघरूपी पद्धति सोचना पड़ेगी। बिजली या तेल से चलने वाले लघु इकाई मशीन इसका उत्तर है। ऐसी मशीनें थोड़ी ही हैं, अधिक का अविष्कार करना पड़ेगा केवल राज्य द्वारा केन्द्र पर आधारित स्वामित्व और उसके साथ वृहद उत्पादन जीवन और स्वतंत्रता दोनों के लिए विनाशक है। उपर्युक्त प्रकार की सम्पत्ति गाँव, जिला, प्रदेश और केन्द्र के स्वामित्व की होनी चाहिए। लोहिया के शब्दों में- "समाजवाद को सीमित पूँजीवाद और मिश्रित अर्थव्यवस्था के सारे सिद्धान्तों को निश्चित रूप से अस्वीकार कर देना चाहिए। साम्यवाद विश्व के दो-तिहाई भाग को न तो जीवन दे सकता है और न स्वतंत्रता। व्यक्तिगत सम्पत्ति समाप्त हो जाना चाहिए, केवल इसी को छोड़कर जिसके लिए एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति की नियुक्ति का अवसर नहीं आता।"[3]

कम्युनिज्म पर भी लोहिया ने ऐसा ही मूलग्राही प्रहार किया, "कम्युनिज्म भी इस

---

1. डॉ. राममनोहर लोहिया- **क्रांतिकरण**, पृष्ठ 35.
2. जनवाणी (पत्रिका)- अप्रैल 1949, पृष्ठ 298.
3. डॉ. राममनोहर लोहिया-**मार्क्स, गांधी एण्ड सोशलिज्म**, पृष्ठ 226.

दो तिहाई दुनिया की दृष्टि से निकम्मा है। जनसंख्या की बहुतायत और उत्पादन-साधनों की कमी जहाँ मौजूद है, ऐसे देशों के सवाल कम्युनिज्म नहीं हल कर सकता। उसका भी उत्पादन-तंत्र पूँजीवाद के समान ही है।"[1]

डॉ. लोहिया ने कहा कि वास्तव में पश्चिमी पूँजीवाद और कम्युनिज्म एक ही सभ्यता के दो अंग है। केन्द्रित उत्पादन-व्यवस्था और निरन्तर बढ़ने वाला जीवन-मान, ये इन दोनों की ही मौलिक विशेषताएँ हैं। आज तक पश्चिमी पद्धति के आधुनिक यन्त्रीकरण पर आधारित अर्थ-व्यवस्था समाजवादियों को अभिप्रेत थी। हिन्दुस्तान के पिछड़े हुए अर्थोत्पादन-साधन और बहुत अधिक जनसंख्या का सोच-विचार करके अपना आर्थिक उदि्ष्ट निश्चित करने का प्रयत्न आज तक समाजवादियों ने नहीं किया था। पूँजीवादी अर्थव्यवस्था का विरोध करने पर भी समाजवादियों को अमरीका और अन्य पूँजीवादी देशों के प्रचंड उद्योगीकरण के प्रति आकर्षण था। पूँजीवादी व्यवस्था को दूर करके सोवियत रूस की नकल पर उद्योगिकरण में उनका विश्वास था।

डॉ. लोहिया मानते थे कि विश्व के दो-तिहाई भाग से पूँजीवाद और सामंतवाद समाप्त करना है। पूँजीवाद शरीर और आत्मा दोनों का दरिद्रीकरण है। यह इस जनसंख्या को पूर्ण भोजन नहीं दे सकता और उसे निरन्तर न्यून पोषण की व्यवस्था करना पड़ती है। ये केवल लाभ उत्पन्न कर सकता है और अविकसित अर्थव्यवस्था में लाभ के लिए कोई क्षेत्र नहीं है, उत्तरोत्तर मनुष्य के स्तर को गिरा रहा है और मनुष्य को आधा मनुष्य और अच्छा घोड़ा बना रहा है, फुटकर व्यापार बहुगणित हो रहा है और कारखाने नष्ट हो रहे हैं। विकसित क्षेत्रों में ईमानदारी एक अच्छी नीति हो, पर भारत और ऐसे क्षेत्रों में एक ईमानदारी की जीविका कमाने की असम्भाव्यता को सिद्ध करते है। प्रत्येक वस्तु पर विनाश और मृत्यु की गंध जमी हुई है। विनाश शरीर और आर्थिक लक्ष्यों का और मृत्यु आत्मा और सामान्य लक्ष्यों की, ऐसे पूँजीवाद का अब सुधार और संशोधन नहीं किया जा सकता। इसका उन्मूलन करना होगा और उसके लिए अब होने का अधिक समय नहीं रहा है।

डॉ. लोहिया के अनुसार- "समाजवाद को अपने संघर्ष और संगठन को ऐसे रूप

1. इन्दुमति केलकर-**लोहिया सिद्धांत और कर्म**, पृष्ठ 257.

में निर्मित करना पड़ेगा जो पूँजीवाद के दोनों पक्षों का विनाश करे। वह पूँजीवाद को सम्पूर्ण रूप से समाप्त करे। मनुष्य आज ऐसे सिद्धान्तों का शिकार बन गया है जो दूर की सफलता का लक्ष्य रखते हैं जिससे कठोर कार्यों की श्रृंखला बढ़ती जाय और हितकारी कार्य की अन्तिम कड़ी कभी न आवे। समाजवादी के वर्ग संघर्ष के अच्छे कार्य का तत्कालीन परीक्षण तभी होगा जब वह पूँजीवाद को समाप्त करने के लिए पर्याप्त जनशक्ति उत्पन्न करेगा।''[1]

डॉ. लोहिया का विचार था कि समाजवाद को निजी सिद्धान्तों की बुनियाद निश्चित करनी चाहिए। उन्होंने उनके निरूपण का भी प्रयत्न किया। इसी सिलसिले में इशारा किया कि काँग्रेसवाद, नेहरूवाद, साम्यवाद और पूँजीवाद आज की दुनिया के सवाल हल नहीं कर सकेंगे। समाजवादी ही ये सवाल हल कर सकता है। उन्होंने कहा- ''जिस पथ पर समाजवादी दल जा रहा है, वह ऐसा है कि आप सबकों उस पर आने का प्रयत्न करना चाहिए। हम पथिकों को मत देखों, हम तो वहाँ हैं जो बाकी और किसी दल के लोग हैं। हम में अन्तर नहीं, हम सब भारतवासी है लेकिन पथ अलग हैं और पथ है सम्भव बराबरी का, यह पथ है मातृभाषा का, यह पथ है पिछड़े समूह और गरीब इलाकों के लिए विशेष अवसर का, यह पथ है शांति व्यवस्था।''[2]

समाजवादियों का उन्होंने आवाह्न किया कि बराबरी, समाजवाद, जनतंत्र आदि उसूलों के लिए जनता में भूख पैदा करके नाउम्मीदी के काले बादलों को हटा कर, उनमें साहस की प्रेरणा और नवनिर्मिति की स्फूर्ति पैदा करनी होगी।

मई 1952, के पंचमढ़ी अधिवेशन के अपने अध्यक्षीय भाषण में डॉ. लोहिया ने इस बात की जोरदार अपील की कि भारतीय समाजवाद को अपनी निजी आधार रेखाओं पर विकसित होना चाहिए। लोहिया ने भारतीय समाजवादियों द्वारा ''उधार की विचारधारा'' पर जीवित रहने की प्रवृत्ति की आलोचना करते हुए कहाः 'उधार तथा कर्ज लेकर जिन्दा रहने की आदत छोड़नी चाहिए, आज तक बहुत सी उधारी की गयी है। साम्यवाद से आर्थिक लक्ष्य और पूँजीवाद से सामान्य लक्ष्य-उदारवाद जैसे सर्वसाधारण लक्ष्य लेने के कारण समाजवाद में तीव्र फूट पैदा हो गयी है। समाजवाद के लिए अब बुनियादी खोज करके निजी स्वतंत्र

---

1. डॉ. राममनोहर लोहिया-**मार्क्स, गांधी एण्ड सोशल्जिम,** पृष्ठ 331.
2. डॉ. राममनोहर लोहिया-**समदृष्टि,** पृष्ठ 1-2.

विचारधारा का निर्माण करना जरूरी है। लोहिया ने स्वीकार किया कि आज का आशादीप समाजवाद ही है। किन्तु परम्परागत समाजवाद, यूरोपीय समाजवाद विचारधारा के स्तर पर कई बौद्धिक दुर्बलताओं से ग्रस्त है। लोहिया ने यूरोपीय समाजवाद की निम्न कमियों की ओर दृष्टिपात किया है-

(1) यूरोपीय समाजवाद का परिप्रेक्ष्य अन्तर्राष्ट्रीय न होकर संकुचित राष्ट्रीय सीमाओं से बंधा हुआ है, वह केवलमात्र अपने राष्ट्र के लोगों के स्तर को उठाने तथा उनकी सामाजिक सुरक्षा के आदर्श तक ही सीमित है। तभी यूरोपीय समाजवादी देशों की सरकारों की मुख्य चिन्ता का विषय यह रहा है कि किस प्रकार उनकी स्वयं की जनता के रहन-सहन के स्तर को ऊँचा किया जाये तथा सामाजिक सुरक्षा प्रदान की जाये। उन सभी का दृष्टिकोण राष्ट्रीय रहा अर्थात् यूरोपीय समाजवाद में विश्वदृष्टि का अभाव डॉ. लोहिया के शब्दों में - यूरोपीय समाजवाद अपने स्वंय के राष्ट्र की आवश्यकताओं तथा क्षणिक समस्याओं से जुड़ा हुआ है। अतः उसमें पूर्णमत यो विश्वदृष्टिकोण का अभाव पाया जाता है।''[1] यूरोपीय समाजवादियों का दृष्टिकोण संकीर्ण होने के कारण उनका प्रत्येक निर्णय अपनी राष्ट्रीय जरूरतों से ही जुड़ा रहा तथा तीसरे विश्व की प्रमुख समस्याओं तथा इन देशों में व्याप्त गरीबी, असमानता, बेरोजगारी आदि प्रमुख मुद्दों के प्रति जो कि समाजवादी व्यवस्था के सामने मुँह बाए खड़े हैं, उपेक्षा का दृष्टिकोण अपनाया। यूरोपीय समाजवाद विश्व के एक सीमित क्षेत्र में समानता तथा समृद्धि के लिए प्रयत्नशील रहा, वहीं विश्व के अन्य भाग पिछड़ेपन की गिरफ्त में फँसे रहे। यूरोपीय समाजवाद की इस प्रवृत्ति के तीन भयंकर परिणाम सामने आये।

प्रथम, विश्व में एक सामाजिक तथा आर्थिक असन्तुलन कायम हो गया फलतः पश्चिमी यूरोप तथा एशिया के मध्य ऐसी खायी पैदा हो गयी जिसे कभी पाटा नहीं जा सकता। डॉ. लोहिया के अनुसार, ''यूरोप में समाजवाद की गति क्रमिक, स्वरूप संवैधानिक तथा उद्देश्य वितरणात्मक रहा, जबकि विश्व के अन्य भागों में यह तीव्र असंवैधानिक रहा, जहाँ उत्पादन पर जोर दिया जाता है।''[2] यूरोप में औद्योगीकरण, उत्पादन, वितरण आदि की समस्या एक-एक कर क्रमिक रूप से आयी तथा क्रमिक रूप से ही उनका समाधान कर लिया गया।

---

1. डॉ. राममनोहर लोहिया-**फर्गमेंट आव ए वर्ल्ड माइन्ड, मेटयारानी,** पृष्ठ 11.
· डॉ. राममनोहर लोहिया-**मार्क्स, गांधी एण्ड सोशल्जिम,** पृष्ठ 477.

जबकि दूसरी तरफ एशिया में ये सब समस्यायें एक साथ आयी, अतः यहाँ की व्यवस्थाओं पर दबाब पड़ना स्वाभाविक हो गया। इसलिए यहाँ समाजवाद का वही रूप नहीं हो सकता, जो यूरोप में रहा। यूरोप की उन्नति के स्तर पर पहुँच गया कि वहाँ उसकी समस्या उत्पादन की न होकर वितरण की रही, दूसरी ओर विकास के रास्ते में एशिया बहुत पीछे है। एशिया की माँग है कि स्थानीय समस्याओं को हल करने हेतु उत्पादन बढ़ाया जाये। हालाँकि लोहिया ने माना कि यूरोप के समाजवाद का वैधानिक स्वरूप सराहनीय आदर्श है, किन्तु तत्काल उद्देश्य प्राप्ति हेतु समाजवाद की गति को तीव्र करना होगा।

द्वितीय, किसी भी पिछड़े देश के समाजवादी आन्दोलन को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर किसी अन्य देश का समर्थन नहीं मिला। अतः यूरोप से बाहर प्रत्येक देश में समाजवादी आंदोलन की गति बहुत धीमी रही। लोहिया का मानना हैं कि आज यूरोपीय समाजवादी देश अन्तर्राष्ट्रीय समाजवादी आंदोलन के लिए परेशान नहीं है। "कोमिस्को" जैसा अन्तर्राष्ट्रीय समाजवादी संगठन भी केवलमात्र पोस्ट ऑफिस बनकर रह गया है।

तृतीय, युद्ध और शान्ति भंग करने वालों के खिलाफ कोई प्रभावशाली नियन्त्रणक नहीं रहा। प्रत्येक देश अलगाववादी स्थिति में रह गया तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर संयुक्त रूप से इनके विरूद्ध प्रयास नहीं किया गया।

(2) यूरोपीय समाजवाद में अनुदारवादी तत्व काफी मात्रा में प्रवेश कर गये हैं क्योंकि यहाँ के समाजवादियों का केवलमात्र उद्देश्य चुनावों में सफलता प्राप्त करना रह गया है। इसका स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि वहाँ के समाजवादियों को मध्यमवर्ग के पूर्वाग्रहों को खुश करने के लिए विवश होना पड़ा, क्योंकि चुनाव सफलता आम जनता की जागरूकता की अपेक्षा मध्यम वर्ग की मनोदशा पर अधिक निर्भर करती है। दूसरे अस्थिर मतदाता- जो कि कई बार समाजवादियों को सत्ता प्राप्ति में सहायक हुए के दृष्टिकोण में अनुदारता के तत्व कहीं ज्यादा पाये जाते हैं। अतः समाजवादी अवसरवादिता की इस स्थिति में अपने सिद्धान्तों से ही समझौता करते गये। इस अनुदारवादिता की स्थिति के कारण यूरोपीय समाजवाद यथास्थितिवाद का समर्थक बन गया। डॉ. लोहिया के शब्दों में, "एक ब्रिटिश समाजवादी

1

भारत के कामनवेल्थ में रहने के प्रश्न पर भारत के किसी भी अनुदारवादी व्यक्ति से अधिक साम्य रखता है, एक सोशलिस्ट से कम।"[1]

(3) यूरोपीय समाजवाद में "इथोस" और "इलान" का अभाव रहा। लेबनान के समाजवादी प्रगतिशील दल के अध्यक्ष कमल-जुमलात के साथ अपने संयुक्त वक्तव्य (7 दिसम्बर 1951) में डॉ. लोहिया ने कहा, -"पूँजीवादी लोकतंत्र और रूसी कम्युनिज्म से अलग अपना एक निश्चित स्वरूप और उसके स्पष्ट पहलू न बन पाने के कारण यूरोपीय समाजवाद मानव के लिए व्यक्तिगत और सामाजिक पक्ष, संस्थागत और मानवीय पहलुओं से पूरी तरह आजाद करने के अपने आदर्श में असफल रहा।"[2]

डॉ. लोहिया का मानना है कि समाजवाद में उक्त बौद्धिक दुर्बलताओं का कारण यह रहा कि वह पूँजीवाद और साम्यवादी वैचारिक व्यवस्थाओं के बीच फँस गया तथा अपनी निजी तत्व- प्रणाली विकसित करने में असमर्थ रहा। लोहिया के अनुसार पूँजीवाद तथा साम्यवाद दोनों समान रूप से निरर्थक व्यवस्थायें हैं। दोनों पूर्ण विकसित किन्तु बन्द व्यवस्थायें होने के कारण सारा विश्व उनसे जकड़ा हुआ है, जिसके फलस्वरूप विश्व गरीबी, युद्ध तथा भय की स्थिति में रह रहा है। जब कभी समाजवाद वामपंथी और दक्षिणपंथी प्रतिक्रिया के दो अंगों के बीच फंस जाता है, जैसा कि भारत में, तब वह अपना स्वरूप खो बैठता है। इसकी निजी निश्चयात्मक विशेषतायें लुप्त हो जाती हैं।

डॉ. लोहिया ने पूँजीवाद और साम्यवाद के मूल लक्ष्यों एवं आधारों पर आघात करते हुए भारतीय समाजवाद की निजी विचारधारा विकसित करने पर जोर दिया। डॉ. लोहिया ने स्पष्ट रूप से कहा कि जब तक हम अपनी मौलिक आधार रेखायें विकसित नहीं कर लेते तब तक चिन्तन तथा आन्दोलन दोनों ही दृष्टियों से हम कोई विशिष्ट योगदान नहीं दे सकते और न ही भारत जैसे अविकसित देशों की समस्याओं का समाधान खोज सकते हैं।

डॉ. लोहिया ने समाजवाद के निजी भारतीय स्वरूप पर जोर देकर एक महत्वपूर्ण योगदान दिया। भारतीय समाजवाद की निजी आधार रेखाओं के प्रति लोहिया का क्या

---

1. संघर्ष (पत्रिका)-वर्ष 8, संख्या 39, 21 अगस्त 1950, पृष्ठ 9.
2. वही, वर्ष 14, संख्या 18, 17 दिसम्बर 1951, पृष्ठ 10.

दृष्टिकोण रहा। इसके लिए उन मान्यताओं को देखना होगा, जिन पर उन्होंने अपनी वैचारिक संरचना स्थापित करने का प्रयास किया। ये निम्न हैं-

(1) भारतीय समाजवाद को अपना आधार पूँजीवाद या साम्यवाद को नहीं वरन् गाँधीवाद को बनाना चाहिए। गाँधीवाद समाजवाद को वह आधार प्रस्तुत करता है, जिस पर विकसित होकर वह अपनी कमियों को पूर्ण कर सकता हैं और अपनी सीमाओं से दूर हो सकता है।

डॉ. लोहिया के शब्दों में, ''गाँधीवाद का नया धरातल विकसित करने से ज्यादा वांछनीय यह होगा कि विश्व स्तर पर विकसित व्यवस्थाओं पर गाँधी के सिद्धान्तों को लागू किया जाये। समाजवाद के लिए गाँधी के क्रियाकलाप ''फिल्टर'' का कार्य कर सकते हैं तथा अपने रंग पर आये धब्बों को दूर कर सकता हैं।''[1] अत्याचारी के खिलाफ नियन्त्रणक यन्त्र के रूप में सत्याग्रह, सिविल नाफरमानी, छोटी मशीनी तकनीकी व्यवस्था, राजनीतिक विकेन्द्रीकरण की योजना आदि गाँधीवाद के ऐसे तत्व हैं जो कि भारतीय समाजवाद के प्रमुख आधार होने चाहिए।

(2) डॉ. लोहिया ने समाजवाद को एक नयी सभ्यता के रूप में देखा। एक ऐसी सभ्यता जहाँ शोषणमुक्त स्वतंत्र समाज की स्थापना कर सकना सम्भव होगा। जिसमें व्यक्ति, मनुष्य निर्मित असमर्थता के दायरे से ऊपर उठ सके और अपने सामाजिक आर्थिक विकास का प्रारूप तथा राजनीतिक भविष्य का निर्धारण कर सके। इस संदर्भ में लोहिया द्वारा विवेचित ''सप्तक्रांन्ति'' की परिकल्पना का विवेचन करना आवश्यक होगा। डॉ. लोहिया के अनुसार आज संसार में सात प्रकार के अन्याय व्याप्त हैं-गोरे-काले का, ऊँची जाति और छोटी जाति का, शोषक और शोषित देश का, नर-नारी असमानता का, राज्य के अधिकार और व्यक्ति के अधिकार, निजी जीवन का संरक्षण तथा अमीर-गरीब का, लोहिया ने कहा कि ये सात बड़े अन्याय हैं, जो संसार को दुःखी बना रहे हैं। इनको खत्म किये बिना संसार का पुनर्निर्माण नहीं कर सकतें। उनके अनुसार समाजवाद ही ऐसी व्यवस्था सिद्ध हो सकती है जो व्यक्ति को इन विवशताओं से हटाकर स्वाधीनता की स्थिति में ला सकती है। लोहिया के अनुसार इस नयी सभ्यता-समाजवाद के निम्न लक्ष्य होंगे।[1]

---

1. डॉ. राममनोहर लोहिया-**मार्क्स, गांधी एण्ड सोशल्जिम,** पृष्ठ 123.

(क) अधिकतम संभव बराबरी और औचित्य के आधार पर न्याय की प्राप्ति

(ख) रहन-सहन के अच्छे स्तर की प्राप्ति, जो पूँजीवादी और द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी दोनों ही तरह के खतरों से बचकर मानव की भौतिक और नैतिक आवश्यकताओं में पूरा सामंजस्य कायम करें।

(ग) उद्योग-धन्धों और खेती का एक ऐसा तरीका निकाले और उसका उचित संगठन करें, जो मनुष्य के अधीन हो तथा उसके पूर्ण शारीरिक, बौद्धिक और नैतिक विकास के उपयुक्त हो।

(घ) राजनीतिक और आर्थिक शक्ति को इस तरह विकेन्द्रित करें कि वह साधारण व्यक्तियों को भी आसानी से प्राप्त हो सके, सभी क्षेत्रों में खासतौर पर राष्ट्रीय पैदावार के उत्पादन बंटवारे और उपभोग के क्षेत्रों में सहयोग को प्रोत्साहित करके नौकरशाही पर रोक लगायी जाये।

इस प्रकार हम कह सकते है कि डॉ. लोहिया के समाजवाद का अर्थ केवल मात्र राजनीतिक सत्ता का हस्तान्तरण ही नहीं बल्कि यह एक बहुआयामीय सांस्कृतिक क्रान्ति है, जहाँ व्यक्ति तथा समाज दोनों को अधिकतम उत्कर्ष का अवसर प्राप्त होता है।

(3) जहाँ तक राज्य निर्माण का प्रश्न है डॉ. लोहिया ने अपनी चिन्तन संरचना में विकेन्द्रित राजनीतिक व्यवस्था, जिसे उन्होंने "चौखम्भा राज्य" का नाम दिया का सृजन करने का प्रयास किया। चौखम्भा राज्य में सम्प्रभुता-शक्ति एक केन्द्र में एकत्र न होकर गांव, जिला, प्रान्त और केन्द्र में बटी होगी।

चौखम्भा व्यवस्था का आधार केवल मात्र राजनीति ही नहीं वरन इससे राजनीति, उत्पादन, विनिमय तथा वितरण व्यवस्था भी निकटता से जुड़ी हुई है। लोहिया ने माना कि अगर आर्थिक संरचना को राज्य निर्माण की प्रक्रिया-चौखम्भा व्यवस्था से नहीं जोड़ा गया तो विकासशील देशों में नौकरशाही की एक नयी समस्या उठ खड़ी होगी। यह नौकरशाही नया मालिक बन जाती है। तथा इसका अभिजात्यवादी स्वरूप होने के कारण आम जनता पीछे छूट जाती है। अतः लोहिया ने इस बात पर जोर दिया कि आर्थिक संरचना का प्रारूप नीचे

---

1. लोहिया- **विल टू पावर एण्ड अदर राईटिंग्स,** पृष्ठ 41.

से ग्राम, जिला तथा प्रान्त की सलाह से ही बनाया जाये। इसकी विपरीत अवस्था में उत्पादन के साधनों पर राज्य का अधिकार तो हो ही जाता है, किन्तु केन्द्रीभूत व्यवस्था होने के कारण राज्य पर नौकरशाही हावी हो जाती है तथा आम नागरिकों को मानवीय मूल्यों की प्राप्ति असम्भव हो जाती है। पानदरीबा सोशलिस्ट क्लब की बैठक में दिये गये भाषण में लोहिया ने कहा, ''केन्द्रीभूत उत्पादन के आधार को चलाने वाली सभ्यता चाहे वह एडमस्मिथ के सिद्धान्तों पर आधारित हों अथवा कार्लमार्क्स के कम से कम एशिया में तो रोटी की समस्या हल नहीं कर सकती। आर्थिक और राजनीतिक विकेन्द्रीकरण के सिद्धान्तों को अपनाकर ही शोषणमुक्त समाज की समस्या हल हो सकती है।''[1]

(4) डॉ. लोहिया ने उत्पादन के साधनों के सामाजीकरण पर जोर दिया। डॉ. लोहिया ने यह माना कि समाजीकृत सम्पत्ति मुख्यतः उत्पादन के लिए है, अतः उसकी बढ़ोत्तरी हो सकती है, जबकि निजी सम्पत्ति उपयोग के लिए है, अतः उस पर अंकुश होना अनिवार्य है।

डॉ. लोहिया के अनुसार निजी स्वामित्व की सीमा वहीं तक रह सकती हैं, जहाँ तक कि वह अपनी सीमित आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके तथा अन्य व्यक्तियों को शोषित श्रमिक की स्थिति न दे सकें। सामाजीकृत तथा निजी सम्पत्ति के सह सम्बन्ध का विवेचन करते हुए लोहिया ने लिखा है, ''सामूहिक सम्पत्ति का अपरिमित विकास और निजी सम्पत्ति पर अपेक्षित अंकुश इन दोनों का मेल ही संतोष की एक स्थिति ला सकता है, जब अपूर्ण इच्छाओं की पीड़ा दुःख नहीं देगी।''[2] डॉ. लोहिया ने समाजीकृत व्यवस्था को प्रभावी बनाने के लिए चार कदम उठाने के सुझाव दिये है : प्रथम, लोकसभा के सभी सदस्यों की सम्पत्ति के एक भाग का चाहे वह जमीन हो, कारखाना हो, मकान हो राष्ट्रीयकरण कर दिया जाये। इस पर शक्ति से अमल हेतु उल्लंघनकर्ता के लिए जेल का प्रावधान रखा जाये। लोहिया ने माना कि, 'जब तक जेल की सजा का बहुतायत से प्रयोग नहीं किया जाता, तब तक हिन्दुस्तान का आर्थिक जीवन सुधर नहीं सकता।'[3] द्वितीय, लोहिया के अनुसार चार्टर्ड-एकाउन्टेन्टों का राष्ट्रीयकरण किया जाये, क्योंकि पूँजीपतियों के अधीनस्थ स्थिति होने के कारण ये घपलों तथा गलतियों को कानूनी औचित्य का दर्जा प्रदान कर देते हैं। तृतीय, सभी विदेशी कम्पनियों

---

1. संघर्ष (संपादकीय)- वर्ष 15, संख्या 15, 28 अप्रैल 1952, पृष्ठ 3.
2. डॉ. राममनोहर लोहिया-**मार्क्स, गांधी एण्ड सोशल्जिम,** भूमिका से
3. बी.व्ही. पित्ती, ए त्रिपाठी तथा ओ.पी. निर्मल (संपादित)- **लोकसभा में लोहिया**, भाग-6, पृष्ठ 6-7.

का राष्ट्रीयकरण कर दिया जाये। लोहिया के अनुसार इन कम्पनियों की लाभ दर बहुत अधिक 35 प्रतिशत तक है। ऐसी स्थिति राष्ट्र के लिए बहुत खतरनाक होगी। साथ ही इनका राष्ट्रीय राजनीति में भी काफी हस्तक्षेप होता है, क्योंकि इन कम्पनियों में जिन लोगों को नौकरियाँ मिलती हैं, उनमें नौकरशाह, मंत्री, और बड़े लोगों के परिजनों की संख्या का प्रतिशत बहुत अधिक होता है।

अतः स्वाभाविक है कि वे राष्ट्रीय निर्णय-निर्माण प्रक्रिया को आसानी से प्रभावित करके एकाकी निर्णय लेने को बाध्य कर देते हैं। अन्त में लोहिया ने कहा कि सामाजीकृत उत्पादन के साधनों पर नौकरशाही तथा केन्द्रित व्यवस्था होने के कारण कार्यक्षमता घट जाती है। अपने विकल्प प्रस्ताव में डॉ. लोहिया ने कहा कि "समाजीकृत उद्योगों का संचालन प्रजातांत्रिक तथा बराबरी के आधार पर हो तथा जहाँ तक सम्भव हो सके इनके प्रशासन में श्रमिक तथा उपभोक्ता वर्ग का प्रतिनिधित्व हो।"[1]

(5) जहाँ तक डॉ. लोहिया द्वारा प्रस्तुत समाजवादी साधनों का प्रश्न हैं, 'उन्होंने हिंसात्मक क्रान्ति तथा संसद दोनों को ही अपूर्ण माना, क्योंकि इनके द्वारा बुनियादी परिवर्तन नहीं हो सकता।'[2] ये दोनों एक ही तत्व के दो अलग-अलग पहलू हैं। लोहिया ने सत्याग्रह, सिविल नाफरमानी, अहिंसात्मक रूप से कानून तोड़ने आदि पर जोर दिया।

डॉ. लोहिया ने समाज की परिस्थिति में परिवर्तन के लिए सृजनात्मक कार्यक्रमों का सुझाव दिया, सृजनात्मक कार्यक्रम के रूप में डॉ. लोहिया ने -फावड़ा, मत और जेल समाजवादी रूपान्तरण की नयी त्रिसूत्री योजना रखी। रचनात्मक कार्यक्रम के रूप में फावड़ा वह प्रतीक हैं जो हमें सिंचाई के लिए नहरों की खुदाई तथा इसी प्रकार के अन्य निर्माण कार्य करने के संकल्प में हमारी प्रतिबद्धता प्रकट करता है। वोट जनता के निर्णय और संकल्प की सर्वोच्च शक्ति है। लेकिन वोट का इस्तेमाल करने के अलावा भी लोगों को परिवर्तन और पुनः निर्माण के लिए अहिंसात्मक आन्दोलनों हड़ताल, धरना, बन्द आदि तथा सिविल नाफरमानी के लिए तैयार रहना चाहिए।

---

1. बी.व्ही. पित्ती, ए त्रिपाठी तथा ओ.पी. निर्मल (संपादित)- **लोकसभा में लोहिया**, भाग-6, पृष्ठ 6-7.
2. डॉ. लोहिया-सिविल नाफरमानी : **सिद्धांत और अमल**, पृष्ठ 446.

डॉ. लोहिया के अनुसार ये सिद्धान्त, वे आधार रेखायें हो सकती हैं, जिनके ऊपर भारतीय समाजवाद अपने "निजी"स्वरूप को विकसित कर सकता है। इन्हीं आधार रेखाओं पर चलते हुए भारतीय समाजवाद को वैचारिक स्वतंत्रता की स्थिति में ला सकते हैं।

डॉ. लोहिया के अनुसार- समाजवाद के सामान्य तीन सिद्धान्त होना चाहिए - 1. समता, 2. प्रजातंत्र, 3. बाहुल्यता।

डॉ. लोहिया ने कहा- "समता के सिद्धान्त का मूर्तरूप उच्चतम-न्यूनतम आय में अनुपात, व्यक्ति स्वामित्व का स्वरूप, प्रत्येक राष्ट्र के सैनिक बजट का प्रतिशत अन्तर्राष्ट्रीय निधि में चंदा दें, जिससे समान विश्व उत्पन्न हो सके।"[1]

डॉ. लोहिया समाजवादी सरकार के द्वारा देश में व्याप्त असमानता को दूर करना चाहते थे। उन्हें समाजवाद में पूर्ण निष्ठा थी वे कहा करते थे- आज के युग की पूँजीवाद और कम्युनिज्म की दो जुड़वा राक्षसी शक्तियों के खिलाफ लड़ाई छेड़ती हुई सोशलिस्ट पार्टी अपनी लड़ाई में अक्सर बर्बाद हो सकती है, मगर वह बार-बार जीवित होती रहेगी। इसलिये कि इन्सान जिंदा रहेगा और आखिरकार जीत समाजवाद की ही होगी।"[2]

डॉ. लोहिया भी समाजवाद की स्थापना के लिए आवश्यक मानते थे कि समाज में व्याप्त असमानता दूर हों। वे मानते थे कि भारत ही नहीं बल्कि पूरा विश्व दो वर्गों में विभाजित हैं, ये वर्ग है- उच्च्व वर्ग और निम्न वर्ग। वे मानते थे कि समाज में व्याप्त असमानता को दूर करने के लिए एक क्रान्ति नहीं बल्कि अनेक क्रांतियों की आवश्यकता है। डॉ. लोहिया के अनुसार, "आज स्वातंत्र्य की प्यास कुछ मानीं में पूरी हुई है। लेकिन समानता और समृद्धि की दूसरी प्यास अतृप्त है। हम लोगों को जनता को जागृत और सचेतन करके, उनके प्रयत्नों में एक सूत्रता लानी चाहिए।"[3] डॉ. लोहिया समाज में जहाँ कहीं भी असमानता थी, चाहे वह जाति-प्रथा के रूप में ही हो, स्त्री-पुरूष की मर्यादाओं के अन्तर के रूप में हो अथवा मेहनतकशों के रूप में -वे इन सभी के विरोधी थे।

---

1. डॉ. राममनोहर लोहिया-**मार्क्स, गांधी एण्ड सोशलिज्म,** पृष्ठ 479.
2. इन्दुमति केलकर-**लोहिया सिद्धांत और कर्म,** पृष्ठ 254.
3. वही, पृष्ठ 192.

डॉ. लोहिया का विचार था कि अमीरी व गरीबी के भेद के कारण गरीबों के साथ अन्याय होता आया है। गरीबों में चेतना का संचार हो रहा है, वे अपनी स्थिति को सुधारने का प्रयत्न कर रहे हैं। गरीबी व अमीरी की लड़ाई में बराबरी की भावना बहुत जोर के साथ आई है नई सभ्यता के निर्माण का आधार बराबरी का आदर्श अवश्य ही रहेगा। डॉ. लोहिया के अनुसार, "इस आदर्श को समझने में, उसकी विभिन्न दशाओं को समझ लेना अच्छा होगा। बराबरी की तीन दशायें होती हैं-एक भौतिक शरीर की या माली बराबरी की, इसके दो स्वरूप है, पहला देश के अंदर की भौतिक बराबरी और दूसरा विभिन्न देशों के बीच की भौतिक बराबरी, दूसरी दशा है दिमागी बराबरी की और तीसरी सुख-दुःख, सर्दी-गर्मी इत्यादि की और समभाव।"[1]

डॉ. लोहिया का विचार था कि आज देश के अंदर तो भौतिक गैर बराबरी है ही लेकिन देश के बाहर सम्पूर्ण दुनिया में भौतिक अवस्था में जमीन आसमान का फर्क है। उदाहरण के लिए उन्होंने कहा-" आज हिन्दुस्तानी बच्चे को औसतन रोज एक चम्मच दूध मुश्किल से मिलता है लेकिन अमेरिकन बच्चे को औसतन रोज आधा सेर दूध मिलता है, ऐसी हालत हर चीजों में भी है। इस गैर-बराबरी को दूर करने का प्रयत्न देश के भीतर की गैर-बराबरी को दूर करने के प्रयत्न के साथ करना पड़ेगा क्योंकि दोनों एक दूसरे पर असर डालती हैं।"[2]

डॉ. लोहिया का विचार था कि सम्पूर्ण बराबरी का सपना देखने वाला अपने काम में हमेशा सम्भव बराबरी का आदर्श रखे अगर सम्भव बराबरी से जकड़ कर रखे गये तो सम्पूर्ण सपना देखते-देखते सारी दुनिया भर की बेइमान कर जायेंगे क्योंकि सम्भव और ठोस रूप न होने पर आदर्श की प्राप्ति ये और रूकावटें आती हैं जिससे सब काम उल्टा हो जाता है। इसलिए देश काल की स्थिति को देखते हुए ही सोशलिस्ट पार्टी ने एक और दस का फर्क सम्भव बराबरी की सीमा निर्धारित की है। यह साफ है कि सम्पूर्ण बराबरी का सपना देखने वाले जब इस सम्भव बराबरी को हासिल कर लेगे तब उनका सम्पूर्ण एक और पांच का फर्क हो सकता हैं 'उस समय एक और दस की बात पर टिके रहना, केवल एक यथास्थिति को कायम करना होगा। उस समय के लिए सम्भव बराबरी एक और दस का फर्क नहीं बल्कि एक और पाँच का फर्क होगी।'[3]

---

1. डॉ. राममनोहर लोहिया- **समाजवाद का सगुण रूप**, पृष्ठ 6.
2. वही, पृष्ठ 7.
3. वही, पृष्ठ 2.

वर्तमान समय में गरीबी व अमीरी के बीच की खाई बहुत चौड़ी होती जा रही है। कई लोगों का कहना है कि जिस तरह हाथ की पाँच उँगलियाँ समान नहीं होती, उसी प्रकार समाज में प्रत्येक व्यक्ति की समानता सम्भव नहीं है। प्रकृति के नियमों में भी असमानता देखने को मिलती है इसका खण्डन करते हुए डॉ. लोहिया ने कहा कि, "इस तरह वे बहुत से उदाहरण लोग दे दिया करते हैं कि इतनी असमानता है और असमानता प्रकृति का नियम है, न कि समता। इस पर में एक छोटी सी बात कहे देता हूँ कि प्रकृति का नियम जो भी हो, मनुष्य का नियम होना चाहिये समता।"[1]

डॉ. लोहिया की समाजवादी आर्थिक रचना की सोच अपने में निराले और अनूठे ढंग की थी। इस माने में दूसरे समाजवादी विचारकों से उनकी सोच अधिक मौलिक, व्यवहारिक और साथ ही अधिक मानवीय थी। डॉ. लोहिया के आर्थिक विचार आज के सन्दर्भ में भी उतने ही सत्य हैं जितने कि उनके जीवन काल में थे। लोहिया ने हमेशा यह बात उठायी कि किसान मेहनत करता है पर किसानों को उत्पादन का लाभप्रद मूल्य नहीं मिलता। इसके लिए लोहिया ने बड़े आन्दोलन को खड़ा किया जैसे किसान संगठन, हिन्द किसान पंचायत बनाकर उन्होंने किसानों के इस आन्दोलन को सारे देश में चलाया।

अनाजों के दाम लूट के मामले में आज भी लोहिया का सिद्धान्त सर्वोपरि है। आज सभी राजनैतिक दल यह कहने लगे हैं कि उनके उत्पादन का लाभप्रद दाम मिलना चाहिए। लड़ाई लम्बी है पर लोहिया का सिद्धान्त आगे बढ़ता चला जा रहा है।

डॉ. लोहिया का विचार था कि भारत में विभिन्न वर्गों के बीच व्याप्त असमानता को लोककल्याणकारी दामनीति की व्यवस्था से दूर किया जा सकता है और समाजवाद की स्थापना के लिए प्रयास किये जा सकते हैं उनका विचार था कि सरकारी और निजी क्षेत्रों के मौजूदा जनविरोधी चरित्र का एक खास पहलू हैं, दाम की लूट एक डेढ़ प्रतिशत शासक वर्ग को छोड़कर देश के सारे नागरिक उसके शिकार होते हैं। वे मानते थे कि दामों की लूट तभी बन्द होगी जब दाम के बारे में ठोस नियम बने। कारखानों से बनी जीवनोपयोगी वस्तुओं का फुटकर दाम लागत और ढुलाई, खर्च के ड्योढ़े हों और विलासिताओं तथा

---

1. डॉ. राममनोहर लोहिया-**सात क्रांतियाँ**, पृष्ठ 2.

वितरकों का मुनाफा भी विलासिता की वस्तुओं का उत्पादन सामान्यतः बन्द हो लेकिन अगर कहीं होता है तो उन पर भारी टैक्स लगाने की आपत्ति नहीं की जा सकती है। डॉ. लोहिया का विचार था कि देश में आर्थिक पैदावार बढ़ने पर उसको जनता में न्याय के आधार पर वितरित किया जाये, तभी सच्चा समाजवाद स्थापित होगा। वे मानते थे कि देश में असमानता को दूर करके ही समानता स्थापित की जा सकती है।

डॉ. लोहिया समाजवादी दल के गठन को मजबूत करना चाहते थे। उनका विश्वास था कि जब तक समाजवादी दल खुद मजबूत नहीं होता तब तक हम कुछ नहीं कर सकते। लोहिया कृषक, मजदूरों, पद-दलित जातियों आदि को संगठित करके समाजवाद की स्थापना का प्रयास करने पर बल देते थे। उन्होंने कहा-"जब तक एक तरफ खेत मजदूर, दूसरी तरफ कृषक और तीसरी तरफ जाति के हिसाब से पथशाली, काबू और जुलाहा बगैरह का संगठन नहीं बनता, तब तक वाहन नहीं है। मैं नहीं कहता कि जाति का संगठन करों लेकिन ये पद-दलित जातियाँ हैं इसलिये इनके मन में नया विचार और नया उत्साह पैदा करके उनको खड़ा करो, दूसरों के खिलाफ। ये तीन वाहन हैं और चौथी तरफ मजदूर और विधार्थी हैं जैसे आन्ध्रप्रदेश में वैसे हिन्दुस्तान में बिना वाहन के समाजवाद चल नहीं सकता, कोई भी वाद नहीं चल सकता।"[1]

अपने जीवन के अन्तिम दिनों में लोहिया कहने लगे थे कि "परम्परावादी तथा संघटित समाजवाद एक मरा हुआ सिद्धान्त तथा मरणशील व्यवस्था है। इसलिए उन्होंने 'नवीन समाजवाद' का नारा लगाया।"[2] इस नवीन समाजवाद के लिए उन्होंने छः सूत्रीय योजना का निरूपण किया। आय तथा व्यय के क्षेत्र में अधिकतम समानता के स्तर को उपलब्ध करना आवश्यक है। इसके लिए राष्ट्रीयकरण एक महत्वपूर्ण साधन है। किन्तु वह एक मात्र साधन नहीं है। विश्व में जीवन स्तर ऊँचा करने का प्रयत्न किया जाय। लोहिया ने वयस्क मताधिकार पर आधारित विश्व संसद का समर्थन किया। उन्होंने सामान्य जनों के अधिकारों तथा प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए वैयक्तिक तथा सामूहिक सविनय अवज्ञा की गाँधीवादी कार्यप्रणाली का समर्थन किया।

---

1. डॉ. राममनोहर लोहिया- **समाजवादी आन्दोलन के दस्तावेज,** पृष्ठ 59.
2. डॉ. एन.के. श्रीवास्तव-**नेहरू और समाजवाद**,शोध आलेख, पृष्ठ 33-34.

डॉ. लोहिया ने कोई वाद नहीं चलाया । वे इस अर्थ में समाजवादी थे कि उसमें समाज के गतिशील बने रहने के लिए दिशा-बोध है। मानव ने अपने लिए समाज का चयन किया है। समाज ही मानव का निकेतन है। समाज से बाहर आज मानव की कल्पना नहीं की जा सकतीं। समाज है तो मानव है। वे ऐसे मार्क्सवादी नहीं थे जो हिंसा और वर्ग-संघर्ष की बात किया करते हैं। वे सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और आर्थिक चिन्तन तथा व्यवहार को समाजोन्मुखी बनाने के पक्षधर थे परन्तु व्यक्ति को खोकर नहीं। वे बराबर समाजीकरण में विक्रेन्द्रीकरण का महत्व स्थापित करने में जुटे रहें। उन्होंने समाजवाद के लिए कभी मानव की अवहेलना नहीं होने दी। वे सदा मानववाद को समाजवाद की कसौटी मानते रहे थे।

अध्याय–छः

डॉ. राममनोहर लोहिया और समाजवादी आन्दोलन

(अ) भारत में समाजवादी आन्दोलन का प्रारंभ व विकास

(ब) भारतीय राजनीति में 1946 से समाजवादी आन्दोलन

(स) समाजवादी आन्दोलन का राजनैतिक नेतृत्व में विश्लेषण।

6

डॉ. राममनोहर लोहिया और समाजवादी आन्दोलन

परम्परागत भारतीय राजनीति में समय-समय पर अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए आन्दोलनों का उत्थान और विकास हुआ। आन्दोलन हमेशा पुर्नजागरण का कार्य करते हैं। जिससे समाज को मार्गदर्शन मिलता है। आन्दोलन मध्यम वर्गीय बुद्धजीवियों का उत्थान करते हैं, राजनीति अथवा राजनीतिकवृत्ति को आन्दोलन विभिन्न तरीके से प्रभावित करते हैं। ये वृत्ति अतीत से वर्तमान के भारतीय राजनीति को एवं आन्दोलन के द्वारा प्रेरणास्पद एवं मर्मस्पर्शीय बनाया जिससे विभिन्न राजनीतिज्ञों, दार्शनिक चिंतकों एवं राजनेताओं ने भी उसे अपनाया, चाहे वह लोहिया हों या गाँधी।

1933 में डॉ. लोहिया जर्मनी से भारत लौटकर आये उस समय कांग्रेस और सरकार में समझौता हुआ था और महात्मा गाँधी गोलमेज सम्मेलन में सम्मिलित हुए थे जहाँ से वे निराश होकर लौटे थे। देश की धरती पर कदम रखते ही उन्हें सरकार ने बन्दी बना लिया था। फलतः कांग्रेस का आन्दोलन फिर चल पड़ा था। लार्ड इरविन के स्थान पर भारत के वायसराय लार्ड विलिंगटन बने थे, उन्होंने प्रण किया था कि कांग्रेस आन्दोलन 6 सप्ताह में कुचल कर रख देंगें। पं. नेहरू भी कैद कर लिये गये थे। उस समय देश में बेकारी फैली हुई थी। कलकत्ता महानगरी की दशा और भी खराब थी। यह अवस्था थी जब डॉ. लोहिया ने भारत-भू पर पदार्पण किया। कांग्रेस में उस समय तक सभी विचारधाराओं के लोग एकत्रित थे। समाजवादी, साम्यवादी, राष्ट्रवादी, उग्रवादी तथा सम्प्रदायवादी- सब एक ही ध्येय, "भारत की स्वतंन्त्रता" को लेकर साथ थे।

कांग्रेस के समाजवादी प्रगतिशील लोगों में कांग्रेस नेतृत्व की दक्षिणपंथी नीतियों एवं कार्यवाहियों के विरूद्ध असंतोष की अग्नि सुलग रही थी जो गाँधी की सरकार के समक्ष घुटनाटेक, गाँधी-इर्विन समझौते की कार्यवाही से प्रभावित हुई थी। इन लोगों ने कांग्रेस में ही एक ऐसे संगठन की आवश्यकता महसूस की जो समाजवादी एवं प्रगतिशील रूझानों से

सम्बद्ध हो प्रगतिशील तत्वों की इसी इच्छा की परिणति अंततः 1934 में कांग्रेस समाजवादी पार्टी की स्थापना में हुई जिसका सीधा लक्ष्य था कि कांग्रेस को समाजवादी लक्ष्यों से आबद्ध किया जाय, ब्रिटिश साम्राज्यवाद से भारत को पूर्ण आजादी मिले। आजादी के बाद भारत में समाजवादी व्यवस्था की स्थापना हो, निजी संपत्ति का उन्मूलन हो आदि।

17 मई, 1934 को काशी विद्यापीठ के प्रधानाचार्य आचार्य नरेन्द्र देव की अध्यक्षता में पटना में एक समाजवादी सम्मेलन का आयोजन किया गया जिसमें देश के कई भागों से लगभग 100 प्रतिनिधियों ने भाग लिया। लोहिया ने भी इस सम्मेलन में भाग लिया। इन सभी व्यक्तियों ने कांग्रेस के अन्दर समाजवादी समूह के नेहरू के नेतृत्व करने में विश्वास व्यक्त किया। इस सम्मेलन में अखिल भारतीय कांग्रेस समाजवादी दल के गठन का निर्णय लिया गया तथा इस आशय की पूर्ति हेतु इसके कार्यक्रम एवं संविधान निर्माण के लिए एक समिति की नियुक्ति की गई। जिसमें लोहिया को भी सम्मिलित किया गया।

डॉ. लोहिया को बंगाल में दल के गठन का उत्तरदायित्व दिया गया। सितम्बर 1934 को लोहिया द्वारा बंगाल शाखा का प्रथम सम्मेलन बुलाया गया।[1] इस सम्मेलन की अध्यक्षता अमर राय ने की।29 सितम्बर,1934 को "कांग्रेस सोशलिस्ट" प्रथम बार प्रकाशित किया गया। डॉ. लोहिया इसके प्रधान सम्पादक थे। अमरेन्द्र मिश्रा, अमर राय एवं अश्विनी गुप्ता ने लोहिया की सहायता की।

21 अक्टूबर, 1934 को अखिल भारतीय कांग्रेस समाजवादियों का एक सम्मेलन आचार्य नरेन्द्र देव की अध्यक्षता में आयोजित किया गया जिसमें लगभग 150 प्रतिनिधियों ने भाग लिया। कांग्रेसी समाजवादियों द्वारा पूर्ण स्वतंत्रता ब्रिटिश सरकार से अलगाव तथा समाजवादी समाज की स्थापना के अपने उद्देश्य की घोषणा की गई।[2] पार्टी के उद्देश्य संबंधी प्रस्ताव में लोहिया ने एक संशोधन पेश किया था। वह संशोधन था- 'पूर्ण स्वराज्य का लक्ष्य।'[3] इस संशोधन का बड़ा विरोध हुआ और अस्वीकार कर दिया गया।

---

1. सत्यव्रत राय- **माईफ्रेंड,मैनकाइन्ड,** वाल्यूम 12 मार्च 1968, पृष्ठ 44.
2. सम्पूर्णानन्द- **मौक्योर्स एण्ड रेफ्लेक्शन्स,** पृष्ठ 74.
3. डॉ. सुरेन्द्र प्रताप, डॉ. श्यामा प्रसाद- **डॉ. लोहियाः विरासत का सवाल,** पृष्ठ 15.

कांग्रेस समाजवादी दल की यह एक विशेषीकृत विशेषता थी कि इसकी सदस्यता भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के ऐसे सदस्यों तक ही सीमित रखी गई जो किसी साम्प्रदायिक दल अथवा राजनीतिक संगठन के सदस्य नहीं थे। इस प्रकार के इस दल का गठन कांग्रेस की शाखा के रूप में हुआ तथा इसकी जन सदस्यता को हतोत्साहित किया गया। राममनोहर लोहिया ने कहा- "भारतीय समाजवाद की सबसे बड़ी विशेषता एवं जिसको सबसे बड़ी कमी कहा जा सकता है कि भारतवर्ष में इसकी स्थापना वामपंथी राष्ट्रवाद के रूप में हुई है। प्रारम्भिक दौर में इसका प्रमुख उद्देश्य सुधार के माध्यम से गरीबी, अथवा असमानता को समाप्त करना था। बल्कि भारतवर्ष में ब्रिटिश शासन को समाप्त करना था। उन्होंने अपने विचारों को रूस से लिया तथा जनमानस को सम्प्रेरित करने के लिए अपनाये गये तरीकों को पश्चिमी देशों से प्राप्त किया।"[1]

कांग्रेस समाजवादी दल में तीन प्रवृत्तियों का आधिपत्य रहा है। प्रथम मार्क्सवादी जिसके नेता आचार्य नरेंद्र देव थे को द्वितीय, ब्रिटिश लेबर पार्टी के प्रकार का सामाजिक प्रजातंत्र, अशोक मेहता इसके प्रचारक थे तथा तृतीय गाँधीवादी प्रकार का प्रजातान्त्रिक समाजवाद था। लोहिया इस विचार के प्रमुख वक्ता थे।

19-20 जनवरी, 1936 को कांग्रेस समाजवादी दल का द्वितीय सम्मेलन मेरठ में हुआ। मार्क्स का प्रभाव इस सम्मेलन में स्पष्ट था। उस सम्मेलन में लोहिया ने कांग्रेस को प्रजातंत्रीय करने से सम्बन्धित एक प्रस्ताव रखा। मेरठ सम्मेलन तक साम्यवादी कांग्रेस समाजवादियों को "सामाजिक फासिस्ट" के नाम से कलंकित करते रहे परन्तु इस सम्मेलन के पश्चात् "कम्युनिस्ट इण्टरनेशनल" ने साम्यवादियों को इनके साथ कार्य करने का निर्देश दिया। कांग्रेस समाजवादी दल ने समाजवादी एकता की प्राप्ति हेतु साम्यवादियों के लिए अपने दरवाजे खोल दिये। उन्होंने जल्दी ही महत्वपूर्ण पदों को प्राप्त कर लिया।[2]

डॉ. लोहिया इस विषय में बहुत ही सचेत थे। 'वे जानते थे कि साम्यवादी मास्कों के प्रति निष्ठा रखते हैं तथा वहीं से निर्देशित होते हैं। इस विचार में वे सही पाये गये। दल की राजनीति पर वर्चस्व बनाय रखने हेतु साम्यवादियों ने संगठित रूप से प्रयास किया।'[3]

---

1. कौरखम्बा (पत्रिका)-इन्दौर, 23 मार्च 1964.
2. इन्दुमतिकेलर-**लोहिया सिंद्धान्त और कर्म,** पृष्ठ 60.
3. जयप्रकाश-**ट्ुवर्डस् स्ट्रगल,** पृष्ठ 172.

1938 के लहरपुर सत्र में कांग्रेस समाजवादी दल पर आधिपत्य जमाने के लिए एक छत्र साम्यवादी योजना पर विचार किया गया। अन्ततः 1940 के रामगढ़ सत्र में कांग्रेस समाजवादी दल की कार्यकारिणी ने समस्त साम्यवादियों को दल से निलम्बित कर दिया।[1]

कुछ ही समय में कांग्रेस समाजवादी दल में लोहिया केन्द्रीय महत्व के व्यक्ति हो गये। उन्होंने भारत सरकार अधिनियम 1935 के अन्तर्गत पद स्वीकार करने का विरोध किया। उन्होंने कहा कि ''अंग्रेजों के साथ राज्य सत्ता का भोग करने के कारण उनमें (कांग्रेस मंत्रियों में) समझौता करने की प्रवृत्ति के विकास की संभावना बनती है।''[2]

कानपुर में फरवरी 1947 के अंत में समाजवादियों का सम्मेलन हुआ जो समाजवादी आन्दोलन के लिए बहुत ही निर्णायक सिद्ध हुआ। इस सम्मेलन में 'सर्वहारा की तानाशाही' और 'सर्वहारा के लोकतंत्र' से लेकर 'वर्गविहीन समाज' पर जमकर बहस चली। 'आर्थिक विकास सम्बन्धी नीति में लोहिया का यह विचार भी स्वीकृत हुआ कि वैज्ञानिक उपलब्धियों का पूरा उपयोग करते हुए, छोटे पैमाने की तकनॉलाजी को आर्थिक विकास का आधार बनाया जाय। तानाशाही के सिद्धान्त को समाजवादियों ने अंतिम रूप से छोड़ दिया। यह भी स्वीकार कर लिया कि हिंसक क्रांति के बिना भी लोकतांत्रिक पद्धति से क्रांतिकारी सामाजिक परिवर्तन संभव है। चूंकि कांग्रेस के समाजवादी चरित्र में बड़ी तेजी से परिवर्तन हो रहा था और वह सरकार में घुसने को बेताब थी इसलिए पहले से ही कांग्रेस के साथ सम्बन्धों को बरकरार रखने के प्रश्न पर भी बहस हुई। परिणामस्वरूप इसी सम्मेलन में 'कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी' के नाम के आगे से 'कांग्रेस' शब्द हटा दिया गया। साथ ही यह भी अनिवार्यता समाप्त कर दी गयी कि पार्टी के सदस्य को कांग्रेस पार्टी का सदस्य होना जरूरी है।

जनवरी 1947 के इस सम्मेलन के पूर्व लोहिया के प्रयास के फलस्वरूप कलकत्ता में एक नेपाली राष्ट्रीय सम्मेलन का गठन किया गया। इस दल ने नेपाल से राना के शासन की समाप्ति एवं सामन्तशाही का अन्त तथा वहाँ पर प्रजातान्त्रिक व्यवस्था की स्थापना को अपना लक्ष्य घोषित किया।

---

1. सोलरोज-**सोशलिज्म इन सदर्न एशिया**,पृष्ठ 24.
2. डॉ. लोहिया-**समाजवादी आन्दोलन का इतिहास**, पृष्ठ 9.

स्वतंन्त्रता प्राप्ति के पश्चात समाजवादी कांग्रेस में ही रहना चाहते थे परन्तु वे सरकार में शामिल न हो करके कांग्रेस की आलोचना करने की पूर्ण स्वतंत्रता रखना चाहते थे। नेहरू ने कांग्रेस अध्यक्ष पद छोड़ दिया तथा प्रधानमंत्री का पदभार स्वीकार कर लिया। अब कांग्रेस के दक्षिणपंथी नेताओं ने आचार्य नरेन्द्र देव की अध्यक्षता का विरोध किया। लोहिया कांग्रेस छोड़ने को उत्सुक नहीं थे। एक साक्षात्कार में उन्होनें कहा कि "अन्ततः यह अपनी ही सरकार है समाजवादी जब तक वे इस संगठन में हैं, अपना पूर्ण सहयोग दें।"[1] लेकिन फरवरी 1948 में कांग्रेस ने अपने संविधान में परिवर्तन करके ऐसे किसी भी व्यक्ति को सदस्यता से मना कर दिया जो किसी अन्य राजनीतिक दल का सदस्य है। परिणामस्वरूप किसी भी अन्य मार्ग के अनुलब्ध होने के कारण मार्च 1948 में नासिक में हुए कांग्रेस सम्मेलन से समाजवादियों ने अपने सदस्यों को कांग्रेस से वापस आने का निर्देश दिया। कांग्रेस से अलग होने के विषय में लोहिया ने कहा "छोड़ने शब्द का प्रयोग गलत है। हम कांग्रेस के अन्तर्गत मेहमान नहीं थे। यह एक ऐसा संगठन था जिसके निर्माण में हम लोगों ने उतना ही योगदान दिया है जितना की किसी अन्य व्यक्ति ने। हम लोग स्वैच्छिक रूप से अपने अंश को त्याग कर रहे हैं तथा अपने आप दूसरे घर का निर्माण करने जा रहे हैं।"[2]

मार्च 1949 में सोशलिस्ट पार्टी का अधिवेशन पटना में हुआ। इस सम्मेलन में लोहिया ने 'आगे-बढ़ो' प्रस्ताव के रूप में एक क्रांतिकारी विचार देते हुए कहा कि- "नया प्रस्ताव मंजूर करके हमने पार्टी को केवल अस्थि-पंजर ही प्रदान किया है। अब उसमें जान भरना चाहिए। इससे ही पार्टी हौसला मन्द संगठन बनेगी। जो प्रस्ताव आप के सामने है यह नए विधान की ठठरी का रक्त माँस है।"[3] इस सम्मेलन में पार्टी के सदस्यों से अनुरोध किया गया कि जहाँ तक संभव हो सके पार्टी के कार्यक्रम को लोगों तक पहुँचाए। किसानों, खेतिहर मजदूरों, कामगारों, वेतन भोगियों एवं व्यापारियों के संगठनों से अनुरोध किया गया कि पार्टी के कार्यक्रम का पृष्ठांकन करें और अपने सदस्यों के बीच इसका आकर्षण बढ़ाएँ।

समाजवादियों ने किसानों के एक वर्ग संगठन हिंद किसान पंचायत का गठन किया था। लोहिया इस संगठन के अध्यक्ष चुने गये और 25 नवम्बर, 1949 को उनके नेतृत्व में किसानों का एक व्यापक प्रदर्शन लखनऊ में हुआ था। इस प्रदर्शन के कुछ ही दिनों बाद

1. दि इण्डियन नेशन- 9 दिसम्बर, 1947.
2. पायनियर- लखनऊ, 2 अप्रैल, 1948.
3. डॉ. सुरेन्द्र प्रताप, डॉ. श्यामा प्रसाद- **डॉ. लोहिया : विरासत का सवाल,** पृष्ठ 22.

26 फरवरी, 1950 को हिन्द किसान पंचायत का पहला राष्ट्रीय सम्मेलन रीवा में आयोजित किया गया, जिसकी भी अध्यक्षता डॉ. लोहिया ने की। इसी सम्मेलन में उन्होंने 'गरीबी हटाओं' का मशहूर कार्यक्रम प्रस्तुत किया। चिट्ठियाँ भेजकर पार्टी की प्रादेशिक शाखाओं को 20 अप्रैल से 17 मई तक रचनात्मक कार्यक्रम चलाने को प्रेरित किया। उनका मंत्र था- गाँधी के रचनात्मक कार्य का सूरज चरखा था। आज पार्टी के रचनात्मक कार्य का सूरज फावड़ा होगा। फावड़े को लागत पूँजी की जरूरत नहीं होती है। केवल ऐच्छिक और सामुदायिक श्रम की जरूरत होती है।

3 जून, 1951 को लोहिया के नेतृत्व में समाजवादियों का एक व्यापक प्रदर्शन दिल्ली में हुआ जिसे जनवाणी दिवस के रूप में सम्बोधित किया गया। लगभग एक लाख व्यक्तियों ने इस विशाल प्रदर्शन में भाग लिया था। जनवाणी दिवस की प्रमुख माँगें थीं-

1. बगैर मुनाफे की खेती से लगान की समाप्ति।
2. खेतिहर मजदूरों को उचित मजदूरी की व्यवस्था।
3. वस्तुओं के उचित दाम।
4. अंग्रेजी भाषा की समाप्ति।[1]

प्रथम सामान्य चुनाव के अवसर पर समाजवादी दल ने अपनी नीति, कार्यक्रम तथा उद्देश्यों से मुक्त एक पूर्ण परिपत्र जारी किया। समााजवादी दल के चुनाव घोषणा पत्र का शीर्षक "वी बिल्ड सोश्लिज्म" था। समाजवादी दल को कांग्रेस को छोड़कर अन्य दलों की तुलना में अधिक वोट मिले, फिर भी इसे तृतीय स्थान प्राप्त हो सका। चुनाव परिणामों में यह प्रदर्शित किया कि कांग्रेस के अगले विकल्प समाजवादी न हो करके साम्यवादी होंगे। चुनावों के पश्चात् समाजवादियों की स्थिति एक छोटे कपड़े के रूप में हो गई।[2] चुनाव परिणामों से समाजवादियों को धक्का लगा। उन्हें संसद में द्वितीय स्थान की प्राप्ति की आशा थी लेकिन उन्हें तृतीय स्थान ही प्राप्त हो सका। चुनाव के तुरन्त बाद, आचार्य कृपलानी ने किसान मजदूर प्रजा दल का गठन कर लिया । इस दल को भी बहुत खराब परिणाम मिले। उत्तरप्रदेश के हरदोई जिले में जून 1949 में हुए समाजवादी दल के सम्मेलन में लोहिया ने अगाह किया कि समाजवादियों को "कठोर दर्शनों" से अपने को अलग रखना चाहिए तथा

---

1. डॉ. राममनोहर लोहिया-**समाजवादी आन्दोलन का इतिहास**, पृष्ठ 59.
2. डॉ. लोहिया-**मैनकाइन्ड**,1947, पृष्ठ 670.

उन्होंने इस समय विभिन्न विरूद्धार्थी-भावना एवं तथ्य, वर्तमान तथा अधर्म, वैयक्तिक एवं सामाजिक तथा रोटी एवं संस्कृति के मध्य कार्यात्मक एकता को प्राप्ति की आवश्यकता को बताया।[1]

1952 में सोशलिस्ट पार्टी और किसान मजदूर प्रजा पार्टी के विलय के फलस्वरूप प्रजा सोशलिस्ट पार्टी का गठन हुआ था। 1953 में लोहिया नई पार्टी के महासचिव चुने गये। इस पद पर वे 1954 तक रहे। 1954 में उत्तर प्रदेश सरकार ने सिंचाई कर में वृद्धि की और विरोधस्वरूप प्रजा सोशलिस्ट पार्टी ने सत्याग्रह करने का निर्णय लिया। इस सम्बन्ध में लोहिया ने उत्तर प्रदेश का दौरा किया और वाणी स्वतंत्रता की लड़ाई लड़ने के लिए लोगों को ललकारा। इन्दुमति केलकर के अनुसार -"डॉ. लोहिया ने जनता को समझाया कि जुल्म सहना खतरनाक है और मुकाबला करना जरूरी है।"[2]

इस आन्दोलन के सिलसिले में उन्हें 4 जुलाई, 1954 को गिरफ्तार कर लिया गया था। इस गिरफ्तारी के विरूद्ध उन्होंने हैवियस कार्पस रिट हाईकोर्ट भेजी, रिट की सुनवाई के बाद उन्हें रिहा कर दिया गया लेकिन अप्रैल 1955 में उनकी मणिपुर में गिरफ्तारी हुई इससे लोकसभा मे भारी हंगामा हुआ और दूसरे प्रार्थनापत्र पर उन्हें फिर न्याय आयुक्त ने मुक्त किया।

28 दिसम्बर, 1955 से 1 जनवरी, 1956 तक नयी सोशलिस्ट पार्टी का स्थापना सम्मेलन हैदराबाद में हुआ। 1954-55 के वर्षों में भारतीय समाजवादी आन्दोलन में जो वैचारिक संघर्ष हुआ था और जो घटनाएँ हुई थीं, उनकी परिणति नयी पार्टी की स्थापना में होना अपरिहार्य था। लोहिया और उनके साथी एक ऐसी हालत में पहुँचे थे कि या तो नयी पार्टी संगठित करते या फिर राजकीय जिन्दगी से संन्यास ले कर अगतिशीलता से निष्कासित राजकीय जीवन बिताने पर मजबूर होते। लोहिया और उनके साथियों ने प्रथम रास्ते पर चलना पसन्द किया।

स्थापना सम्मेलन के अध्यक्ष लोहिया थे। उनका अध्यक्षीय भाषण पचमढ़ी भाषण के समान समाजवादी आन्दोलन की कीमती धरोहर की शक्ल में अमर रहेगा। नये दल की

---

1. डॉ. राममनोहर लोहिया- **मार्क्स, गांधी एण्ड सोशलिज्म**, पृष्ठ 370.
2. इन्दुमति केलकर- **लोहिया : सिद्धांत और कर्म**, पृष्ठ 293.

वैचारिक भूमिका का सहारा यह भाषण बन ही गया था, लेकिन साथ-साथ इसमें पिछले 3-4 वर्षों के अनुभवों का, गलतियों-खामियों का और दगाबाजियों का पूरा विश्लेषण था। पंचमढ़ी के भाषण में समाजवादी आन्दोलन के आधारभूत तत्वों का विचारमंथन था, तो हैदराबाद भाषण ने समाजवादी आन्दोलन की असफलता के कारणों पर गहरी रोशनी डाली थी। 3-4 वर्षों में नेहरू-जयप्रकाश बातचीत, बैतूल अधिवेशन, उत्तरप्रदेश संघर्ष, त्राचीन गोलीकांड, नागपुर सम्मेलन और प्रसोपा की राष्ट्रीय कार्यकारिणी द्वारा की हुई आम मुअत्तली इत्यादि महत्वपूर्ण घटनाओं के सिलसिले को सामने रख कर लोहिया ने अपनी सैद्धान्तिक प्रयोगशाला में इनका पृथक्करण, विश्लेषण किया और अपने प्रयोगों में जो उनको सत्य मालूम हुए, उनकी तस्वीर अध्यक्षीय भाषण द्वारा उन्होंने समाजवादी नेताओं के सामने खीचीं। समाजवादी आन्दोलन के आरोह-अवरोह, व वादी-संवादी की महत्ता बताने के बाद रसोत्पत्ति के मर्मस्थान पर लोहिया ने उँगली रखी। डॉ. लोहिया के शब्दों में "देश के एक या अनेक संगठनों में से जनतंत्र पहले नष्ट होने के बाद ही जनतंत्र देश में मुर्दा होता है।"[1]

डॉ. लोहिया ने देश की जनता को राजनीतिक पार्टियों के आन्तरिक कार्यों की समीक्षा करने का आवाह्न किया और संकेत किया कि आखिरकार राजकीय व्यवहार का आधार राजकीय दल ही रहते हैं। देश के मौजूदा विरोधी दलों का विवरण देते हुए लोहिया ने स्पष्ट बताया कि कोई भी सच्चा विरोधी दल नहीं रहा है। कुछ संगठन समय-समय पर संकुचित, सीमित और आंशिक लड़ाई करते है। जब से दिल्ली और मास्को सरकारों में विदेश नीति का मेल हुआ, तब से कम्युनिस्ट विरोध खत्म हुआ। प्रजा सोशलिस्ट पार्टी इतनी लकवामार है कि वह उस काल्पनिक पशु की भाँति, जो आधा मनुष्य होता है और आधा पशु, आधा सरकारी और आधा विरोधी दल है। डॉ. लोहिया के अनुसार-सरकारी पार्टी के साथ ऐसे विरोधी दलों की मिलीजुली कुश्ती चल रही है। विरोधी दल का जन्म तभी होगा, जब सम्यक् दृष्टिकोण अपनाया जाएगा।

समाजवादी आन्दोलन की सबसे घातक बीमारी के प्रति इशारा करते हुए उन्होंने कहा, "ऐसी समाजवादी पार्टियाँ जो केवल उत्तेजना जगाती हैं, और नेता की अनुयायी के साथ और दोनों की संगठन के साथ निरन्तर मानसिक और शारीरिक एकता के द्वारा शक्ति को

1. इन्दुमति केलकर- **लोहिया : सिद्धांत और कर्म**, पृष्ठ 342.

समेटती नहीं, ऐसी प्रतिद्वन्द्वी दुकानें बन जाती हैं, जिनमें लोग छोटे और अस्थायी लाभों के लिए जाते हैं और जो उनकी कल्पना में चंदों या अन्य राजनीतिक तरीकों से कुछ लाभ भी उठाते हैं।"[1]

सत्ता प्राप्ति की सातसाला योजना लोहिया ने अपने भाषण में घोषित की। सन् 1920 में महात्मा गाँधी ने "एक बरस में आजादी का ऐलान किया था। जिस अवस्था में सन् 1920 में स्वतन्त्रता आन्दोलन था, उससे भी अधिक कमजोर हालत में 1955 में समाजवादी आन्दोलन था। इस प्रकार की अवस्था में "सात बरस में सोशलिस्ट राज" की घोषणा, लोहिया की कल्पना की उड़ान महसूस होना स्वाभाविक था। नये दल की आगे की धीमी प्रगति की दृष्टि से यह टीका सच निकली। लेकिन इस ऐलान का रहस्य काफी स्पष्ट था। एक तरह का पक्का संकल्प इस घोषणा से प्रकट होता था। सत्ता प्राप्ति व सत्ता विरक्ति का संतुलन इस घोषणा में अभिप्रेत था। ज्यादा दूर नहीं, ज्यादा जल्द भी नहीं। ऐसे सात बरसों के काल में सत्ता प्राप्ति की घोषणा नये दल को कार्य-प्रवणता की प्रेरणा देगी और सत्ता उपभोग का मौका मिलेगा, ऐसी लोहिया की उम्मीद थी। बदकिस्मती से अगले इतिहास में यह निरर्थक निकली और केवल सत्ता की लालच सुदृढ़ हुई। उसके लिए अनिवार्य रूप से लगने वाले प्रयासों का विस्मरण हो गया और आखिर में सत्ता प्राप्ति के सप्तवर्षीय कार्यक्रम को शतवर्षीय संघर्षात्मक कार्यक्रम से जोड़ देने की आवश्यकता लोहिया ने बतायी।

कार्यकर्ताओं को राजकीय शिक्षा देने के लिए उन्होंने क्षेत्रीय शिविर संगठित करने की योजना अमल में लाने की कोशिश की। दक्षिणी क्षेत्र शिविर मद्रास में हुआ और लोहिया शिविर में मामूली सैनिक की तरह पूरा महीना रहे। शिविर उद्घाटन भाषण में उन्होंने समाजवादी चरित्र सम्बन्धी अपने विचार प्रदर्शित किये।

डॉ. लोहिया के अनुसार "मुकर्रर वक्त पर शिविर शुरू हुआ। यह आनन्ददायक घटना है। निश्चित तिथि को टालना समाजवादी आन्दोलन में आदत की चीज बनी हुई है। असल में निश्चित किया हुआ समय स्थगित करना वचन-भंग के समान बुरा कृत्य समझना चाहिए। और इसका सम्बन्ध आदत से है।"[2]

---

1. इन्दुमति केलकर -**लोहिया सिद्धांत और कर्म**, पृष्ठ 344.
2. वही, पृष्ठ 347.

आदत और समझदारी का भिन्न स्वरूप स्पष्ट करके उन्होंने कहा कि अच्छी समझदारी वाले लोग भी बुरी आदत वाले होते हैं। मिसाल के तौर पर अच्छे भाषण और अच्छा तर्क करने वाले कतिपय समाजवादी आलसी और सुस्त रहते हैं। पार्टी दफ्तर का स्वरूप क्लब जैसा बन जाता है। बासी रसोई उबालने वाली बहस आपस में करने की आदत समाजवादियों में मौजूद है। इस प्रकार की अन्य बुरी आदतों से भी समाजवादी आन्दोलन भ्रष्ट हुआ है।

आम-चुनाव नजदीक आ रहा था। चुनाव नीति के सम्बन्ध में याद दिलाते हुए लोहिया ने बताया, "समाजवादी आदोलन पर आये हुए एक बड़े खतरे के खिलाफ सभी लोगों और विशेष कर समाजवादियों को मैं सावधान कर देना चाहता हूँ। सभी पदाधिकारियों को पार्टी के विधान, नीति और रीतियों के संरक्षक बनना चाहिए।"[1]

उत्तर प्रदेश के सोशलिस्टों ने बनारस में काशी विश्वनाथ मंदिर में हरिजनों को प्रवेश अधिकार दिलाने के लिए संघर्ष चलाया था। लोहिया ने देश के सोशलिस्टों के आन्दोलन को बधाई देने का आवाहन किया। सन् 1955 के अस्पृश्यता निवारण कानून की तरफ उन्होंने जनता का ध्यान खींचा और कानून की 13(1) धारा के मुताबिक किसी भी आदमी को धार्मिक पूजा-स्थान पर प्रवेश देने पर रोक लगाना सजा देने बाला गुनाह होता है, इस सम्बन्ध में सचेत किया। लोहिया ने सरकार को एक तरफ धार्मिक दकियानूसों को ललचाने वाली और दूसरी तरफ अस्पृश्यता निवारण कानून वाली दोहरी नीति की आलोचना की। बनारस की हरिजन मन्दिर प्रवेश कमेटी को उन्होंने सुझाव दिया कि सोशलिस्ट पार्टी का सम्मेलन बनारस में बुलाया जाए और उस समय सम्मेलन के प्रतिनिधि मन्दिर पर घेरा डालें। जब तक हरिजनों को प्रवेश नहीं मिलता तब तक अन्य लोगों को भी मन्दिर प्रवेश से रोकें। उन्होंने बतलाया कि मन्दिर प्रवेश के समान अन्य किसी भी सवाल ने पार्लियामेन्ट को शायद ही खटखटाया है। यहाँ पार्लियामेन्ट के सार्वभौमत्व का सवाल पैदा हुआ है। उत्तर प्रदेश सरकार पार्लियामेन्ट के मंजूर किये गये कानून के अनुसार नहीं चलती थी। और यह जितना भारतीय जनता का अपमान था, उतना ही निजी असभ्यता का प्रदर्शन भी।

---

1. इन्दुमति केलकर- **लोहिया : सिद्धांत और कर्म**, पृष्ठ 351.

सोशलिस्ट पार्टी ने उसी समय बिहार में भी प्रान्तव्यापी संघर्ष शुरू किया था। बिहार में आन्दोलनकारियों की कांग्रेस सरकार की पुलिस बेहद मारपीट करती थी। पाँच हजार से अधिक लोगों ने सत्याग्रह में भाग लिया, जिसमें डेढ़ हजार से अधिक को सजाएँ हुई। सत्याग्रहियों में अधिकांश समाज के गरीब और उपेक्षित वर्ग के ही लोग थे। डॉ. लोहिया ने कहा- "सरकार की सद्-असद् विवेक बुद्धि को आवाह्न करना फिजूल है। लेकिन समाजवादियों को और बिहार की जनता को शान्तिपूर्ण सिविलनाफरमानी का निश्चय बनाये रखने का मैं आवाह्न करता हूँ।"[1]

1957 और 62 के बीच समाजवादियों की अधिकतम क्षमता दोनों पार्टियों में एकता लाने व आपसी समझ पैदा करने के बजाय एक दूसरे पर कीचड़ उछालने में ही नष्ट हुई। परिणामतः सन् 1962 के चुनाव में राज्य व केन्द्र स्तर पर दोनों का आधार संकुचित हुआ। आपस में ही बंटने के कारण दोनों पार्टियों कें बहुत कम विधायक और सांसद जीत सके। नयी होने के कारण सोशलिस्ट पार्टी को ही ज्यादा नुकसान उठाना पड़ा। इसी बीच डा. लोहिया ने अपनी जाति सम्बन्धी नीति की घोषणा की। 'जिसके अन्तर्गत प्रशासन, व्यवसाय और राजनीति से संबंधित नौकरियों में पिछड़ी जातियों के लिए 60 प्रतिशत आरक्षण का प्रावधान था। उसमें अनुसूचित जातियों और जनजातियों के अतिरिक्त अन्य पिछड़ी जातियाँ, महिलाऐं एवं अल्पसंख्यकों में पिछड़ी जातियाँ शामिल थी।'[2] चूंकि अनुसूचित जातियों और जनजातियों को आरक्षण पहले से प्राप्त था ही इसलिए सोशलिस्ट पार्टी को अन्य पिछड़ी जातियों का जबरदस्त समर्थन प्राप्त हुआ।

सन् 1962 के भारत-चीन युद्ध का कांग्रेस की छवि पर बहुत विपरीत प्रभाव पड़ा। लोहिया ने इस अवसर का उपयोग नेहरू की नीतियों का पर्दाफाश करने में किया। तत्कालीन मुद्दा उत्तरी राज्यों की सुरक्षा का था। इसके लिए लोहिया ने 'हिमालय बचाओ' का नारा दिया। इसके अतिरिक्त सरकार द्वारा अंग्रेजी को प्रशासनिक भाषा के रूप में इस्तेमाल करने पर अपने विरोध को तेज किया। कृषि और औद्योगिक मूल्यों में समानता की माँग का एक और महत्वपूर्ण मुद्दा था जिस पर उन्होंने लोगों को एकत्रित किया। वास्तव में 1. हिमालय बचाओ, 2. अंग्रेजी हटाओं, 3. दाम बांधो, 4. जाति तोड़ो, सोशलिस्ट पार्टी के चार मूलभूत सैद्धान्तिक आधार थे।

---

1. इन्दुमति केलकर -**लोहिया सिद्धांत और कर्म**, पृष्ठ 354.
2. डॉ. सुरेन्द्र प्रताप, डॉ. श्यामा प्रसाद-**लोहिया : विरासत का सवाल,** पृष्ठ 26.

सन् 1964 प्रजा सोशलिस्ट पार्टी और सोशलिस्ट पार्टी के लिए संकट का वर्ष था। इसी वर्ष दोनों पार्टियो में एकता की कोशिश हुईं। इसके लिए इसी वर्ष वाराणसी में एक अधिवेशन किया गया। लोहिया के अन्ध समर्थकों का मुख्य मुद्दा लोहिया को नेता बनाना था। इस वजह से एकता का प्रयास लगभग छिन्न-भिन्न हो गया था। लेकिन एस.एम.जोशी के धैर्य और दीर्घ प्रयत्न से उसे टूटने से बचा लिया गया और एकता संभव हुई। नयी पार्टी का नाम संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी रखा गया। इस प्रक्रिया से समाजवादी आन्दोलन को नया जीवन दान मिला तथा भारतीय राजनीतिक परिदृश्य पर संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी एवं डा. लोहिया का दबदबा रहा। सन् 1965-66 में मूल्य बृद्धि एवं खाद्यान्नों में अभाव के कारण पूरे उत्तर भारत में जबरदस्त आन्दोलन हुए। इसमें संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी की बहुत महत्वपूर्ण भूमिका रही। देश भर में प्रदर्शनों, हड़तालों की बाढ़ आ गयी। महत्वपूर्ण पहलू यह कि ये आन्दोलन तब हो रहे थे जब कांग्रेस चौथे आम चुनाव की तैयारी में लगी थी। रणनीतिक संघर्ष के कार्यक्रम पर राजी होने वाली ज्यादा से ज्यादा वाम, समाजवादी और जनतांत्रिक पार्टियों को एकजुट किया गया। 'जो एकता संघर्ष करने के लिए बनायी गयी थी, धीरे-धीरे चुनावी तालमेल में बदल गयी। कई जगह चुनावी मार्चे बन गये। ये तालमेल और मोर्चे आखिर में कांग्रेस को करारी हार देने में और कई राज्यों में गैर कांग्रेसी सरकारें बनाने में कामयाब रहे।'[1] 'चुनाव से पूर्व लोहिया ने समस्त भारत का तूफानी दौरा कर, 'कांग्रेस हटाओं, देश बचाओं' का नारा दिया। बंगाल, बिहार, उड़ीसा, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, तमिलनाडु, हरियाणा, पंजाब में जो गैरकांग्रेसी सरकारें बनीं वे लोहिया के 'गैरकांग्रेसवाद' का ही परिणाम थी।

(अ) भारत में समाजवादी आन्दोलन का प्रारम्भ व विकास-

भारतवर्ष में समाजवादी आन्दोलन की खोज उन्नीसवीं शताब्दी के आखिरी चतुर्थांश से की जा सकती है। एस.एम.वाइ.ए. नामक अपनी रचना में बंकिमचन्द्र ने समाजवादी अध्ययन का वर्णन किया है। तेहर वर्ष के पश्चात् टैगोर ने 'समाजवाद' शीर्षक के एक लेख में लिखा "परतंन्त्रता से छुटकारा प्राप्त करने तथा एक शक्तिशाली सामाजिक क्रान्ति का अभ्युदय यूरोप में हो रहा था।"[2] स्वामी विवेकानन्द प्रथम भारतीय थे जिन्होंने अपने को 'समाजवादी' कहा तथा जिन्होंने एक सर्वहारा समाज में धन की सर्वशक्तिमत्ता की

---

1. डॉ. सुरेन्द्र प्रताप, डॉ. श्यामा प्रसाद-**लोहिया : विरासत का सवाल,** पृष्ठ 27.
2. रविन्द्रनाथ टैगोर- **सोशलिज्म,**1892.

भर्त्सना केवल नैतिक आधार पर नहीं की बल्कि इसे शोषणकर्ताओं की वास्तविक राजनैतिक शक्ति के परीक्षण के रूप में की। विवेकानन्द ने लिखा है कि "जिनके पास धन है, उन्हें सरकार को अपने अंगूठे के नीचे दबाकर रखा है तथा इन व्यक्तियों ने समस्त साधनों को लूट एवं सुखा रहे हैं।"[1] विवेकानन्द ने निकट भविष्य में कार्य करने वाले वर्ग के पूर्ण वर्चस्व की कल्पना की।

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में औद्योगिक मजदूरों तथा रेलवे मजदूरों की अनेक हड़तालें हुईं। प्रथम बार, व्यक्तियों ने राजनैतिक मंच से यह कहना प्रारम्भ किया कि यह संघर्ष पूँजीवादी शक्तियों तथा मजदूरों के मध्य है। 1904 में दादा भाई नैरोजी ने आमेस्ड्रम में हुई अन्तर्राष्ट्रीय समाजवादी कांग्रेस को सम्बोधित किया। रूस में समाजवादी आन्दोलन की विजय ने भारतवर्ष में अमूल परिवर्तनवादी राष्ट्रवादियों में समाजवादी सिद्धान्त के प्रति गहरी अभिरूचि को उत्पन्न किया। भारतीय आमूल परिवर्तनवादियों के एक समूह ने रूस की प्रकार की व्यवस्था की स्थापना के प्रति सोचना आरम्भ कर दिया तथा राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के लिए कार्यक्रमों के प्रबन्ध का शुभारम्भ कर दिया।

"दि सोशलिस्टस" नामक एक साप्ताहिक की शुरूआत 1923 में बम्बई में की गई। मजदूरों एवं कृषकों के दल बम्बई, बंगाल, एवं पंजाब में गठित किये गये। 1929 में अखिल भारतीय कांग्रेस समिति द्वारा नेहरू की अध्यक्षता में एक सामाजिक प्रस्ताव पारित किया गया।[2] इस समिति ने यह घोषणा की कि समाज की आर्थिक संरचना इस प्रकार से की गई कि शासक वर्ग शोषण करते रहे। कांग्रेस ने समाज की वर्तमान आर्थिक एवं सामाजिक संरचना में क्रांतिकारी परिवर्तनों का सुझाव दिया।पुनः कांग्रेस द्वारा शोषण की समाप्ति के साथ राजनीतिक स्वतंत्रता को सम्मिलित किया गया जो कि भूख से ग्रसित लाखों व्यक्तियों के लिए वास्तविक रूप से आर्थिक स्वतंन्त्रता होगी।

इस प्रकार समाजवादी समूह भारतवर्ष के विभिन्न भागों में फैल गया। सितम्बर 1931 में बिहार में समाजवादी दल का गठन किया गया। इसके पश्चात् बंगाल में श्रमिक दल एवं बम्बई, केरल तथा उत्तर प्रदेश में समाजवादी समूहों की स्थापना की गई।[3]

---

1. "कम्पलीट वर्क ऑफ स्वामी विवेकानंद, वाल्यूम 5, पृष्ठ 364-365.
2. जर्नल प्रेस-इलाहाबाद, 1938, पृष्ठ 34-35.
2. सम्पूर्णानंद- **मैथ्योर्स एण्ड रिफलेक्शन्स**, पृष्ठ 72.

सम्पूर्ण भारत के नेताओं में से जवाहरलाल नेहरू एक ऐसे नेता थे जो कि सबसे पहले समाजवाद के प्रति आकृष्ट हुए। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के 1929 में हुए लाहौर सत्र में उन्होंने कहा, ''मैं स्पष्ट रूप से यह स्वीकार करता हूँ कि मैं समाजवादी एवं गणतंत्रवादी हूँ।''[1] 1929 में नेहरू श्रम संघ कांग्रेस के अध्यक्ष चुने गये। उन्होंने इस संगठन को राष्ट्रीय संघर्ष में भाग लेने के उद्देश्य से कांग्रेस में सम्मिलित किया। कांग्रेस में विद्यमान समाजवादियों को सन्तोष नहीं प्रदान किया क्यों किये वे तो न केवल मुख्य उद्योगों का राष्ट्रीयकरण चाहते थे बल्कि उत्पादन के आवश्यक साधनों का राष्ट्रीयकरण भी चाहते थे। वे अन्य प्रकार का सामाजिक संगठन गठित करने पर विचार करने लगे।

भारत में समाजवादी चिन्तन का आरम्भ तो काफी पहले ही हो गया था, लेकिन समाजवादी आन्दोलन की वास्तविक शुरूआत मई 1934 में हुई जबकि ''कांग्रेस समाजवादी दल' की स्थापना हुई।[3] यह भारत में समाजवाद के ''संगठनात्मक विकास'' में एक महत्वपूर्ण घटना थी और इसकी स्थापना से सभी प्रान्तीय समाजवादी संगठनों और गुटों को अखिल भारतीय आधार तथा मंच मिल गया। 1932-33 में नासिक के केन्द्रीय कारावास में और 1933-34 में उत्तरप्रदेश तथा बम्बई प्रान्तों में समाजवादी गुट स्थापित हो चुके थे और इन्हीं गुटों ने वास्तव में कांग्रेस समाजवादी दल के बीज के रूप में कार्य किये। समाजवादियों का प्रथम अखिल भारतीय सम्मेलन 17 मई, 1934 को पटना में आचार्य नरेन्द्रदेव की अध्यक्षता में हुआ।

कांग्रेस समाजवादी दल के प्रमुख प्रतिपादकों में आचार्य नरेन्द्रदेव, जयप्रकाश नारायण, डॉ.राममनोहर लोहिया, अच्युत पटवर्धन, एम.आर.भसानी, कमला देवी चट्टोपाध्याय, पुरुषोत्तम विक्रमदास एंव गंगाशरण सिंह आदि थे। ये समाजवादी नेता जो कि समाजवादी आन्दोलन के प्राण समझे जाते थे, अत्यन्त ही योग्य नवयुवक, उत्तर भारत के कांग्रेसी और मुख्यतः शहरी मध्यम वर्ग के व्यक्ति थे जिनमें से अनेक ने अपनी राजनीतिक विचारधारा के कारण परिवार या विवाह तक त्याग कर दिया था।

भारतीय समाजवादी चिन्तन का विकास यूरोपीय समाजवाद के सन्दर्भ में दो

---

2. शंकर घोष- **सोशलिज्म एण्ड कम्युनिज्म इन इण्डिया,** पृष्ठ 260.
3. विश्वासचन्द श्रीवास्तव, जितेन्द्र सिंह-**समाजवादः संकल्प और संघर्ष,** पृष्ठ 421.

बातों में भिन्न रहा-प्रथम, भारत में समाजवाद का इतिहास सामाजिक तथा आर्थिक पुनर्निमाण की एक योजना के रूप ही नहीं हुआ, बल्कि वह क्रूर विदेशी साम्राज्यवाद के बन्धनों से राजनीतिक मुक्ति की एक विचारधारा के रूप में भी विकसित हुआ। 1900 ई. से 1947 ई. के काल में भारत की मूल समस्या देश की राजनीतिक स्वतन्त्रता थी और कोई भी लोकप्रिय दल उसकी उपेक्षा नहीं कर सकता था। दूसरे, भारतीय समाजवादी चिन्तन के लिए यह भी आवश्यक था कि वह खेतिहर मजदूरों के उद्धार का भी कोई सिद्धान्त और योजना प्रस्तुत करें। पश्चिमी यूरोप से सामन्तवाद का 18वीं शताब्दी तक प्रायः उन्मूलन हो चुका था किन्तु भारत में सामन्तवाद 20 वीं शताब्दी के मध्य तक फलता-फूलता रहा, अतः सामन्ती अभिजातवर्गीय विशेषाधिकारों पर प्रहार करने का जो काम पश्चिम में पूँजीवादी लोकतन्त्र और पूँजीवादी उदारवाद के प्रवर्तकों ने किया था वह भारत में समाजवादी विचारकों को करना पड़ा। उन्हें पूँजीपतियों के भारी लाभ और ब्याज की बुनियाद को ही चुनौती नहीं देनी थी बल्कि भूमिपतियों के लगान तथा भूमि से बिना परिश्रम के होने वाली कमाई का भी विरोध करना था।

देश के समाजवादी नेताओं ने प्रारम्भ में अपनी भूमिका प्रभावशाली ढंग से निभाई लेकिन आगे चलकर ये आपसी फूट के शिकार बन गये और अपना प्रभाव खो बैठे। भारतीय समाजवादियों की अत्यधिक अस्थिरता के कारण ही हमें भारतीय समाजवादी साहित्य में वह गहराई और परिपक्वता देखने को नहीं मिलती जो प्लेखनाव, बुखारिन अथवा रोजा लुब्जमर्ग की रचनाओं में पायी जाती है। उसका कोई लौकिक सैद्धान्तिक योगदान नहीं हैं, किन्तु उसका महत्व इस बात में हैं कि उसने भारत के खेतिहर, जातिबद्ध तथा अविकसित अर्थतंत्र और राजतंत्र के संदर्भ में मौलिक समाजवादी चिन्तन की आवश्यकता पर बल दिया है। भारतीय समाजवादियों ने इन तीन प्रमुख समस्याओं का गंभीर चिन्तन किया है-अविकसित अर्थतंत्र में किसानों की भूमिका, वर्ग-संघर्ष तथा नियोजन। जर्मन समाजवादी लोकतंत्रवादियों की भाँति भारतीय समाजवादी भी राजनीतिक स्वतंत्रता तथा आर्थिक पुननिर्माण का समन्वय करना चाहते हैं। उन्हें संसदीय तरीकों में विश्वास है। गाँधीवाद तथा भारतीय शासन की लोकतांत्रिक व्यवस्था के प्रभाव के फलस्वरूप उन्होंने हिंसा में विश्वास का पूर्णतः परित्याग कर दिया है, किन्तु पाश्चात्य समाजवादियों के विपरीत वे विकेन्द्रीकरण की धारणा के

अधिक उग्र समर्थक हैं। कदाचित् विकेन्द्रीकरण पर यह जोर भारतीय समाजवाद को गाँधीवाद के विरासत के रूप में मिला है।

हम भारत के समाजवादी आन्दोलन को दो भागों में विभाजित कर सकते हैं- प्रथम, प्राचीन भारतीय समाजवादी विचारधारा तथा दूसरी आधुनिक भारतीय विचारधारा या डॉ. लोहिया के शब्दों में ''असली समाजवादी विचारधारा जिसका प्रादुर्भाव सन् 1934 ई. में हुआ।''**46** डॉ. लोहिया के मतानुसार कांग्रेस में पूंजीवादी विचारधारा का प्राधान्य था तथा 'गाँधीवाद' और कांग्रेसी समाजवाद एक ही विचारधारा के दो रूप थे। समाजवादियों के मत में कांग्रेसी समाजवादी दल जनता में विद्रोह की भावना का विकास न करके उसका समाधान करने वाली थी। स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व तक समाजवादी भी कांग्रेस के साथ संयुक्त होकर राष्ट्रीय स्वतंत्रता आन्दोलन में सक्रिय रहे। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद विचार भिन्नता के कारण सन् 1948 ई. में समाजवादी दल कांग्रेस दल से अलग हो गया।

(ब) भारतीय राजनीति में 1946 से समाजवादी आन्दोलन-

समाजवादी आंदोलन का इतिहास परिवर्तन के आंदोलन की अन्तहीन कथा है, देश की आजादी से पूर्व अंग्रेजी, पुर्तगाली, फ्रांसीसी गुलामी के विरूद्ध न केवल थकानहीन संघर्ष में समाजवादियों ने उल्लेखनीय योगदान किया अपितु आजादी के बाद समता और समता मूलक समाज बनाने तथा एक संगठित और उदार राज्य की स्थापना के लिए जो संघर्ष किया उसका इतिहास में कोई दूसरा उदाहरण नहीं मिलता, संघर्षों की अनगिनत गाथाओं के साथ विचार व चिन्तन के क्षेत्र में भी समाजवादी नेताओं का उल्लेखनीय योगदान रहा है, इनके दार्शनिक चिन्तन ने भारत को वैचारिक क्षेत्र में विश्व के श्रेष्ठ विचारकों की पंक्ति में खड़ा कर देता है। उसी के साथ-साथ पूरे आंदोलन के नेता ओर कार्यकर्ताओं में त्याग और उत्सर्ग की जो विलक्षण शक्ति दिखलाई देती है, उसकी भी किसी से कोई तुलना नहीं की जा सकती।

ब्रिटेन की सरकार ने 19 फरवरी, 1946 को कैबिनेट मिशन की नियुक्ति की घोषणा की। भारत मंत्री ने हाउस ऑफ कामन्स को बताया कि ''कैबिनेट के मंत्रियों के इस विशेष मिशन का उद्देश्य, भारतीय जनमत के नेताओं के साथ सफलतापूर्वक बातचीत के

---

1. विश्वासचन्द श्रीवास्तव, जितेन्द्र सिंह-**समाजवादः संकल्प और संघर्ष,** पृष्ठ 23.

लिए 'वाइसराय के साथ मिलकर कार्य करना है।"[1] 15 मार्च को प्रधानमंत्री ऐटली ने ब्रिटिश संसद में घोषणा की कि ब्रिटिश सरकार का दृढ़ निश्चय है कि भारत में ब्रिटिश शासन समाप्त कर दिया जाएगा तथा देश को अपना भाग्य तय करने की पूर्ण स्वतंत्रता होगी।

अधिकांश नेताओं ने इन गतिविधियों का स्वागत किया। गाँधी ने ब्रिटिश घोषणा के प्रति यह कहते हुए अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की, "इस बार, मैं विश्वास करता हूँ कि ब्रिटिश कुछ वास्तव में करना चाहते हैं।"[2] लेकिन सोशलिस्ट नेताओं की प्रतिक्रिया भिन्न थी। कैबिनेट मिशन के आने के बाद नरेन्द्र देव ने लिखा "राष्ट्रीय सम्मान की नवचेतना के विकास के परिणास्वरूप भारतीय थल सेना एवं नौ सेना में बढ़ती ब्रिटेन विरोधी भावना जिसके कारण वे अविश्वसनीय हो गयी तथा अन्य सेवाओं यहाँ तक कि पुलिस में भी जिसका सामान्यतया राष्ट्रीय सम्मान या राष्ट्रवाद की भावना से प्रायः कोई वास्ता नहीं रहता बढ़ती अनुशासनहीनता ने ब्रिटिश सरकार को बाध्य कर दिया कि वह भारत के प्रश्न को नये आधार पर हल करे।"[3]

कांग्रेस सोशलिस्टों की स्थिति- कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी पर प्रतिबन्ध रहने के बावजूद 1945 के अंतिम तथा 1946 के प्रारम्भिक दिनों में जन-आन्दोलनों तथा हड़तालों के मामलों में सोशलिस्ट अग्रिम मोर्चे पर रहे। बम्बई सरकार की एक रिर्पोट के अनुसार बम्बई में आंदोलन के सम्बद्ध हड़तालों के आयोजन में मुख्य हिस्सेदारी कम्युनिस्टों की थी लेकिन सोशलिस्टों ने भी अरूणा आसफ अली के नेतृत्व में सक्रिय रूप से भाग लिया। आजाद हिन्द फौज के लोगों पर चलाये गये मुकद्मों तथा ब्रिटिश शाही नौसेना के विद्रोह के सम्बंध में कलकत्ता एवं बम्बई में हुए छात्रों के प्रदर्शनों में भी सोशलिस्टों ने भाग लिया। वस्तुतः कम्युनिस्टों और सोशलिस्टों के प्रभाववश ही ब्रिटिश शाही नौसेना की हड़ताल के दौरान हड़तालियों ने ब्रिटिश तथा अमेरिकी झंडों को फाड़कर गिरा दिया तथा उस स्थान पर कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग के झंडों के साथ-साथ लाल झण्डा फहरा दिया। इन आन्दोलनों में सोशलिस्टों की भूमिका का विवरण देते हुए सोशलिस्ट नेता मधुलिमये ने लिखा है- "जनता का उत्साह जो सरकारी दमन तथा आर्थिक संकट के कारण क्षीण हो गया था वह पुनः बढ़ने लगा था। सार्वजनिक प्रदर्शनों की लहर ने पूरे देश को हिला दिया, जिसके चक्रवात में खिचे

1. इण्डियन ऐन्युअल रजिस्टर, 1946, I, पृष्ठ 129.
2. "इंटरव्यू टु एच.एन. ब्रेल्सफोर्ड, पूना, 17 मार्च 1946", कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी, पृष्ठ 276.
3. आचार्य नरेन्द्र देव- **'द कैबिनेट मिशन इन इण्डिया,** नेशनल हेराल्ड, 7 अप्रैल 1946.

हजारों वे लोग थे जो अब तक जनता के असंगठित वर्ग में आते थे। इन सारे प्रदर्शनों में अगस्त क्रांति के मजे सोशलिस्ट तत्वों ने अनिवार्यतः अग्रिम भूमिका की । कम्युनिस्ट दिग्भ्रमित थे और वे बदली हुई परिस्थितियों के साथ अपने को समायोजित नहीं कर पाये थे इनकी पहल जनता तथा अगस्त क्रांति में उल्लेखनीय भूमिका निभाने वाले तत्वों की अपनी थी।"[1]

सी. एस. पी. का पुनर्गठन -

अच्युत पटवर्धन की पहल पर मई 1946 में भारत छोड़ों आन्दोलन के प्रमुख सोशलिस्ट नेताओं की एक अनौपचारिक बैठक बम्बई में हुई जिसमें जे. पी., लोहिया, अरूणा आसफ अली तथा अन्य लोग सम्मिलित हुए। सी. एस. पी. के पुनर्गठन के संबंध में नेताओं के बीच इन बिन्दुओं पर सहमति हुई -

(1) विभिन्न स्थानों पर पहले से कार्यरत पार्टी इकाईयाँ पहले की तरह ही कार्य करती रहेंगी।

(2) पार्टी के पुराने नेता उन प्रांतों में पार्टी की इकाईयाँ गठित करने के लिए स्वतंत्रत होंगे जहाँ पार्टी का कोई संगठन नहीं थे।

(3) पार्टी के मित्रों तथा शुभ चिन्तकों के बिना किसी औपचारिक संबद्धता के उन प्रांतों में जहाँ वे समझे कि ऐसा कार्य करना आवश्यक है, पार्टी के लिये कार्य करने की अनुमति होगी।[2]

इस बैठक में यह आम सहमति थी कि पार्टी का तात्कालिक कार्य राष्ट्रीय आन्दोलन को एक नई दिशा तथा शक्ति प्रदान करना था। इसके लिए पार्टी श्रमिकों, किसानों तथा छात्रों के बीच एक कार्यक्रम के साथ कार्य करेगी। बैठक में पार्टी के तात्कालिक स्वरूप तथा कार्य की दिशा को लेकर उत्पन्न मतभेदों को बहुत सीमा तक सुलझा लिया गया। जब तक स्वतंत्रता का संघर्ष चल रहा था, तब तक पार्टी को कांग्रेस के भीतर रहकर ही कार्य करना था। लेकिन यह केवल क्रांतिकारी सामाजवादियों की सुसंगठित पार्टी रहेगी। सी. एस. पी. कांग्रेस संबंधों के बारे में निर्णय स्वतंत्रता प्राप्ति तक के लिए स्थगित कर दिया गया।

---

1. मधुलिमेय-कम्युनिस्ट पार्टी : **फैक्ट्स एण्ड फिक्शन,** पृष्ठ 54.
2. ए.आई.सी.एस.पी., **आर्गनाइजेशन, जे.पी. पेपर्स,** फा. न. 31.

सोशलिस्ट नेताओं को यह अहसास था कि कांग्रेस देश में सर्वाधिक संगठित राष्ट्रीय तथा सामाजिक शक्ति का प्रतिनिधित्व कर रही थी तथा जनता के मन पर उसका असाधारण प्रभाव था। इसलिए यह, 'जन संघर्ष का सर्वोत्कृष्ट हथियार' था, जैसा कि एक महीने बाद स्वतंत्रता सेनानियों के नाम अपने तीसरे पत्र में जे. पी. ने लिखा, "जब तक यह संभावना है कि इसका क्रांतिकारी उद्देश्यों के लिए प्रयोग किया जा सकता है, तब तक इस हथियार को छोड़ देना मूर्खता का काम होगा अपनी ओर से इसे मजबूत करने का पूरा प्रयास करते हुए तथा जनता के सक्रिय कार्य व सेवा के द्वारा इसे अपने विचारों की तरफ बदलने का प्रयास करते हुए हमें निश्चय ही कांग्रेस के भीतर की रहकर कार्य करना चाहिए"[1] "सोशलिस्टों का विचार था कि, स्वतंत्रता के लिए होने वाले अपरिहार्य संघर्ष में अपनी क्रांतिकारी भूमिका के द्वारा वे किसानों, मजदूरों तथा युवाओं को अपने पक्ष में आकर्षित कर लेंगे, जो कांग्रेस संगठन के भीतर के शक्ति संतुलन को उनकी तरफ झुका देंगे। जैसा कि जे. पी. ने लिखा, "यदि हम जनता के बीच पूरी शक्ति और समर्पण के साथ अपने कार्य को आगे बढ़ाएं तो निःसंदेह ऐसी स्थिति में होंगे कि कांग्रेस के सामान्य लोग हम लोगों के इर्द-गिर्द होंगे तथा हम लोग कांग्रेस को संसदीय मलबे से पुनर्जीवित कर सकेंगे।"[2]

कैबिनेट मिशन से वार्ता-

सी.एस.पी. का पुनरोदय उसी काल में हुआ जब कैबिनेट मिशन की कांग्रेस व मुस्लिम लींग के साथ बातचीत चल रही थी। वाइसराय लार्ड वैवेल भी सारी बातचीत में एक पक्ष थे। संविधान सभा का आयोजन तथा अंतरिम सरकार का निर्माण तात्कालिक समस्यायें थी। सोशलिस्टों का कहना था कि संविधान सभा का गठन केवल अर्धक्रांतिकारी अवस्था में ही हो सकता है और यह तभी संभव है जब हम ब्रिटिश सरकार से मुक्त हो जाएँ। फिर भी प्रारम्भ में ऐसे प्रस्तावों में अविश्वास के बाबजूद सोशलिस्ट कैबिनेट मिशन के साथ बातचीत में सम्मिलित होने के विरूद्ध नहीं थे। जिस समय प्रारम्भिक चर्चायें चल रही थी, इस मामले में सोशलिस्टों का विचार क्या था, इसे 'नेशनल हेराल्ड' में प्रकाशित एक लेख में नरेन्द्रदेव ने स्पष्ट किया था-"इस मामले के सारे तथ्यों को सामने रखकर देखें तो कोई भी व्यक्ति बहुत अधिक भरोसा नहीं करेंगा। फिर भी हम शुभेच्छा की भावना के साथ ऐसी किसी वार्ता या तर्क-वितर्क में सम्मिलित होने से इन्कार नहीं कर सकते। इसमें संदेह नहीं

1. जयप्रकाश नारायण- **टुवॉडर्स स्ट्रगल**, पृष्ठ 229.
2. वही, पृष्ठ 229-30.

कि शान्त वातावरण सहायक होता हैं। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि लोगों को संयमित तरीके से अपने विचारों को खुलकर व्यक्त भी नहीं करना चाहिए। जबकि ब्रिटिश राजनायकों के लिए मौन रहना या कोई टिप्पणी न करना देशभक्ति पूर्ण है तो भारतीय राजनेताओं के लिए यह देशभक्तिपूर्ण है कि शिष्ट भाषा में अपने विचारों को खुलकर व्यक्त करें।''[1]

अप्रैल 1946 में संयुक्त प्रान्त सरकार ने कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी पर लगे प्रतिबंध को उठा लिया। 11 अप्रैल को जे.पी. और लोहिया जेल से मुक्त कर दिये गये जब सर्वाधिक लड़ाकू सोशलिस्ट नेताओं में से जयप्रकाश नारायण तथा राममनोहर लोहिया जेल से रिहा हुए तो सोशलिस्टों के समझौताकारी दृष्टिकोण में नाटकीय ढंग से एकाएक परिवर्तन आया। अब सोशलिस्ट क्षेत्रों में, ''अगस्त क्रांति की भावना'' पुनः व्याप्त हो गयी। रिहा होने के बाद पहली बार जे.पी. के पटना आगमन के अवसर पर 21 अप्रैल को एकत्रित विशाल जनसमूह को संबोधित करते हुए सोशलिस्ट नेताओं ने मंच से अपील की कि, जेल यात्रा पुरानी, पड़ गयी है –अब बन्दूकें और मौतें समय की माँग हैं। जे.पी. ने अपने भाषण में कहा कि ब्रिटिश सरकार ने जो बातचीत की इच्छा व्यक्त की है वह भारत छोड़ो आन्दोलन तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति की कुछ विशेष प्रवृत्तियों का परिणाम है। श्रोताओं को स्मरण दिलाते हुए कि ऐसी वार्ताएं पहले भी हुई थी किन्तु उनका कोई परिणाम नहीं निकला, जे.पी.ने स्पष्ट किया कि, ''कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी ब्रिटिश कैबिनेट मिशन की उस तरह मेजबानी नहीं कर सकती जिस तरह कांग्रेस कर रही है। उन्होंने जनता का आवाह्न किया कि वह ''अंतिम लड़ाई के लिए तैयारी करें।''[2]

कांग्रेस कार्यसमिति की 26 जून की बैठक ने सोशलिस्टों की अपील की ओर कोई ध्यान नहीं दिया। उसने कैबिनेट मिशन के प्रस्तावों–'उसके सभी पक्षों' पर विचार और उनका परीक्षण किया। कांग्रेस का प्रभावी नेतृत्व भारत की समस्याओं के शांतिपूर्ण समाधान का शीघ्र कोई न कोई रास्ता निकालने तथा भारत और इंग्लैंड के बीच संघर्ष को समाप्त करने के लिए उत्सुक और आकांक्षित था। कार्य समिति ने 'केन्द्रीय सत्ता के साथ एक ऐसे संयुक्त लोकतांत्रिक भारतीय संघ जिसे पूरी दुनिया के सभी राष्ट्रों का सम्मान प्राप्त हों' की स्थापना करने के लक्ष्य को व्यक्त करते हुये तथा प्रातों के प्रस्तावित समूहीकरण को अस्वीकार करते

---

1. आचार्य नरेन्द्रदेव- **दी कैविनेट मिशन इन इण्डिया,** नेशनल हेराल्ड, 7 अप्रैल 1946.
2. इण्डियन नेशन- 22 अप्रैल, 1946.

हुए, '16 जून के बयान के अनुसार अंतरिम सरकार के गठन के प्रस्ताव को स्वीकार करने में' अपनी असमर्थता व्यक्त की। किन्तु कांग्रेस कार्यसमिति ने यह निर्णय लिया कि भारत का संविधान तैयार करने के उद्देश्य से कांग्रेस प्रस्तावित संविधान सभा में भाग लेगी। कार्यसमिति ने अपनी संस्तुतियों की पुष्टि हेतु, अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी (ए.आई.सी. सी.) जिसकी आपातिक बैठक 6 व 7 जुलाई को बम्बई में होने जा रही थी, को भेज दिया।

ए.आई.सी.सी. की बैठक नियत समय पर हुई। इसमें एक संक्षिप्त प्रस्ताव यह तय करने के लिए रखा गया कि 'एतद् द्वारा कांग्रेस कार्यसमिति के 26 जून के प्रस्ताव की पुष्टि की जाती है।' बैठक में उपस्थित वामपंथियों ने- जिनमें सोशलिस्ट तथा फॉरवर्ड ब्लॉक के लोग सम्मिलित थे-कांग्रेस कार्यसमिति के इस निर्णय का सामूहिक रूप से विरोध किया।

गाँधी ने प्रतिनिधियों को यह समझाने का प्रयास किया कि कैबिनेट मिशन की 16 मई की योजना में कुछ भी दोष हों, किन्तु उन लोगों की ईमानदारी में कोई संदेह नहीं है जिन्होंने योजना रखी है। ब्रिटेन ने भारत छोड़ने का निर्णय ले लिया है तथा वे एक व्यवस्थित ढंग से ऐसा करना चाहते हैं। उन्होंने इस बात में विश्वास करने से इन्कार कर दिया कि मिशन भारतीय जनता को धोखा देने के लिए इंग्लैंड से चलकर यहाँ तक आया है।[1]

गाँधी के भाषण के बाद फिर बहस शुरू हुई। गाँधी की अपील के बाद भी जिन लोगों ने प्रस्ताव का विरोध किया उनमें प्रमुख थे- जे.पी., अच्युत पटवर्धन तथा अरूणा आसफ अली। दो दिनों तक चली करीब साढ़े सात घंटे की बहस के बाद प्रस्ताव को मतदान के लिये रखा गया तो उसके पक्ष में 204 तथा विरोध में 51 मत पड़े।

अन्तरिम सरकार-

अंतरिम सरकार का गठन करने के तुरंत बाद कांग्रेस अध्यक्ष नेहरू ने जे.पी. को कांग्रेस कार्यसमिति का सदस्य मनोनीत किया। नेहरू ने अपने एक, वक्तव्य में कहा कि गत

1. स्पीच ऐट ए.आई.सी.सी.- **कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी,** जिल्द 84, पृष्ठ 421-22.

जुलाई में जब कांग्रेस कार्यसमिति का गठन किया गया तो उन्होंने कार्यसमिति की सदस्यता के लिए जे.पी. और लोहिया को आमंत्रित किया था। लेकिन उस अवसर पर उन्होंने आमन्त्रण को स्वीकार नहीं किया। जे.पी. ने सी.एस.पी. के महामन्त्री के पद से इस्तीफा दे दिया तथा उनका स्थान अच्युत पटवर्धन द्वारा ग्रहण किया गया। जे.पी.ने कांग्रेस कार्यसमिति में अपने सम्मिलित होने के निर्णय को उचित बताया तथा स्पष्ट किया कि उनके द्वारा इसकी सदस्यता की स्वीकृति करना कांग्रेस में एकता का प्रतीक है। चूकि कांग्रेस के अधिकांश प्रमुख नेता अंतरिम सरकार के सदस्य बन गये थे इसलिए यह सोशलिस्टों का कर्तव्य था कि वे कांग्रेस को अपनी लोकप्रिय तथा क्रांतिकारी छवि को बनाये रखने में सहायता करें। उन्होंने कहा कि उन्होंने कांग्रेस कार्यसमिति की सदस्यता 'कांग्रेस की नीतियों को प्रभावित करने' तथा उसे 'आर्थिक तथा सामाजिक स्वतंत्रता के सी.एस.पी. की व्यापक अवधारणा' से जोड़े रखने के लिए स्वीकार की है। जे.पी.ने स्पष्ट कर दिया कि "जब भी ऐसा लगा कि कांग्रेस कार्यसमिति की उनकी सदस्यता क्रांतिकारी संघर्ष के रास्ते में आ रही है तो वह तत्काल इस्तीफा दे देगें।"[1] जे.पी. ने यह स्पष्ट किया कि इसके पहले जुलाई में जब नेहरू ने उनके लिए कांग्रेस कार्यसमिति की सदस्यता प्रस्तावित की थी तो विशेष परिस्थितियों के कारण उन्होंने प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया था।[2]

संविधान सभा की बैठक 9 दिसम्बर को मुस्लिम लीग के सदस्यों के बिना सम्पन्न हुई। सोशलिस्टों ने संविधान सभा के चुनाव में भाग नहीं लिया था क्योंकि वे ऐसी किसी संस्था में सम्मिलित होने के विरूद्ध थे जिसमें उनकी आस्था नहीं थी। संविधान सभा 20 जुलाई, 1947 तक के लिए स्थगित हो गयी। इसके बाद तीन वर्षो तक बैठकें चलीं तथा सी.एस.पी.की आशंकाओं के विरूद्ध सफलतापूर्वक रियासतों के भारत में विलय तथा भारतीय संविधान के निर्माण का कार्य सम्पन्न किया। पूर्व सी.एस.पी. नेताओं सम्पूर्णानन्द तथा मसानी से सोशलिस्टों के संविधान सभा से बाहर रह जाने की "दुःखान्त भूल" को रोकने की पूरी कोशिश की। लेकिन मुख्य रूप से यह जे.पी. का निर्णय था कि संविधान सभा से अलग रहा जाए क्योंकि उनका यह अनवरत विश्वास था कि ब्रिटिश तब तक भारत नहीं छोड़ेगें जब तक कि उन्हें बलपूर्वक बाहर नहीं किया जाएगा।

---

1. "प्रेस स्टेटमैन्ट", जे.पी. पेपर्स, फा. नं. 32.
2. अमृत बाजार पत्रिका, 22 सितम्बर, 1946.

सत्ता हस्तान्तरण और विभाजन-

20 फरवरी, 1947 को ब्रिटिश प्रधानमंत्री ने कामन सभा में, भारत में सत्ता हस्तान्तरण विषय पर घोषणा की। इस घोषणा में भारत में स्वशासन की स्थापना के लिए क्रमागत ब्रिटिश सरकारों द्वारा किये गये कार्यो का स्मरण दिलाया गया, केबिनेट मिशन भेजे जाने के कारण और पिछले घटनाओं का वर्णन किया गया, उसके प्रस्तावों का उल्लेख किया गया तथा इसके साथ ही कहा गया कि 'हिज मैजेस्टी की सरकार की इच्छा है कि वह कैबिनेट मिशन की योजना के अनुसार अपना दायित्व भारत की सभी पार्टियों द्वारा समर्थित एक संविधान के द्वारा स्थापित प्राधिकार को सौंप दे लेकिन दुर्भाग्यवश फिलहाल वहाँ ऐसी कोई स्पष्ट संभावना नहीं है कि ऐसा कोई संविधान बन सकता है तथा ऐसे प्राधिकार सामने आ सकते है। इस घोषणा के कार्यकर शब्द इस प्रकार थे, ''वर्तमान अनिश्चितता की स्थिति खतरे से परिपूर्ण है और इसे अनिश्चित काल तक जारी नहीं रखा जा सकता। हिज मैजेस्टी की सरकार यह स्पष्ट कर देना चाहती है कि उसकी नीयत निश्चित है कि ऐसे कदम उठायें जाएं जिससे अधिकतम जून 1948 तक उत्तरदायी हाथों में सत्ता का हस्तान्तरण कर दिया जाए।''[1]

स्वतंत्रता प्राप्ति के क्रांतिकारी तरीके के प्रबलतम समर्थक जे.पी.का यह अभिमत कायम रहा कि केवल क्रांति के द्वारा ही वर्तमान शासन में कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन लाया जा सकता था तथा वास्तविक 'स्वराज' की स्थापना हो सकती थी। इससे उनका आशय था एक स्वतंत्र व संयुक्त भारत जिसकी सरकार समाजवादी सिद्धान्तों पर आधारित हों। उन्होंने जोर देकर कहा कि उनका संवैधानिक तरीको में विश्वास नहीं है तथा ब्रिटेन के प्रस्ताव का लक्ष्य केवल स्वतंत्रता आन्दोलन को कमजोर करना है। ब्रिटेन के प्रधानमंत्री के घोषणा के बाद, जे.पी. का यह विचार था कि स्वतंत्रता के लिए अंतिम संघर्ष अपरिहार्य था तथा उसमें उनकी पार्टी की महत्वपूर्ण भूमिका होगी। यह जे.पी. के इस अनुमान पर आधारित था कि कांग्रेस, देश के विभाजन, जिसे श्वेत पत्र में सत्ता हस्तान्तरण की आवश्यक शर्त बताया गया था को स्वीकार नहीं करेगी। जैसा कि जे.पी. ने बाद में इस बात की व्याख्या इस तरह प्रस्तुत की- सोशलिस्ट पार्टी की सम्पूर्ण युक्ति तथा स्थिति के बारे में हमारा आंकलन इस परिकल्पना पर आधारित था कि कांग्रेस कभी भी विभाजन को स्वीकार नहीं करेंगी। यदि विभाजन न स्वीकार किया गया होता तो कांग्रेस के पास अंतरिम सरकार के त्यागपत्र देने

---

1. ट्रैन्सफर ऑफ पावर, 1942 , Ix, पृष्ठ 773

तथा एक बार फिर पूर्ण स्वतंत्रता तथा अविभाजित भारत के मुद्दे को लेकर ब्रिटिश सरकार का सामना करने के अलावा और कोई विकल्प नहीं था।

मार्च 1947 को कानपुर में हुए पार्टी के पाँचवे सम्मेलन के अवसर पर सोशलिस्ट क्षेत्रों में यह आशावाद दिखाई दे रहा था कि बातचीत द्वारा स्वराज्य प्राप्त हो सकता है। सम्मेलन के अध्यक्ष राममनोहर लोहिया ने लोगों को सचेत किया कि देश छोड़कर जाते समय ब्रिटिश देश की एकता को नष्ट करने का प्रयास करेंगे।[1]

जे.पी. अपनी पहले की क्रांति योजना से नीचे आ गये। इस प्रकार अब सोशलिस्टों ने अपना पहले वाला क्रांतिकारी कार्यक्रम छोड़ दिया था। सोशलिस्टों ने देश की विगड़ती साम्प्रदायिक स्थिति को चिन्ता के साथ देखा। लेकिन उनकी सबसे बड़ी चिन्ता यह भी थी कि सत्ता मेहनतकश जनता को हस्तांतरित नहीं हो रही थी। इसलिए उन्होंने सुझाव दिया "इस बात का पूरा ध्यान रखा जाना चाहिए कि सत्ता का हस्तांतरण केवल हाथों में ही नहीं बल्कि मेहनतकश जनता के हाथों में हो। सोशलिस्टों का अब यह आवश्यक कर्तव्य हो गया है कि वह इसके लिए पर्याप्त समर्थन जुटायें कि ब्रिटिश हाथों से सत्ता प्राप्त करने की अधिकारी देश की मेहनतकश जनता की सरकार के अलावा कोई और न हो।"[2]

सोशलिस्ट आत्मनिर्णय के सिद्धान्त के विरोधी नहीं थे। लेकिन उनके अनुसार इस सिद्धान्त का क्रियान्वयन तब किया जाना चाहिए था, जब भारत से ब्रिटिश शासन समाप्त हो जाता। सोशलिस्टों का विचार था कि देश से ब्रिटिश सत्ता समाप्त हो जाने पर राष्ट्रवाद और समाजवाद की तेज लहर के सामने साम्प्रदायिक प्रवृतियाँ नहीं टिक पाती और फलस्वरूप देश का विभाजन नहीं होता। जे.पी. ने सोशलिस्ट पार्टी के छठवें राष्ट्रीय सम्मेलन के अवसर पर मार्च 1948 में सोशलिस्टों के दृष्टिकोण की इस प्रकार व्याख्या की- यह सही है कि कांग्रेस के आत्मनिर्णय के सिद्धान्त को सोशलिस्ट पक्ष की सहमति से स्वीकार किया था। किन्तु इस सिद्धान्त को ब्रिटिश शासन की समाप्ति के बाद लागू किया जाना था, न कि उसकी सहायता और संरक्षण में। कांग्रेस ने जब विभाजन को स्वीकार किया तो उसने आंशिक स्वतंत्रता स्वीकार की पूरी नहीं।

---

1. इण्डियन ऐन्युअल रजिस्टर, 1947, I पृष्ठ 190.
2. जनता (पत्र)- 21 मार्च, 1947.

जे.पी.ने स्वीकार किया कि सोशलिस्टों द्वारा प्रस्तावित रास्ते से गृह युद्ध की स्थिति उत्पन्न हो सकती थी तथा पाकिस्तान को स्वीकार करना गृह युद्ध से बचने का एक रास्ता था। किन्तु जे.पी.के अनुसार "यह जोखिम उठाने लायक था। क्योंकि पाकिस्तान स्वीकार किये जाने पर भी यह जोखिम कम नहीं हुआ बल्कि और अधिक बढ़ गया। सहज और आसानी से सत्ता प्राप्त करना इतना बड़ा प्रलोभन था कि उसके उन दुःख परिणामों से नहीं रोका जा सका जिसे इतिहास दिखा चुका है।"[1]

स्वतंत्र राजनैतिक दल के रूप में आविर्भाव-

द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति तथा 15 अगस्त, 1947 को ब्रिटेन तथा भारत को सत्ता हस्तान्तरण के अन्तराल में कांग्रेस के अधिकारी नेतृत्व तथा सोशलिस्टों के आपसी मतभेद बढ़ने लगे। सोशलिस्ट अब अपनी माँगों, जो मुख्यतः सैद्धान्तिक थे, को लेकर पहले से अधिक आग्रही हो रहे थे। कांग्रेस संगठन से अलग स्वतंत्र रूप में कार्य करने की प्रवृत्ति भी उनमें स्पष्ट दिखाई दे रही थी। दूसरी और कांग्रेस का अधिकारी नेतृत्व संगठन में एकता ओर अनुशासन के प्रश्न पर पहले से अधिक जोर देने लगा था।

सोशलिस्टों की घोषित विचारधारा प्रारम्भ में लगभग पूर्ण रूप से मार्क्सवाद पर आधारित थी। परन्तु समय बीतने के साथ सोशलिस्टों ने उसमें काफी संशोधन कर दिया था उन्होंने अपने सिद्धांतों में उदारवाद, लोकतंत्रवाद और गांधीवाद के अनेक तत्वों का समावेश कर लिया था।

मार्च 1947 को कानपुर में हुए पार्टी सम्मेलन में पार्टी के नाम से "कांग्रेस" हटा दिया और पार्टी का नया नाम सोशलिस्ट पार्टी स्वीकार किया। अब सोशलिस्ट पार्टी की सदस्यता गैर-कांग्रेस जनों के लिए भी खोल दी गई। इन परिवर्तनों ने यह संकेत दिया कि पार्टी अब राष्ट्रवादिता से समाजवाद को अधिक महत्व देगी। इस सम्मेलन के सम्पन्न होने के पश्चात् पार्टी समर्थक पत्र जनता ने सम्पादकीय टिप्पणी में लिखा-"तात्कालिक कार्य सन्दर्भ की माँग है कि राजनैतिक प्रयासों का स्वराघात अब "कांग्रेस" से हटकर समाजवाद हो, आर्थिक समता और सामाजिक न्याय के अभाव में स्वतन्त्रता निरर्थक है। स्वतन्त्रता का

1. **"ऐनुअल रिपोर्ट ऑफ जनरल सेकेटरी" सोशलिस्ट पार्टी, रिर्पोट ऑफ द सिक्सथ ऐनुअल कॉन्फरेन्स, नासिक 1946**, पृष्ठ 91-92.

अर्थ के विस्तार के लिए अब अतिरिक्त संसदीय कार्यकलाप पर जोर देने की आवश्यकता है।"[1]

कानपुर राष्ट्रीय सम्मेलन में सोशलिस्ट पार्टी का एक विस्तृत पॉलिसी स्टेटमेन्ट (नीति अभियुक्ति) का एक प्रारूप प्रतिनिधियों के सम्मुख रखा गया जिसे उन्होंने सामान्य रूप से स्वीकृत किया। पार्टी के पॉलिसी स्टेटमेन्ट का यह प्रारूप, जिसे पार्टी के मेरठ और फैजपुर के अभिधारणा(थीसिस) का संशोधित रूप कहा गया, कुछ अतिरिक्त संशोधनों के पश्चात् अगस्त 1947 में सम्पन्न पार्टी के नागपुर जनरल काउन्सिल की बैठक में स्वीकार किया गया। पार्टी का यह पॉलिसी स्टेटमेन्ट, जो देश के जन-जीवन के लगभग सभी पक्षों पर प्रकाश डालता था लगभग पार्टी की विचारधारा का सारभाग बना रहा। पार्टी के पॉलिसी स्टेटमेन्ट द्वारा निर्धारित उद्देश्य देश में केवल एक गणतन्त्रात्मक शासन मात्र की स्थापना न होकर लोकतन्त्रात्मक समाजवादी समाज की स्थापना करना था, जिसमें, प्रत्येक व्यक्ति श्रमजीवी है, सभी व्यक्ति, स्त्रियों समेत समान हैं, जहाँ सभी के लिये समान अवसर हैं, जहाँ पारिश्रमिक में इतना इन्तर नहीं है कि समाज में वर्ग भेद पैदा हों। जहाँ सारी सम्पत्ति समाज की है, जहाँ विकास योजनाबद्ध है, जहाँ जीवन विपुल, समृद्ध तथा सुन्दर है।

कानपुर राष्ट्रीय सम्मेलन के पश्चात् सोशलिस्ट पार्टी द्वारा कांग्रेस के अधिकारी नेतृत्व से समाजवादी नीतियों को स्वीकार करने ओर लागू करने की अधिकाधिक मांग की जाने लगी। इस समस्या को टालने के किसी भी संकेत को संदेह में देखा जाने लगा। सम्मेलन के तुरन्त बाद पार्टी महासचिव जे.पी. ने दुराशा व्यक्त की कि इस बात की गम्भीर सम्भावना है कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् कांग्रेस एक अनुदार पार्टी में परिवर्तित हो जाये। इस विषय पर सोशलिस्ट पार्टी की ओर से स्पष्टीकरण देते हुए जनता में प्रकाशित अपने लेख में जे.पी. ने कहा कि "उनकी पार्टी कांग्रेस को समाजवाद की ओर ले जाने का प्रयास करेंगी। यदि यह प्रयास विफल रहा तो संगठनात्मक विच्छेद अपरिहार्य होगा।"[2]

महात्मा गाँधी सोशलिस्टों को कांग्रेस में बनाये रखने के इच्छुक थें। वे चाहते थे कि सोशलिस्ट कांग्रेस की नीतियों में प्रगतिवादी परिवर्तनों हेतु प्रयास करें। किन्तु वे यह भी

1. "सोशलिस्ट पार्टी, **न्यू ओरियन्टेशन**", जनता, 9 मार्च, 1947.
2. जयप्रकाश नारायण- **"द पार्टी एण्ड द कांग्रेस"** जनता, 30 मार्च, 1947.

चाहते थे कि सोशलिस्ट हिंसात्मक साधनों का सैद्धान्तिक रूप से भी परित्याग कर दें, जल्दबाजी और उतावली में कार्य न करें तथा दक्षिणपंथी नेतृत्व को तब तक सहयोग दें जब तक अपने अनुशासन और उदाहरण के द्वारा पूरे कांग्रेस संगठन को अपने विचारों और सिद्धान्तों के अनुसार परिवर्तित करने में सफल हो जायें।

सोशलिस्टों के सामाजिक और आर्थिक पुनर्निर्माण सम्बन्धी विचारों और कार्यक्रमों को गाँधी पहले ही समर्थन दे चुके थे। सोशलिस्टों द्वारा प्रस्तावित कांग्रेस संगठन का विघटन करने के सुझाव पर भी उन्हें गाँधी का समर्थन मिला। वस्तुतः इस प्रकार का प्रस्ताव सोशलिस्टों ने 8 माह पूर्व किया था। अपनी शहादत के एक दिन पूर्व गाँधी ने कांग्रेस को एक राजनैतिक दल के रूप में विघटित कर देने तथा उसे एक गैर-राजनैतिक "लोक सेवक संघ" के रूप में प्रस्फुटित होने की योजना को लिखित रूप में रखा। गाँधी का यह प्रस्ताव यदि कांग्रेस ने स्वीकार कर लिया होता तो यह सोशलिस्टों और उनके दल के लिए बहुत अनुकूल और लाभदायक होता।

सोशलिस्टों की विसंगति पूर्ण स्थिति-

31 जनवरी को गाँधी के हत्याकाण्ड के पश्चात् सोशलिस्टों ने पटेल पर कर्तव्य-च्युति और लापरवाही का आरोप लगाया और इसके निमित्त सांकेतिक प्रायश्चित के लिये गृह मन्त्री पद से त्याग-पत्र की मांग की तथा साथ ही उन्होंने कांग्रेस कार्यसमिति अथवा शासन में उत्तरदायित्व निभाने की भी पेशकश की। **1** इस विवाद के दौरान पटेल ने कांग्रेस संसदीय पार्टी की एक बैठक में यह रहस्योद्घाटन किया कि 'सोशलिस्टों को कार्यसमिति में स्थान देने की पेशकश की गयी थी, जिसे उन्होंने अस्वीकार किया। उन्हें केन्द्रीय सरकार में भागीदारी देने का प्रयास किया गया था। उन्होंने अस्वीकार कर दिया। इस पर मैंने प्रस्तावित किया कि उन्हें अपने तरीके से, बिना किसी रूकावट के प्रयोग के लिये एक प्रान्त दे दिया जाय किन्तु उन्होंने इसे भी अस्वीकार कर दिया।' पटेल ने शिकायत की कि सोशलिस्ट अब राष्ट्र की इस सबसे बड़ी विपत्ति का दुरुपयोग अपनी पार्टी के राजनैतिक लाभ के लिये कर रहे हैं। जे.पी. ने पटेल के प्रत्यारोपों का खण्डन किया। किन्तु वे कांग्रेस आलाकमान को सन्तुष्ट नहीं कर सकें। पटेल की शक्ति को तोड़ने की सोशलिस्टों का अन्तिम प्रयास विफल रहा।

---

1. नेशनल हेराल्ड- 4 फरवरी, 1948.

इन विवादों के बीच कांग्रेस कार्यसमिति ने संगठन संविधान में कुछ दूरगामी प्रभाव वाले परिवर्तनों का प्रस्ताव पारित कर दिया। कांग्रेस का लक्ष्य 'कोआपरेटिव कॉमनवेल्थ' घोषित किया गया, जबकि सोशलिस्टों की मांग थी कि, यह घोषित लक्ष्य 'समाजवादी समाज' हो। कार्यसमिति द्वारा पारित सबसे महत्वपूर्ण परिवर्तन प्रावधान यह था कि कांग्रेस की किसी निर्वाचित संस्थान, जिसमें प्राथमिक कांग्रेस पंचायत सम्मिलित थी, का सदस्य कोई ऐसा व्यक्ति नहीं बन सकता जो कि एक ऐसे राजनैतिक पार्टी का सदस्य हों, जिसके अलग से संविधान, सदस्यता और कार्यक्रम हो। अखिल भारतीय कांग्रेस समिति की बैठक में सोशलिस्टों ने संशोधन प्रस्तुत किये और इस बात को इंगित किया कि कार्यसमिति के प्रस्तावित परिवर्तन गाँधी द्वारा दिये गये सुझावों से पूर्णतया विपरीत थे। किन्तु सोशलिस्टों के विरोध के बाबजूद कार्यसमिति के द्वारा पारित प्रस्ताव स्वीकृत हो गये। इस अवसर पर नरेन्द्रदेव ने कहा कि ''अब कांग्रेस में सोशलिस्टों के लिये कोई स्थान नहीं रह गया।''[1]

नरेन्द देव और जे.पी. ऐसे वरिष्ठ सोशलिस्ट नेता, जैसा कि नासिक सम्मेलन में दिये गये उनके भाषणों से प्रकट होता है, कांग्रेस संविधान में उपर्युक्त परिवर्तनों से पूर्व वे कांग्रेस छोड़ने के प्रश्न पर असमंजस में थे। वरिष्ठ नेताओं में लोहिया एक ऐसे वरिष्ठ नेता थे जिन्होंने सबसे बाद में कांग्रेस छोड़ देने का निश्चय किया।

अनिश्चिता का अन्त-

सोशलिस्ट पार्टी के राष्ट्रीय कार्यसमिति की 15,16 और 17 मार्च, 1948 को बम्बई में आपात बैठक हुयी। इस बैठक में अखिल भारतीय कांग्रेस समिति के निर्णय से उत्पन्न स्थिति पर विचार किया गया। बैठक में निर्णय लिया और प्रस्ताव पारित किया कि पार्टी के सभी सदस्य कांग्रेस की प्राथमिक सदस्यता त्याग देंगे। कार्यसमिति ने इस विषय पर अन्तिम निर्णय पार्टी के राष्ट्रीय सम्मेलन द्वारा लेने के लिये निश्चय किया। इस अवसर पर पार्टी कार्यसमिति ने पूँजीपतियों के स्वार्थ हित में कार्य करने के लिये कांग्रेस के अधिकारी नेतृत्व की कड़ी आलोचना की। बैठक ने कांग्रेस द्वारा तैयार किये गये भारतीय संविधान के प्रारूप की भी तीखी आलोचना की और कहा कि, ''यह उन जनतान्त्रिक-समतावादी आदर्शों

1. नेशनल हेराल्ड- 23 फरवरी 1948

जिन्होंने स्वतन्त्रता के लिये लम्बे संघर्ष का पथ प्रदर्शन किया था, के अनुरूप नहीं है।"[1]

सोशलिस्ट पार्टी का छठवाँ वार्षिक राष्ट्रीय सम्मेलन नासिक में 19 से 21 मार्च 1948 को सम्पन्न हुआ। इस सम्मेलन में पार्टी और देश से सम्बन्धित विभिन्न समस्याओं पर विचार किया गया। नरेन्द्रदेव और जे.पी. ने इस बात का जिक्र किया कि गाँधी ने कांग्रेस के राष्ट्रीय स्वरूप से अलग होकर एक राजनैतिक पार्टी का रूप ले लेने और उसका स्तर गिरने से बचाने का भरसक प्रयास किया था। राजनैतिक स्थिति पर प्रस्ताव प्रस्तुत करते हुये नरेन्द्र देव ने कहा कि "गाँधी जी ने कांग्रेस के लिये एक उज्जवल भविष्य की कामना की थी। वे चाहते थे कि कांग्रेस एक लोक सेवा संघ बन जाये। अब गाँध नहीं रहें तो इन लोगों ने कांग्रेस को मात्र एक राजनैतिक दल के रूप में लघुकृत कर दिया है।"[2]

सम्मेलन ने पार्टी की राष्ट्रीय कार्यसमिति द्वारा पारित प्रस्तावों की अभिपुष्टि की और पार्टी के सदस्यों को निर्देश दिया गया कि वे कांग्रेस की सदस्यता से त्याग पत्र दे दें। परिणामतः पार्टी की राष्ट्रीय कार्य समिति ने पार्टी के सदस्यों द्वारा कांग्रेस छोड़ने के लिए 15 अप्रैल, 1948 अन्तिम तिथि निश्चित की। पार्टी सम्मेलन के निर्णय और राष्ट्रीय कार्यसमिति के निर्देश के अनुसार पार्टी के अधिकांश सदस्यों ने समयावधि के भीतर कांग्रेस की सदस्यता से त्याग पत्र दे दिया। अब पार्टी एक स्वतन्त्र राजनैतिक पार्टी-सोशलिस्ट पार्टी के रूप में आविर्भूत हुयी। 1949 में सोशलिस्ट पार्टी के पटना अधिवेशन में ही पार्टी का नया विधान नीति वक्तव्य नए सिरे से तैयार हुआ। ब्रिटेन की लेबर पार्टी के ढांचे से मिला जुला एक विधान ढ़ाँचा पटना सम्मेलन में पेश हुआ।

जून 1950 में अशोक मेहता की अध्यक्षता में सोशलिस्ट पार्टी का वार्षिक अधिवेशन मद्रास में हुआ। इस सम्मेलन में कुछ प्रतिनिधियों ने 'जनतांत्रिक समाजवाद' के बारे में अपना मतभेद प्रकट किया। इस मुद्दे को स्पष्ट करने के लिए आचार्य नरेन्द्र देव ने 'जनतांत्रिक समाजवाद ही क्यों' शीर्षक से एक बड़ा लेख लिखा। उन्होंने कहा कि "चूंकि रूसी क्रांति के बाद रूस की कम्यूनिस्ट पार्टी ने वहाँ श्रमिक वर्ग के अधिनायकत्व के नाम पर एक स्थाई सा पार्टी अधिनायकत्व कायम कर समाजवाद और मार्क्सवाद के स्वरूप को विकृत कर उन्हें

1. नेशनल हेराल्ड- 18 मार्च 1948
2. **सोशलिस्ट पार्टी, रिपोर्ट ऑफ द सिक्सथ कॉन्फरेन्स, बम्वई 1948** पृष्ठ 5.

'टोटेलिरेयन कम्युनिज्म' में बदल डाला है, इसलिए समाजवाद के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान कराने के लिए उसके पहले 'जनतांत्रिक' शब्द जोड़ना आवश्यक हो गया है।"[1]

सन् 1952 में आजाद भारत में पहला आम चुनाव हुआ। अपने चुनावी घोषणा पत्र में सोशलिस्ट पार्टी ने बैकों से अधिकृत बीमा कम्पनियों के राष्ट्रीयकरण को प्राथमिकता देते हुए देशी पूँजी से अधिकृत खानों तथा चाय बागान के साथ-साथ बुनियादी धंधों तथा वस्त्र, सीमेंट और चीनी आदि धन्धों के राष्ट्रीयकरण पर जोर दिया। कृषि समस्याओं पर आर्थिक समानता की समस्या पर कांग्रेस पार्टी एवं कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यक्रम की कड़ी आलोचना करते हुए कहा गया कि छोटे जमींदारों का प्रबंध करते हुए जमींदारी बिना किसी मुआवजे के खत्म की जाय। सोशलिस्ट पार्टी यह भी चाहती थी है कि जमीनों पर फिर से इस तरह बँटवारा हो कि वही जमीन रखने के अधिकारीं हो जो अपने हाथ से खेती करने को तैयार हों और किसी खेतीहर परिवार के पास औसत की तीस एकड़ से अधिक जमीन न हो।

इस चुनाव में सोशलिस्ट पार्टी को कड़ी हार का सामना करना पड़ा। आचार्य नरेन्द्रदेव सहित सभी बड़े नेता चुनाव हार गये। फिर भी सोशलिस्ट पार्टी को कम्युनिस्ट पार्टी सहित अन्य बामपंथी दलों से अधिक मत प्राप्त हुए। पार्टी की हार की समीक्षा करते हुए कहा गया कि 'हमारी पार्टी ने समाजवाद और सामाजिक बदलाव की भी अपील की। उसका आकर्षण कुछ कम हो गया। क्योंकि कांग्रेस और खासकर पं. नेहरू ने भी समान उद्देश्यों का दावा किया। लोग अनुभव के द्वारा ही समझ पाएंगे कि कांग्रेस वह नहीं मानती है जो वह कहती है।' जय प्रकाश के शब्दों में "समाजवादी दल की विफलता का मुख्य कारण यह था कि लगभग प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र में कांग्रेस के विरूद्ध उम्मीदवार बड़ी संख्या में खड़े हो गये थे जिसके फलस्वरूप विरोधी मतों में विभाजन हो गया।"[2]

पहले आम चुनाव के बाद पार्टी की नीति समाजवाद और लोकतंत्र में विश्वास करने वाली प्रगतिशील और क्रांतिकारी ताकतों को एकताबद्ध करने की थी। यह चुनाव में पार्टी की हार की प्रतिक्रिया थी। लोगों ने मानना शुरू कर दिया था कि उन्हें अब बड़ी और

1. डॉ. सुरेन्द्र प्रताप, डॉ. श्यामाप्रसाद- **डॉ. लोहिया विरासत का सवाल** पृष्ठ 23.
2. वही, पृष्ठ 24.

व्यापक पार्टी बनानी चाहिए। यह केवल किसान, छात्र, और मजदूरों में काम के आधार को विस्तृत और मजबूत बनाकर ही नहीं करना बल्कि छोटी-छोटी पार्टियों को मिलाकर और इकट्ठा करके भी करना है। रिवोल्यूशरी सोशलिस्ट पार्टी का एक हिस्सा, बोल्शेविक लेनिनिस्ट ग्रुप जैसी अनेक छोटी पार्टियां 1947-48 में ही सोशलिस्ट पार्टी में मिल चुकी थीं। किसान-मजदूर प्रजा पार्टी के साथ विलय की बात चली। डा. अम्बेडकर जिनके साथ सोशलिस्ट पार्टी का चुनावी तालमेल था, इस विलय के खिलाफ थे। वे मानते थे कि 'किसान मजदूर प्रजा पार्टी' एक प्रतिक्रियावादी पार्टी है। उन्होंने कहा इस विलय से हमारे रिश्ते विगड़ जाएंगें। विलय के सबसे बड़े पक्षधर डा. लोहिया और अशोक मेहता थे।

मई 1952 को पंचमढ़ी में पार्टी में नयी जान फूंकने के लिए लोहिया की अध्यक्षता में विशेष अधिवेशन हुआ। इसमें चुनाव की हार की शव परीक्षा न करके उसे ठोस कार्यक्रम और नीतियों से लैस करने का उद्देश्य रखा गया। पार्टी में नयी जान फूंकनी इसलिए भी जरूरी थी कि कमला देवी चट्टोपाध्याय, अच्युत पटवर्धन और अरूणा आसफ अली ने पार्टी से अपना नाता तोड़ लिया था और यूसुफ मेहर अली का देहान्त हो गया था। पार्टी को लोहिया ने समाप्त होने से बचा लिया। इस सम्मेलन में पार्टी को एक नया धरातल देने की कोशिश की गयी। पूँजीवाद और कम्युनिज्म की कमजोरियों और अपूर्णताओं की ओर ध्यान आकृष्ट करते हुए बिजली और तेल द्वारा लघु-उद्योगों के विकास को समाजवाद की प्रगति के लिए आवश्यक बताया गया। अपने अध्यक्षीय भाषण में लोहिया ने कहा- "साम्यवादी तर्क के अनुसार स्वतन्त्रता की पूर्णता रोटी की पूर्णता प्राप्त होने के बाद आएगी। लेकिन चूंकि साम्यवाद अविकसित देशों को विवेकपूर्ण बनाने का कोई रास्ता नहीं दिखलाता, अतः सामान्य लक्ष्य वही बन जाता है जो इस प्रक्रिया में वह अपनाता है, वह नहीं जिनका वह उपदेश देता है। ऐसा लगता है कि साम्यवाद के प्राप्त सामान्य लक्ष्य मात्र केन्द्रित पार्टी, राज्य व उत्पन्न चीजें हैं। साम्यवाद दो तिहाई दुनियाँ को न रोटी दे सकता है, न स्वतंत्रता।"[1]

डॉ. लोहिया द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों का, मार्क्सवाद को चुनौती समझकर सम्मेलन के कुछ सदस्यों द्वारा विरोध किया गया। जयप्रकाश ने मार्क्सवाद के प्रति अपनी

---

1. डॉ. सुरेन्द्र प्रताप, डॉ. श्यामाप्रसाद- **डॉ. लोहिया विरासत का सवाल** पृष्ठ 24.

निष्ठा दुहराते हुए लोहिया के विचारों का स्वागत किया और कहा कि 'ये विचार समाजवादी चिन्तन की अपूर्णताओं को दूर करने में सफल होगें। पंचमढ़ी सम्मेलन के बाद एक वक्तव्य में कहा गया कि 'जो पार्टियां राष्ट्रीय स्वतंत्रता तथा जनतंत्र के प्रति निष्ठावान हैं तथा जो देशातीत सम्बन्धों और कम्युनिस्ट तानाशाही की प्रेरणा द्वारा पराभूत नहीं हुई हैं, सोशलिस्ट पार्टी उनको निकट लाने तथा उनके सहयोग से काम करने की इच्छुक है, इस आशा से कि इन प्रयत्नों द्वारा लक्ष्य और नीति की अभिन्नता प्रकट होगी तथा प्रगतिवाद और समाजवाद की सुसंगठित पार्टी बनाने के लिए अवसर पैदा होगें।' इस वक्तव्य ने प्रजा सोशलिस्ट पार्टी से विलय का साधन बनाया।

1 जून, 1952 को यह निश्चय हुआ कि श्रीमती सुचिता कृपलानी के नेतृत्व में सोशलिस्ट पार्टी और किसान मजदूर पार्टी के सदस्य संसद में मिलकर काम करेंगे। तब अशोक मेहता ने घोषित किया कि विलय की ओर यह पहला कदम है। सितम्बर में विलय के सम्बन्ध में विचार करने के लिए बम्बई में जनरल कौंसिल की मीटिंग हुई। प्रजा सोशलिस्ट पार्टी और किसान मजदूर पार्टी के विलय के बाद नयी पार्टी का नाम 'प्रजा सोशलिस्ट पार्टी' रखा गया। इस पर अशोक मेहता ने लिखा- ''सोशलिस्ट पार्टी तथा किसान मजदूर पार्टी के प्रस्तावित विलय से मैं अत्यधिक खुश हूँ, भावविह्वल हूँ। मैं मानता हूँ कि यह न केवल आम चुनाव के बाद बल्कि आजादी प्राप्त होने के बाद की एक बड़ी राजनीतिक घटना है। हम विलय का पूरे हृदय से स्वागत करें, तभी लोग इसे दुआ देंगे, स्वीकार करेंगे। हम इसे ठीक से पहचानें, यह हमारे देश के राजनीतिक जीवन में एक मोड़ है।''[1]

1953 में जवाहरलाल नेहरू के निमंत्रण पर जयप्रकाश उनसे मिले। कांग्रेसी मंत्रिमंडलों में प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के नेताओं के शामिल होने की संभावना पर विचार किया गया। आचार्य कृपलानी एवं अशोक मेहता ने इसका समर्थन किया लेकिन डा. लोहिया ने इसका कड़ा विरोध किया। उन्होंने कहा-''प्रजा सोशलिस्ट पार्टी को आगे किसी व्यर्थ उत्कंठा में न फंसकर अपने को एक रचनात्मक विद्रोह में लगाना चाहिए, जिससे अकाल से लड़ा जा सके और प्रशासन को क्रांतिकारी बनाया जा सके। सरकारी पार्टी (कांग्रेस) के प्रति नजरिये के केन्द्रीय मुद्दे से जुड़ा और इतना ही महत्वपूर्ण मुद्दा काम के कार्यक्रम का है। भारत सामान्य

1. डॉ. सुरेन्द्र प्रताप, डॉ. श्यामाप्रसाद- **डॉ. लोहिया विरासत का सवाल** पृष्ठ 25.

सिद्धान्तों एवं उद्देश्यों की बात करने वालों से भरा पड़ा है। पर यह अर्थहीन है क्योंकि सब लोग इन्हें मान लेगें किन्तु निश्चित और ठोस लक्ष्यों से कतरा जाएंगे।"1

पार्टी संकट –

जनवरी, 1955 में कांग्रेस ने अपने मद्रास के पास स्थित आबड़ी सम्मेलन में समाजवादी ढांचे का समाज (सोशलिस्टक पैटर्न ऑफ सोसाइटी) प्रस्ताव पारित किया। इसके पीछे गाँधीवादी अर्थशास्त्री मन्नारायण का प्रयास था। सौराष्ट्र के पूर्व मुख्यमंत्री गाँधीवादी कांग्रेस अध्यक्ष यू.एन.ढेबर पिछड़ी जाति के थे। अशोक मेहता और उनके सहयोगियों ने कांग्रेस प्रस्ताव का तत्काल स्वागत किया और कहा कि कांग्रेस समाजवादी पार्टी के कार्यक्रमों के निकट आ रही है। लेकिन मधुलिमये ने कटु सत्य कहा कि "नेहरू की यह चुनावी चाल है जिससे समाजवादियों को दूर रहना चाहिए। बम्बई प्रजा सोशलिस्ट पार्टी ने मधुलिमये को इस आलोचना पर दल से निष्कासित कर दिया।" 2

डॉ. लोहिया ने इस निष्कासन को अनुचित बताया। उधर मेहता ग्रुप के नौ सदस्यों ने नेहरू ब्राण्ड समाजवाद का समर्थन किया जुलाई, 1955 में डॉ. लोहिया को भी प्रजा समाजवादी पार्टी की सदस्यता से निकाल दिया गया। तब मधुलिमये गोवा केन्द्रीय कारागार में बन्द थे। सन् 1946-52 के दौरान बम्बई समाजवादी पार्टी बड़ी मजबूत थी। इसका कारखाने के मजदूरों, छात्रों और बुद्धिजीवियों पर खासा असर था। बम्बई नगर निगम में पार्टी के कई निर्वाचित पार्षद थे और लगभग बम्बई की एक तिहाई आबादी ने समाजवादी पार्टी के हक में वोट डाले थे। लिमये-लोहिया निष्कासन से पार्टी को भारी धक्का पहुँचा और समाजवादी आन्दोलन को क्षति पहुँची। 3

1956 में सोशलिस्ट पार्टी के पुनर्गठन के बाद लोहिया ने उसमें व्यापक वैचारिक परिवर्तन किया। बिहार में एक व्यापक और महत्वपूर्ण 'सिविल नाफरमानी' आन्दोलन चलाया। उधर प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के गया अधिवेशन की अध्यक्षता करते हुए आचार्य नरेन्द्रदेव ने राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ करने पर जोर दिया और कहा कि "एक भाषा, एक कानून, एक पोशाक और कुछ सामान्य व्यवहार राष्ट्रीय भावना को सुदृढ़ बनाने में बहुत बड़े

---

1. डॉ. सुरेन्द्र प्रताप, डॉ. श्यामाप्रसाद- **डॉ. लोहिया विरासत का सवाल** पृष्ठ 23.
2. नेहरू सोशलिज्म- **ए मियर वर्ड प्ले, 'साधना' मराठी साप्ताहिक बम्वई, 20 नवम्बर** 1954.
3. मधुलिमेय- **पॉलिटिक्स आफ्टर फ्रीडम,** पृष्ठ 19.

सहायक बन सकते हैं।''1

1957 के चुनाव में दोनों दलों ने अपने को दीन-हीन हार से बचाया। जिन कुछ स्थानों पर दोनों दलों द्वारा अपने-अपने प्रत्याशी एक दूसरे के विरूद्ध खड़े करने का अभ्यास किया गया वह सामूहिक आत्महत्या जैसा प्रतीत हुआ। परन्तु दोनों दलों के पुर्नएकीकरण की बातचीत असफल हो गई क्योंकि लोहिया ने सदैव इस बात पर बल दिया कि प्रजा समाजवादी पार्टी बिना किसी संकोच के समाजवादी पार्टी को स्वीकार किया जाना चाहिए।

संयुक्त समाजवादी पार्टी के गठन में डॉ. लोहिया की भूमिका–

1962 के तृतीय सामान्य चुनावों तक लोहिया का विचार था कि समाजवादी पार्टी अकेले ही चुनाव लड़े। लोहिया का यह मत था कि जो भी परिणाम घटित हों, उनका दल दूसरे राजनीतिक दलों के साथ स्थानीय चुनावी तालमेल सम्बन्धी दाँवपेंचों को स्वीकार नहीं कर सकता। 1962 के सामान्य चुनाव के पश्चात समाजवादी दलों सम्बन्धी विचारविमर्श को पुनर्जीवित किया गया। दोनों दल इस विश्लेषण तक पहुँचे कि एक समेकित समाजवादी पार्टी के बिना चुनाव में विजय पाना कठिन कार्य है। लोहिया ने अपने एक भाषण में कहा, ''उनकी पार्टी की नीति पर आधारित नवीन समाजवादी पार्टी का गठन किया जा सकता है तथा प्रजा समाजवादी पार्टी के नेतृत्व के विषय में हम अपने को इतना झुका लेने को तैयार हैं कि यदि वे चाहें तो समस्त स्तरों पर सौ प्रतिशत नेतृत्व ले सकते हैं।''2

दल के भोपाल सम्मेलन में लोहिया ने कांग्रेस के विरूद्ध तक विरोधी दल पर बल दिया। 1964 में लोहिया ने अपने दल के व्यक्तियों को सलाह दी कि वे प्रजा समाजवादी पार्टी में बिना शर्त अपना विलय कर लें।28 सदस्यों की एक समिति का गठन किया गया तथा उसे कार्यक्रम के प्रतिपादन एवं प्रस्तावित दल का नाम, झण्डा तथा चिह्न के विषय में सुझाव देने हेतु अधिकृत किया गया। मई, 1964 में दोनों दलों ने अपना सम्मेलन बुलाया। प्रजा समाजवादी दल रामगढ़ तथा समाजवादी दल गया में मिला। सम्मेलन में भाग लेने वाले प्रतिनिधियों ने विलय का समर्थन किया। जून 1964 में संयुक्त समाजवादी दल के नाम से नवीन दल की स्थापना की गई तथा प्रजा समाजवादी दल के एस.एम.जोशी तथा समाजवादी

---

1. डॉ. सुरेन्द्र प्रताप, डॉ. श्यामाप्रसाद- **डॉ. लोहिया विरासत का सवाल** पृष्ठ 26.
2. दि इण्डियन नेशनल-**पटना 9 मार्च 1961.**

दल के राजनारायण को क्रमशः अध्यक्ष एवं सामान्य सचिव बनाया गया। लेकिन यह संयुक्त रूप अधिक समय तक न चल सका।[1] तथा दल पुनः टुकड़ों में बंट गया।

बहुत शीघ्र ही मतभेद सामने आ गये। लोहिया को औपचारिक निमन्त्रण होने के बाबजूद भी वे दल के वाराणसी सम्मेलन में नहीं पहुँच सके। समाजवादी प्रतिनिधियों द्वारा "लोहिया जिन्दाबाद" के नारे लगाना लोहिया की व्यक्ति पूजा को परिलक्षित करता था। वातावरण विषाक्त हो गया। एच.बी.कामथ ने तदर्थ समिति के नाम प्रस्तुत किये। इनमें से 12 नाम प्रजा समाजवादी पार्टी तथा बचे हुए दो नाम समाजवादी पार्टी से थे। संयुक्त समाजवादी पार्टी को भंग करने का प्रस्ताव उसी दिन पारित कर लिया गया। प्रजा समाजवादी पार्टी पुनर्गठित कर ली गई। पुरानी प्रजा समाजवादी पार्टी का संविधान, कार्यक्रम तथा चुनाव चिन्ह पुनः स्वीकार कर लिया गया। वैचारिक एवं राजनैतिक आधार पर प्रजा समाजवादी पार्टी तथा समाजवादी पार्टी में काफी अन्तर था। संयुक्त समाजवादी पार्टी कांग्रेस के विकल्प हेतु विलाप करती थी। संयुक्त समाजवादी पार्टी, प्रजा समाजवादी पार्टी के इन्तजार करने की प्रवृत्ति में विश्वास नहीं है। संयुक्त समाजवादी पार्टी का मानना था कि कांग्रेस ही सबसे बड़ा पाप था तथा इससे लड़ना था चाहे उसे साम्यवादियों तथा दक्षिणपंथियों से भी समझौता करना पड़े। लोहिया ने समाजवादी परिवर्तन कार्यक्रम की रूपरेखा सामने रखी। उन्होंने घोषणा कि "यूरोप में समाजवादी परिवर्तन क्रमिक, संवैधानिक तथा वितरणशील था परन्तु, भारतवर्ष में उन्होंने आमूल परिवर्तनकारी परिवर्तन की माँग की तथा क्रान्तिकारी संघर्ष के लिए एक दल के गठन की इच्छा प्रकट की। उन्होंने अहिंसावाद कार्यक्रम अथवा सविनय अवज्ञा के माध्यम से जन चेतना में परिवर्तन लाने की वकालत की।"[2]

पार्टी का विश्वास था कि उसका संसद में प्रतिनिधित्व आवश्यक नहीं था बल्कि इसे गलियों एवं प्रदर्शनों में नेतृत्व प्रदान करना था। संयुक्त समाजवादी पार्टी का विश्वास था कि भारतवर्ष में व्यक्तियों में समता केवल आर्थिक ही न होकर सामाजिक आयाम में होनी चाहिए।

1. स्टेट्समैन- दिल्ली,24 मार्च 1964.
2. रामवीर सिंह - **डॉ. राममनोहर लोहिया व्यक्तित्व एवं कृतित्व,** पृष्ठ 224

(स) समाजवादी आन्दोलन का राजनैतिक नेतृत्व में विश्लेषण –

आजादी के बाद देश में समता और समता मूलक समाज बनाने के लिए देश के समाजवादी नेतृत्व ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। समाजवादी आन्दोलन के नेताओं और कार्यकर्ताओ में त्याग और उत्सर्ग की जो विलक्षण शक्ति दिखलाई देती है, उसकी भी किसी से तुलना नहीं की जा सकती है। भारत में 1946-1964 के मध्य समाजवादी आन्दोलन अपने उत्कर्ष के दौर में रहा है। समाजवादी आन्दोलन के इस दौर में डॉ. राममनोहर लोहिया की भूमिका सबसे महत्वपूर्ण रही है।

सन् 1946 में जवाहरलाल नेहरू बम्बई अधिवेशनों में कांग्रेस के पुनः अध्यक्ष हो गए और उन्होंने सोशलिस्ट जे.पी. और लोहिया को कांग्रेस कार्यसमिति में मनोनीत किया। कांग्रेस ने संविधान सभा में जाना स्वीकर कर लिया लेकिन सोशलिस्टों ने सम्पूर्ण कैविनेट मिशन के प्रस्तावों को ठुकराने की बात कही। वे कहते थे "जब तक पूरी तरह अंग्रेज भारत छोड़कर न चले जायें हमे संविधान सभा की सदस्यता स्वीकार नहीं करनी चाहिए।"[1]

कांग्रेस पहले तो अन्तरिम सरकार में जाने के खिलाफ थी। और ए. आई. सी. सी. का ऐसा ही फैसला था लेकिन वर्धा में कांग्रेस वर्किंग कमेटी में अन्तरिम सरकार में जाने का प्रस्ताव स्वीकार हुआ। समाजवादी इसके विरोध में थे। उन लोगों ने ए. आई. सी.सी. की पूरी बैठक में एक इस तरह का संशोधन रखा जिसे अध्यक्ष नेहरू ने नियम विरूद्ध बताया। मौलाना आजाद ने प्रस्ताव रखा जिस पर सोशलिस्ट तटस्थ रहे। किन्तु मुस्लिम लीग भी अन्तरिम सरकार में सम्मिलित हुई और कैबिनेट के सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धांत के खिलाफ काम करने लगी। लीग गृह और और वित्त मंत्रालय की भी मांग करती रही। नेहरू के नेतृत्व में अन्तरिम सरकार का काम करना असम्भव हो गया इसलिए लीग अन्तरिम सरकार तथा संविधान सभा दोनों से अलग हो गई तब जून 1947 में लार्ड माउण्टवेटन ने बटवारे का सुझाव दिया।

समाजवादी प्रारम्भ से ही बटवारे के विरूद्ध थे। कांग्रेस बर्किंग कमेटी में इसके प्रतिनिधियों ने विभाजन के प्रस्ताव का विरोध किया। किन्तु ए.आई.सी.सी की बैठक में तटस्थता का भाव अपना लिये। अतंतः भारत का दुःखद बँटवारा हो गया। जयप्रकाश नारायण व लोहिया ने आरोप लगाया कि बँटवारे की बात स्वीकार कर कांग्रेस अपने मार्ग

---

1. मोहन सिंह-**समाजवादी पोथी, भारत में समाजवादी आन्दोलन एक संक्षिप्त अवलोकन**, पृष्ठ 21.

से विरत हो गई। गाँधी भी बँटवारे के विरूद्ध थे। इस तरह आजादी के अन्तिम संग्राम में जिस बहादुरी के साथ समाजवादी नेताओं और कार्यकर्ताओं ने अगली कतार में रह कर आन्दोलन को निर्णायक दौर में पहुँचाया उससे गाँधी अभिभूत थे समाजवादियों में त्याग की प्रवृत्ति, राष्ट्रीय समस्याओं के प्रति समझदारी और उनके संघर्ष खड़ा करने की शक्ति से प्रभावित महात्मा गाँधी अब उन्हीं लोगों के प्रति आशा की निगाह से देखने लगे थे। उधर समाजवादी भी आजादी नजदीक होने और उसे खण्डित ही सही प्राप्त कर देश की गद्‌दी पर बैठ जाने की कांग्रेस नेताओं के उतावलेपन से निराश थे। कांग्रेसी नेतृत्व सक्षम ढ़ंग से राष्ट्रीय समस्याओं से निपट सकेगा इस पर उनके मन में शंका उत्पन्न होने लगी।

आजादी के बाद समाजवादियों की भूमिका -

देश के आजाद होने के साथ राष्ट्र के लिए सामाजिक और आर्थिक प्रश्न ज्यादा महत्वपूर्ण थे। आजादी के साथ ही समाजवाद की विजय भी एक आवश्यक लक्ष्य था। यदि आजादी को स्थायित्व प्रदान करना है तो करोड़ो जनता की भूख, गरीबी, लूट, बेकारी आदि प्रश्नों से मुक्त कराना एक महत्वपूर्ण मुद्‌दा है। इसलिए पार्टी ने मार्च 1947 को कानपुर में अपना वार्षिक सम्मेलन किया जिसमें कांग्रेस के साथ सपा के रिश्तों पर गम्भीर चर्चा हुई। वहाँ से दो तरह के विचार थे या तो समाजवादी सत्ताभोग में कांग्रेस का पूरा सहयोग करे और उन्हें जूठन के रूप में जो कुछ भी पत्र पुष्प मिले उसे मिल बाँट कर खायें अथवा अलग-अलग संगठन बना कर आम जनता की समस्याओं को उजागर करते हुए एक क्रांतिकारी वैचारिक समाजवादी विकल्प तैयार करें। इसी बीच जवाहरलाल नेहरू ने कुछ खास समाजवादी नेताओं को प्रलोभन भेजे। केन्द्रीय मंत्री परिषद और राज्यों के मंत्रिमण्डलों में कुछ समाजवादी नेताओं के स्थान सुरक्षित रखने की बात की गई डॉ. राममनोहर लोहिया को कांग्रेस का महांमत्री बनाने का प्रस्ताव था।

सपा नेताओं ने पदों के सारे प्रस्तावों को ठुकराते हुए कांग्रेस में ही रहकर नीतिगत विवादों को खड़ा करें कोई सरकारी पद न ले और दल के अन्दर ही सरकार का आलोचनात्मक विपक्ष तैयार करने का फैसला हुआ तथा अपने नाम के आगे से कांग्रेस शब्द हटा लिया गया। इसकी सत्तासीन कांग्रेसी नेताओं में तीखी प्रतिक्रिया हुई। उन्हें चेतावनी दी गई के कांग्रेस पार्टी में अनुशासित हो कर समाजवादी रहे। प्रशासन और सरकारी नीतियों की कोई आलोचना बर्दाश्त से बाहर है। कांग्रेस में रहते हुये सरकार की आलोचना का

अधिकार चाहने वाले समाजवादियों के रिश्ते अब कांग्रेसियों से बहुत कटु होने लगे। किन्तु समाजवादी अभी भी दुविधा में थे।

पं. नेहरू प्रधानमंत्री बनने के लिये कांग्रेस का अध्यक्ष पद छोड़ चुके थे। महात्मा गाँधी की राय थी कि आचार्य नरेन्द्रदेव को अध्यक्ष पद दिया जाय। ऐसा होने से आजाद भारत की कांग्रेस सरकार को अच्छा मार्ग निर्देशन संगठन से प्राप्त होगा। दूसरे समाजवादी अभी निश्चित ऑकलन नहीं कर सके थे कि कांग्रेस किस दिशा में देश को ले जाना चाहती है। उधर कांग्रेस के समक्ष भी प्रश्न था कि पार्टी रूप में जब आजाद भारत की बागड़ोर कांग्रेस के हाथों में है तो इस पार्टी को अपने दायित्व का निर्वाह कैसे करना चाहिये। देश की आजादी के सर्वश्रेष्ठ पुरूष गाँधी अपने को रचनात्मक कार्यो में लगा लिये थे। उन्हें समाजवादियों पर ज्यादा भरोसा था। उन्हें भी कहीं न कहीं से लगता था कि कांग्रेस नेतृत्व उनकी अनसुनी कर रहा है।

भारत के इतिहास में वह काला दिन है जब देश के एक साम्प्रदायिक व्यक्ति ने इतिहास पुरूष की हत्या कर दी। अपनी हत्या से दो दिन पूर्व देश की सभी चुनौतियों के सम्बन्ध में उनकी समाजवादी जयप्रकाश नारायण से गम्भीर मंत्रणा हुई थी। हत्या की रात दूसरे समाजवादी राममनोहर लोहिया उनके साथ थे। हत्या से पूर्व भारत सरकार के उप प्रधानमंत्री सरदार पटेल उनसे मिलने गये थे। गाँधी ने अपना एक नोट पटेल को पकड़ा दिया था जिसमें उन्होंने कांग्रेस के बारे में अपने विचार रखे थे। जिसमें उन्होंने कहा था "भारत ने गुलामी की जंजीरों को तोड़ दिया लेकिन भारत के लाखों-लाख गांवों में आज भी गरीबी विषमता नैतिक गुलामी काम कर रही है।"[1] उससे मुक्त कराने का उपाय करना होगा। भारत के गांवों को झूठ-मूठ की साम्प्रदायिक और राजनैतिक उठापटक से दूर रखना होगा। जिससे वास्तविक आजादी महसूस हो सके। इसलिये मौजूदा कांग्रेस के इस स्वरूप को समाप्त कर इसे लोक सेवक संघ के रूप में बदल देना चाहिये। गाँधी के उक्त विचार नेहरू पटेल को अच्छे नहीं लगे और उसी दिन 30 जनवरी,1948 को गाँधी की हत्या हो गई।

कांग्रेस नेताओं के मन में यह बात घर कर गई कि गाँधी के उक्त विचार बनाने के पीछे सोशलिस्ट नेताओं का हाथ है इसलिये सपा नेताओं को कांग्रेस से बाहर करने की भावना के कारण कांग्रेस नेताओं ने कांग्रेस के नये संविधान में कड़े अनुशासन पर जोर दिया

---

1. मोहन सिंह-**समाजवादी पोथी, भारत में समाजवादी आन्दोलन एक संक्षिप्त अवलोकन**, पृष्ठ 24.

उन लोगों के भी मन में समाजवादी नेताओं से अवकाश लेने की हुई और उधर समाजवादी नेतृत्व को भी लगा कि गाँधी का सहारा छूट जाने के बाद नेतृत्व अब इनकी कुछ भी नहीं सुनने वाला है। कांग्रेस के संविधान में यह स्पष्ट रूप से लिख दिया गया कि दूसरे संगठन को कोई व्यक्ति गैर साम्प्रदायिक है तो वह कांग्रेस का भी सदस्य बनाया जा सकता है लेकिन उसे कोई पद नहीं मिलेगा। यह नियम केन्द्र, राज्य, जिला और शहर इकाईयों पर लागू होगा। सोशलिस्टों से छुट्टी पाने के लिये कांग्रेस ने ऐसा विधान बनाया था। मार्च 1948 में नासिक सम्मेलन में समाजवादियों ने कांग्रेस से दूर रहने का मन बनाया था। नेहरू, पटेल और डॉ. राजेन्द्र प्रसाद कांग्रेस समाजवादी पार्टी का कांग्रेस के अन्दर विलय चाहते थे पहले तो आचार्य नरेन्द देव और डॉ. लोहिया कांग्रेस नहीं छोड़ना चाहते थे और जयप्रकाश नारायण असमंजस की स्थिति में थे। लेकिन अशोक मेहता और अन्य युवा समाजवादी कांग्रेस से अलग होना चाहते थे।

गाँधी की हत्या के वाद दोनों के रास्ते अलग-अलग हो गये। समाजवादियों के सम्मुख कांग्रेस छोड़ने के अलावा और कोई रास्ता बचा ही नहीं समाजवादियों की धरणा थी कि "कांग्रेस ने गाँधी जी का रास्ता छोड़ दिया है। वह गाँधी की आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक नीतियों को तिलांजलि दे चुकी है। कांग्रेस मुख्तया सत्ता के मोहजाल में फँस गई और सामाजिक-आर्थिक कार्यक्रमों में आदमी गौण हो गया।"[1] 1949 के पटना सम्मेलन में पहली बार एक स्वतंत्र और जिम्मेदार पार्टी के रूप में हमें क्या करना चाहिये, इस पर गंभीर मंत्रणा हुई। डॉ. लोहिया ने वोट, जेल और फावड़ा तीन अस्त्रों को अपनाने पर बल दिया । पार्टी देश की हजारों वर्ष की वुराई के खात्में के लिए आम जनता तक पहुँचाने का आवाह्न किया। डॉ. लोहिया ने "एक घण्टा देश को" नारा दिया। देश के आजादी के संघर्ष में अग्रिम भूमिका के कारण जयप्रकाश और लोहिया के लिए देश की युवा पीढ़ी में एक विशेष आकर्षण था। जयप्रकाश ने कांग्रेस से अलग होने के बाद चार वर्ष तक देश भर में घूमते रहे, साधन जुटाते हरे कार्यकर्ताओं को जोड़ते रहे, समितियों की स्थापना करते रहे, ट्रेड युनियन संगठन बनाने में भी उनका सक्रिय योगदान था, कोयला, रेल, तार आदि ट्रेड युनियन संघों से उनका करीब का संबंध था। इनके महासंघों के वे अध्यक्ष थे।

---

1. मधुलिमये-**पॉलिटिक्स आफ्टर फ्रीडम**, पृष्ठ 11.

भारत का प्रथम आम चुनाव और पार्टी की भूमिका –

पार्टी की प्रथम परीक्षा आजादी के प्रथम आम चुनाव में होनी थी। समाजवादियों ने भारत की संविधान सभा का बहिष्कार कर दिया था। उनकी मुख्य आपत्ति थी कि वयस्क मताधिकार के आधार पर संविधान सभा का चुनाव हो। साथ ही कैबिनेट मिशन के प्रस्तावों और माउण्टवेटन प्रस्तावों के समाजवादी खिलाफ थे इसलिए वह लोग संविधान सभा में नहीं गए। बहुत से विचारक इस बात को भी समाजवादियों की एक बड़ी गलती के रूप में देखते हैं कि यदि भारत के समाजवादी साम्यवादी संविधान सभा में रहे होते तो सम्भवतः भारत के मौजूदा संविधान का स्वरूप दूसरा होता फिर भी एक प्रारूप तैयार कर संविधान सभा के अध्यक्ष को समाजवादियों ने दिया था जिसमें भारतीय प्रशासनिक तंत्र को असली ताकत के रूप में गांव, जिला और प्रान्तीय इकाइयों को उभारने की बाद थी। 'समाजवादी राज्य में स्टेट का स्वरूप सर्वग्रासी न हो इसके लिए चौखम्भा राज्य की कल्पना सपा विचारकों की थी और उसे व्यापक अर्थों में कार्यान्वित करने पर बल दिया गया था।'[1]

देश के प्रथम आम चुनाव में आजाद भारत में पहली बार वयस्क मताधिकार प्राप्त लोग वोट डालने के पात्र बने थे। दलीय आधार पर वोट डालने का अधिकार लोगों को मिला था। एक नये वातावरण में भारतीय समाज ने राहत की सांस ली थी। अपने भाग्य को, अपने ही को संवारने का अवसर मिला था चूँकि कांग्रेस अपने को देश आजाद कराने का सेहरा बाँधे घूम रही थी। आजादी की लड़ाई के ही दौरान जवाहरलाल नेहरू का व्यक्तित्व प्रत्येक भारतीय के मानस पर एक अलग छवि लेकर था। उन्हें हीरो बनाने में समाजवादियों का भी कोई कम योगदान नहीं था। इसलिए इस पार्टी को लोकसभा में 369 सीटों पर विजय मिली लगभग पाँच करोड़ वोट मिला था। कम्युनिस्टों को 16 सीटों तथा लगभग 35 लाख वोट, सोशलिस्टों को सीटें तो केवल 12 मिली लेकिन वोट एक करोड़ 12 लाख 16 हजार मिले थे। किसान मजदूर प्रजा पार्टी जिसे बाद में कांग्रेस से निकल कर आचार्य कृपलानी, टी. प्रकाशम, रफी अहमद किदवई जैसे नेताओं ने बनाया था इसे 9 सीटें और 61 लाख के करीब वोट मिला था। जनसंघ को 3 सीटें और 32 लाख वोट मिले थे। इस तरह समाजवादी नेताओं की पूरे देश में जिस तरह सभाऐं हो रही थीं। उस अनुपात में वोट नहीं मिले।

---

1. मोहन सिंह -**समाजवादी पोथी, भारत में समाजवादी आन्दोलन एक संक्षिप्त अवलोकन,** पृष्ठ 31.

चुनाव परिणाम आने के बाद सोशलिस्टों में घोर निराशा फेल गई। पार्टी के तीन प्रमुख नेता डॉ. लोहिया, जयप्रकाश नारायण और आचार्य नरेन्द्रदेव चुनाव ही नहीं लड़े थे। अशोक मेहता पार्टी के प्रमुख नेताओं में से थे वे बम्बई की दो सदस्यीय लोकसभा सीट से लड़े थे। जहाँ उनके सहयोगी के रूप में डॉ. अम्बेडकर आरक्षित सीट से लड़ रहे थे। बाद में समाजवदियों ने आरोप लगाया कि उनकी पार्टी के साथ समझौता करना पार्टी के लिए बहुत महंगा साबित हुआ। पार्टी के ऊपर सिद्धान्तों को छोड़कर अवसरवादी होने के आरोप लगे। समझौते के बावजूद अम्बेडकर की पार्टी ने बम्वई प्रान्त के शेष महाराष्ट्र और हैदराबाद के इलाकों में सोशलिस्टों के खिलाफ उम्मीदवार खड़े कर दिये जिसका पार्टी के भविष्य पर काफी प्रभाव पड़ा। कांग्रेस के नेताओं ने अपने प्रचार अभियान में सिड्यूल्कास्ट फेडरेशन के साथ सपा के समझौतों की कड़ी निन्दा की थी । पार्टी अभी तक कांग्रेस के रूप में काम करती रही इससे वहुत कम समय की तैयारी के बाद चुनाव मैदान में उतरना पड़ा इसलिए शहरी पढ़े लिखे मध्यवर्गीय लोगों तक ही पार्टी का संदेश पहुँचा ऐसे में चुनाव परिणाम चौकाने वाले तो नहीं थे फिर दल के नेताओं को पार्टी के अस्तित्व के बारे में सोचने की आवश्यकता पड़ी। पार्टी के वरिष्ठ नेता अच्युत पटवर्धन, मीनू मसानी आदि ने दल के महामंत्री जयप्रकाश नारायण को महाराष्ट्र के कार्यकताओं में कैसी निराशा है इससे अवगत कराया ।

पार्टी के हालात और स्थिति का मुकाबला करने के उपायों पर विचार करने के लिए मध्यप्रदेश के पंचमढ़ी में पार्टी का विशेष अधिवेशन बुलाया गया। पार्टी के अध्यक्ष आचार्य नरेन्द्रदेव चीन के दौरे पर एक संसदीय मण्डल में गए थे इसलिए इस विशेष अधिवेशन की अध्यक्षता डॉ. राम मनोहर लोहिया ने की। अपने अध्यक्षीय भाषण में डॉ. लोहिया ने कहा " जाल बनाने वाली मकड़ी की तरह कभी निराशा को पास न आने दो। संघर्ष के समय जेल जाने से मत घबराओ और मतदान द्वारा अपनी ताकत बढ़ाओ। उन्होंने हिंसा का मार्ग त्यागने और 'छोटी इकाई पद्धति' पर पार्टी का लोकतान्त्रिक आधार व्यापक बनाने के लिए विचार रखे।"[1]

डॉ. लोहिया ने अपने अध्यक्षीय भाषण में पार्टी के सैद्धान्तिक आधारों की चर्चा

---

1. मधुलिमये- **पॉलिटिक्स आफ्टर फ्रीडम**, पृष्ठ 13-14.

की। पहली बार उन्होंने मार्क्सवाद, लेनिनवाद के बोझ से पार्टी को मुक्त करा कर अपने पैरों पर खड़ा करने के सैद्धान्तिक आधार दिये। उन्होंने राजनैतिक रणनीति के तौर पर समान दूरी के सिद्धान्त को प्रतिपादित किया। पार्टी वैचारिक तौर पर कांग्रेस और साम्यवादी दोनों से समान रूप से अलग है उन्होंने वर्ग संघर्ष के अलग सत्याग्रह के शाश्वत सिद्धान्त को निरूपित किया। उनका भाषण वहाँ उपस्थित जयप्रकाश नारायण, अशोक मेहता, मीनू मसानी, एस. एम. जोशी, एन.जी. गोरे, यूसुफ मेहर अली द्वारा काफी सराहा गया।

आचार्य नरेन्द्र देव ने स्वेदश लौटने पर उनके भाषणों को पढ़ा और कहा कि वे अभी भी मार्क्सवादी है। उन्हें अफसोस था कि लोहिया का सिद्धान्त पार्टी ने स्वीकार कर लिया। उनकी सफाई में पार्टी के संयुक्त मंत्री मधुलिमये और अशोक मेहता ने सफाई दी कि उनके दर्शन को पार्टी ने केवल विचारार्थ स्वीकार किया है। आचार्य नरेन्द देव के रूप को देखते हुये लोहिया ने टिप्पणी की कि पार्टी का एक हिस्सा मार्क्सवाद के प्रति बुद्धिमत्ता रहित आकर्षण में फँस कर अपने सोच को निस्प्राण बना लेगा। दूसरा हिस्सा गाँधीवाद के प्रति वैसा ही नादान आकर्षण पाल सकता है। इस तरह मार्क्स और गाँधी का जीवन उनके लिए व्यर्थ ही रहेगा। क्योंकि सत्य लुप्त हो जायेगा और उनकी गलतियाँ और विकृतियाँ ही रह जायेगी इस तरह पार्टी अन्तर्विरोधों का शिकार होने लगी।

सोशलिस्ट पार्टी के पंचमढ़ी सम्मेलन में समाजवाद को नया धरातल देने का प्रयास हुआ था और तीसरी दुनिया के संदर्भ में पश्चिमी लोकतांत्रिक समाजवाद की अवधारणाओं से हटकर एक नये सिद्धान्त की खोज की कोशिश की गई थी। इस काल में दो ओर से विरोधी विचार रखे जा रहे थे। एक ओर अशोक मेहता का 'पिछड़ी अर्थव्यवस्थाओं की अनिवार्यता' का सिद्धांत था तो दूसरी ओर डाक्टर लोहिया के 'जुझारू विरोध' का। अशोक मेहता मानने लगे थे कि भारत जैसे गरीब देश के लिए द्रुत एवं नियोजित विकास जरूरी है। उसके लिए बड़े पैमाने पर साधन इकट्ठे करने होगें। सामूहिक प्रयास के बिना यह संभव नहीं है क्योंकि इसके लिए समाज को त्याग के लिए तैयार करना होगा। लोकमत एवं विपक्षी दलों के भय से सरकार ऐसा करने में हिचकती है, उसे डर रहता है। अगर विपक्ष की सबसे बड़ी पार्टी और सरकारी पार्टी साथ मिलकर काम करे तो त्याग

करने के लिए जनता को तैयार किया जा सकता है। इसलिए विकास की अनिवार्य शर्तों का तकाजा है कि विपक्षी दलों एवं सरकार के बीच विभिन्न स्तरों पर सहयोग हो।

इसके विपरीत डा. लोहिया मानते थे कि "कांग्रेस के साथ सहयोग न तो संभव है, न वांछनीय। जरूरत सहयोग की नहीं बल्कि 'जुझारू विरोध' के द्वारा विकल्प खड़ा करने की है। इस विवाद से उत्पन्न स्थिति के संदर्भ में डॉ. लोहिया ने लोकतन्त्र की कार्य-प्रणाली संबंधी कुछ अवधारणाओं का प्रतिपादन भी किया।"[1]

सैद्धांतिक रूप से तीसरी धारणा जयप्रकाश नारायण की थी जो लोकतांत्रिक ढांचे में विश्वास करते हुए भी दलीय प्रणाली से दूर हटते जा रहे थे। वर्ग-संघर्ष में उनकी आस्था खत्म होती जा रही थी। अशोक मेहता और जयप्रकाश नारायण में एक साम्य यह था कि संसदीय प्रणाली स्वीकार करने के बावजूद वे विरोध की उस सीमा तक भी जाना नहीं चाहते थे जिस सीमा तक ब्रिटेन की संसदीय प्रणाली में विपक्षी दल जाते हैं 'पिछड़ी अर्थव्यवस्था की अनिवार्यताओं' का निष्कर्ष डॉ. लोहिया के लिए उस सीमा को तोड़कर 'विरोध-क्षेत्र' को व्यापक बनाना था वहीं उसके प्रतिपादकों का विश्लेषण उन्हें सीमा को संकुचित करने के निष्कर्ष पर ले जाता था।

प्रसोपा का गठन और तनाव का दौर-

भारत के समाजवादी आन्दोलन में सन् 1952-54 की अवधि तनाव की अवधि रही। इस काल में ही प्रजा-सोशलिस्ट पार्टी का गठन हुआ, कांग्रेस के तत्कालीन अध्यक्ष एवं प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू से कांग्रेस-प्रसोपा सहयोग पर वार्ता हुई और गोलीकाण्ड के मामले पर ट्रावनकोर-कोचीन मंत्रिमण्डल के इस्तीफे पर विवाद छिड़ा।

प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के गठन के संबंध में जहाँ सोशलिस्ट पार्टी के अन्दर काफी विवाद था, वहीं सोशलिस्ट पार्टी और किसान मजदूर प्रजा पार्टी के नेताओं एवं कार्यकर्ताओं के बीच भी इस पर पूरी सहमति नहीं थी। आचार्य नरेन्द्रदेव इस विलय के पक्ष में कतई नहीं थे। उन्हें उसमें मार्क्सवाद का त्याग लगता था। दूसरी ओर डॉ. राममनोहर लोहिया और

---

1. विनोद, सुनीलम- **समाजवादी आन्दोलन : तनाव का दौर (1952-1954), भूमिका से**

अशोक मेहता विलय के लिए कटिबद्ध थे। जयप्रकाश नारायण की स्थिति शुरू से बहुत स्पष्ट नहीं थी, लेकिन बाद में वे भी विलय के लिए सहमत हो गए थे। सोशलिस्ट पार्टी और किसान मजदूर प्रजा पार्टी के बीच कम्युनिस्टों के साथ संयुक्त मोर्चा को लेकर भी विवाद था। कई राज्यों में किसान मजदूर प्रजा पार्टी कम्युनिस्टों के नेतृत्व में बने संयुक्त लोकतांत्रिक मोर्चा का अंग थी जबकि सोशलिस्ट पार्टी की नीति उस समय कम्युनिस्टों के साथ किसी भी तरह का संबंध न रखने की थी।[1]

यही हाल कांग्रेस के साथ सहयोग करने, न करने के संबंध में था। जयप्रकाश नारायण, आचार्य कृपालानी और आचार्य नरेन्द्रदेव से पंडित नेहरू की बातचीत हुई। आचार्य नरेन्द्रदेव का सहयोग-प्रस्ताव के प्रति कोई उत्साह नहीं था, लेकिन आचार्य कृपालानी और खासकर जयप्रकाश नारायण ने उसमें रूचि दिखलाई। अशोक मेहता तो वार्ता खत्म होने के बाद भी उसके प्रबल समर्थक बने रहे और इसके लिए उन्होंने एक सिद्धांत का प्रतिपादन भी कर डाला। इसके विपरीत डॉ. राममनोहर लोहिया कांग्रेस के साथ किसी तरह के सहयोग के कट्टर विरोधी थे। वे प्र.सो.पा. को कांग्रेस का विकल्प बनाना चाहते थे। इसलिए सहयोग वार्तावाला चरण भी तनाव से परिपूर्ण था।

इस दल से ही नेहरू को कांग्रेस के लिए खतरे दिखाई देते थे इसलिए प्रारंभ में उन्होंने कुछ कार्यक्रम पर सहमति के आधार पर सहयोग मांगा। अब उन्होंने समाजवादी समाज की रचना का फैसला कर लिया। बम्बई पार्टी के कुछ नेताओं ने वक्तव्य देकर कांग्रेस के साथ पुनः सहयोग का मार्ग तलाशने की राय दी। इस पर पार्टी के नेता मधुलिमये ने बम्बई के एक अखबार फ्री प्रेस जनरल में लेख लिखा इस विचार की धज्जियाँ उड़ाई और ऐसे वक्तव्य के दिये उन्होंने प्रकारान्तर से अशोक मेहता को जिम्मेदार ठहराया। इस पर बम्बई पार्टी ने उनसे वक्तव्य वापस लेने को कहा लेकिन वे अपनी राय पर डटे रहे तब बम्बई पार्टी ने उन्हें 26 मार्च, 1955 को निलम्बित कर दिया। इस पर डॉ. लोहिया ने मधुलिमये को साहसिक कार्य के लिए हार्दिक बधाई दी, तथा पार्टी की सभी इकाईयों से मधुलिमये को बुलाकर सम्मानित करने को कहा। उत्तर प्रदेश पार्टी पर लोहिया का प्रभाव था। गाजीपुर में पार्टी का प्रदेश सम्मेलन होना था। प्रांतीय अध्यक्ष गोपालनारायण सक्सेना

---

1. विनोद, सुनीलम- **समाजवादी आन्दोलन : तनाव का दौर (1952-1954)**, भूमिका से

ने मधुलिमये को ही पार्टी सम्मेलन का उद्घाटन करने के लिए बुला लिया। 3 जून, 1955 को पार्टी की राष्ट्रीय कार्यकारणी ने इस सम्मेलन पर प्रतिबंध लगा दिया। उत्तर प्रदेश की इकाई को भंग कर दिया। फिर भी गाजीपुर में सम्मेलन हुआ। उसमें लोहिया, मधुलिमये गये। वहाँ उन लोगों ने केन्द्रीय नेतृत्व के लकुआ मार स्थिति पर कड़े प्रहार किए तब जुलाई 1955 में जयपुर में पार्टी की राष्ट्रीय समिति की बैठक हुई जिसमें लोहिया को भी पार्टी से निलम्बित कर दिया गया इस तरह समाजवादी आन्दोलन पर एक गम्भीर संकट आया लेकिन बाद के इतिहास से सिद्ध होता है कि यह नए सिरे से एक तेवर के साथ आन्दोलन की शुरूआत का भी दौर था।

1955 के बाद :

1955 के अंत में प्रजा समाजवादी पार्टी से निकाले गए समाजवादियों ने डॉ. राममनोहर लोहिया के नेतृत्व में समाजवादी पार्टी बनाई। दिसम्बर 1955 को हैदराबाद में हुए स्थापना सम्मेलन में एक स्पष्ट नीति की घोषणा की। उसमें शासक दल के साथ किसी भी आदर्श की आड़ में सहयोग करने की नीति को अवसरवाद कह कर निंदा की। समाजवादी पार्टी अपनी सरकार तभी बनाएगी जब उसे साफ बहुमत मिलेगा और जब किसी पार्टी का स्पष्ट बहुमत नहीं होगा तो समाजवादी लोकतंत्र के हित में छोटी बुराई वाली पार्टी को समर्थन देंगे और उस सरकार को तब तक बर्दाश्त करते रहेंगे जब तक वह जनता तथा मजदूर वर्गों के हित में काम करती रहेगी।

उधर 26 से 29 दिसम्बर 1955 तक गया में प्रसोपा का दूसरा राष्ट्रीय सम्मेलन हुआ जिसमें पार्टी के नीति वक्तव्य स्वीकार किए गये। इस पर आचार्य नरेन्द्र देव के विचारों की पूरी छाप थी जिसे 'गया थीसिस' के नाम से जाना जाता है। इस सम्मेलन में आचार्य नरेन्द्रदेव को अध्यक्ष और त्रिलोकी सिंह को महामंत्री चुना गया। बावू गंगाशरण सिंह को पार्टी का उपाध्यक्ष चुना गया। 19 फरवरी, 1956 को आचार्य नरेन्द्रदेव का देहान्त हो गया। उनके देहावसान से भारत के समाजवादी आन्दोलन का एक मजबूत स्तम्भ ढह गया। नरेन्द्रदेव ने अपने त्याग, परिश्रम और विचारों से भारत के समाजवाद को अनेक आयाम दिये। उनकी मृत्यु के बाद गंगाबाबू प्रसोपा के अध्यक्ष हो गये।

1957 के चुनाव निकट थे। पार्टी में बिखराव हो गया था। जयप्रकाश नारायण अपना अधिक समय विनोबा भावे के आन्दोलन को देने लगे थे। यद्यपि पार्टी ने गया सम्मेलन में किसी भी दल से (कांग्रेस, कम्युनिस्ट, जनसंघ)आदि से सहयोग न करने का फैसला कर लिया था फिर भी चुनाव के ठीक समय पर पार्टी ने भारत की कम्युनिस्ट पार्टी के साथ सीटों का तालमेल करने का फैसला किया। उधर समाजवादी पार्टी हैदराबाद के प्रस्तावों अनुसार चुनाव मैदान में अकेले कूदने के लिए संकल्पबद्ध थी।

बंगलौर में नवम्बर 1956 में प्रसोपा का तीसरा सम्मेलन हुआ जहाँ अशोक मेहता, चन्द्रशेखर आदि के विरोध के बावजूद पार्टी ने चुनाव में कुछ दलों के साथ सीटों के तालमेल के बारे में फैसला कर लिया। इन पार्टियों में समाजवादी पार्टी शामिल नहीं थी क्योंकि अभी हाल में टूट के कारण दोनों दलों के नेताओं में निजी कटुता बहुत बढ़ गई थी। प्रसोपा को अभी भी जयप्रकाश नारायण का व्यक्तित्व ही प्रभावित कर रहा था। चुनाव के मौके पर प्रसोपा की इस नीति के विरोध में बम्बई के वरिष्ठ नेता पुरूषोत्तम दास तथा श्रीमती सुचेता कृपालानी ने पार्टी से त्याग पत्र दे दिया था। प्रसोपा ने केरल में मुस्लिम लीग, आसाम, बंगाल में सी०पी०आई० से समझौता किया गुजरात महाराष्ट्र में केवल कुछ उम्मीदवार पार्टी टिकट पर लड़े शेष सम्पूर्ण महाराष्ट्र समिति और महागुजरात के बैनर तले लड़े। समाजवादी पार्टी के लोगों को भी संयुक्त महाराष्ट्र समिति के टिकट से लड़ने का निमंत्रण था लेकिन पार्टी ने किसी कीमत पर अपने सिद्धांतों के खिलाफ राय रखने वालों से कोई चुनावी गठजोड़ न करने का फैसला किया था। इसका नतीजा हुआ कि गोवा आन्दोलन में अग्रिम भूमिका निभाने वाले मधुलिमये और उनके मजदूर आन्दोलन में सक्रिय भागीदार जार्ज फर्नाण्डीज भी 1957 के चुनाव में बुरी तरह हार गए। लाभ के हिसाब से जिस राज्य में जिससे जितना फायदा लेने की रणनीति के तहत प्रसोपा लड़ी थी। क्योंकि उसका एक मात्र लक्ष्य समाजवादी पार्टी को समाप्त करना था।

चुनावों के बाद अप्रैल 1958 में शेरघाटी में सपा का राष्ट्रीय सम्मेलन हुआ जिसकी अध्यक्षता गोपाल नारायण सक्सेना ने की। उनके अध्यक्षीय भाषण में केवल लोहिया के विचारों का प्रतिपादन था। लोहिया ने 'एकला चलो' के नारे पर विचारों से परिपक्व पार्टी

जो चरित्र से जुझारू हो चलाने का फैसला किया। 1958 में पार्टी ने 'घेरा डालो आन्दोलन' की शुरूआत की। अप्रैल 1959 में वाराणसी में सपा का राष्ट्रीय सम्मेलन हुआ जिसकी अध्यक्षता मधुलिमये ने की। पहली बार समाजवादी आन्दोलन की दृष्टि आर्थिक मुद्दों के अलावा सामाजिक प्रश्नों पर गई। सामाजिक समानता के बिना आर्थिक गैर बराबरी खत्म नहीं हो सकती इसी भावना से पिछड़े और कमजोर वर्गों के लिए 'विशेष अवसर' के सिद्धांत को पार्टी ने स्वीकार किया। 1958 से 1961 के बीच का दौर अपने देश के अनूठे आन्दोलनों के लिए विख्यात रहेगा, दाम बांधों सम्मेलन, अंग्रेजी हटाओ सम्मेलन, हिमालय बचाओ सम्मेलन जाति तोड़ो सम्मेलनों की बाढ़ आ गई। इस तरह क्रांतिकारी संघर्षों से सपा ने अलग पहचान बनाई।

उधर 1957 के चुनाव के बाद पूना में मई 1958 को प्रसोपा का सम्मेलन हुआ। वहाँ भी पार्टी के संगठनात्मक ढांचे पर क्षोभ व्यक्त किया गया। पूना सम्मेलन ने गंगा बाबू को अध्यक्ष और एन.जी. गोरे को महामंत्री चुना। बम्बई में 1959 में प्रसोपा ने अपने आन्दोलन की रजत जयंती समारोह व सम्मेलन किया। पार्टी में घोर निराशा और कर्तव्यहीनता का प्रवेश हो गया था। जय प्रकाश नारायण एक तरह से अलग हो गये थे। उधर आचार्य कृपालानी भी अपने को पार्टी की गतिविधि से अलग ही कर लिए थे, पार्टी के लोगों को लगता था कि पार्टी में बचे बड़े नेताओं में एक ही अशोक मेहता कांग्रेस के साथ सहमति के दायरे ढूढ़ने में व्यस्त रहते हैं। कोई भी नेता इस दल में नए प्राण का संचार नहीं कर सकता। बम्बई सम्मेलन में पार्टी में व्याप्त कुण्ठा को महामंत्री की रपट में पेश किया गया। अपनी रपट में एन.जी.गोरे ने इन बातों को स्वीकार किया था। पार्टी ने रजत जयन्ती वर्ष में अनेक कार्यक्रम स्वीकार किये और अशोक मेहता के हाथ में पार्टी चलाने की कमान दी गई। एन.जी.गोरे फिर से पार्टी के महामंत्री हुए। इसी बीच 1959 में तिब्बत पर गंभीर संकट आया। सोपा और प्रसोपा दोनों ने तिब्बत के प्रति नेहरू के कमजोर नीति की जमकर आलोचना की। प्रसोपा-सोपा दोनों ने तिब्बत दिवस मनाया।

1962 के आम चुनाव में दोनों सोशलिस्ट पार्टियों को अपेक्षित सीटें नहीं मिली। समाजवादी पार्टी तो किसी तरह 1957 की स्थिति बनाये रखने में सफल रही लेकिन प्रसोपा

की सीटें पहले से आधी हो गई। स्वाभाविक तौर पर दोनों दलों में घोर निराशा का वातावरण तैयार हुआ। इसी बीच अक्टूबर 1962 में चीन युद्ध शुरू हो गया। भारत को जबरदस्त पराजय झेलनी पड़ी । चीन ने तिब्बत सहित भारत के लद्दाख और अरूणाचल के इलाकों में काफी जमीन कब्जा कर ली। इस शर्मनाक पराजय के लिए डॉ. राममनोहर लोहिया ने नेहरू के नेतृत्व को जिम्मेदार माना तथा उनकी सरकार को राष्ट्रीय शर्म की सरकार कहा। उनकी सरकार को हटाने के लिए पूरे विपक्ष को एक प्लेटफार्म पर आने के लिए लोहिया ने दावत दी।

देश के विभिन्न भागों में मई 1963 में फर्रूखाबाद, अमरोहा, राजकोट और जौनपुर में लोकसभा के लिए उपचुनाव हुए जिसमें डॉ. लोहिया की रणनीति के अनुसार विपक्ष के सभी दल कांग्रेस के मुकाबले एक-एक व्यक्ति चुनाव लड़े जिसका नतीजा था कि फर्रूखाबाद से डॉ. राममनोहर लोहिया (सपा), राजकोट से मीनू मसानी (स्वतंत्रपार्टी), अमरोहा से आचार्य कृपालनी (निर्दलीय), चुनाव जीत गए केवल जौनपुर से जनसंघ के नेता पंडित दीनदयाल उपाध्याय चुनाव हार गए थे। इससे नेहरू विरोध को जबरदस्त हवा मिली। दूसरी तरफ प्रसोपा पुनः दुविधाग्रस्त हो गई उसके 43 महीनों तक राष्ट्रीय सम्मेलन ही नहीं हुए। भुवनेश्वर में कांग्रेस का सालाना जलसा हुआ जिसमें समाजवादी समाज की रचना करने का प्रस्ताव पारित हुआ इसे बहाना बना कर प्रसोपा नेता अशोक मेहता, चन्द्रशेखर, नारायण दत्त तिवारी, बाबू गेंदा सिंह, गुरूपद स्वामी आदि फरवरी 1964 में कांग्रेस में सम्मिलित हो गए। उनका कहना था कांग्रेस के बाहर समाजवादी दल को खड़ा करने का प्रयास व्यर्थ है। समाजवाद के लक्ष्य को कांग्रेस पूरा करेगी। दूसरी तरफ पार्टी ने नवम्बर 1963 में भोपाल में सम्मेलन कर कहा पार्टी के कुछ लोगों द्वारा कांग्रेस में जाने की योजना से पार्टी का अस्तित्व समाप्त नहीं माना जाए। पार्टी ने लोकतांत्रिक समाजवाद में पूर्ण निष्ठा जताते हुए कांग्रेस, कम्युनिस्ट, जनसंघ, स्वतंत्र पार्टी जैसी पार्टियों से देश को सावधान किया एवं चीन के सामने घुटने टेकने के लिए नेहरू से प्रधानमंत्री की कुर्सी से त्यागपत्र मांगा। भोपाल सम्मेलन में एस.एम.जोशी अध्यक्ष और प्रेम भसीन महामंत्री हुए। इसी दौरान लोहिया सम्पूर्ण समाजवादी एकता पर जोर देने लगे। उनका कहना था मजबूत समाजवादी दल होना चाहिए। कम्युनिस्ट आन्दोलन में भी फूट पड़ने लगी, चीन के रिश्तों के सवाल पर इस

आन्दोलन में दो खेमें हो गए। अपनी फूट को बचाने के लिए कम्युनिस्टों ने दिल्ली में जबरदस्त प्रदर्शन किया। लेकिन लोहिया ने कहा कम्युनिस्टों में भी नेहरू के पक्षधर और विरोधी दो तरह के लोग हैं उनमें आगे एकता नहीं रह सकती।

लोकसभा के 1963 के मानसून सत्र में लोहिया के प्रयास से देश के इतिहास में पहली बार अविश्वास प्रस्ताव आया। डॉ. लोहिया का प्रथम प्रवेश और नेहरू के चमत्कारिक नेतृत्व पर पहला हमला था, देश में एक नये वातावरण की शुरूआत डॉ. लोहिया के नेतृत्व में हुई। देश भर में मिलने वाले सहयोग ने लोहिया को सभी विपक्षी दलों को एकत्रित करने के लिए प्रोत्साहित किया। दिसम्बर 1963 को कलकत्ता में सपा का राष्ट्रीय सम्मेलन हुआ डॉ. लोहिया के गैर कांग्रेसी रणनीति को जिसमें भारतीय जनसंघ और स्वतंत्र पार्टी की समान साझेदारी हो इसे मधुलिमये स्वीकार करने में असमर्थ थे। चूंकि लोहिया से उनका विशेष स्नेह था इसलिए वे कलकत्ता सम्मेलन में नहीं गए। किन्तु जार्ज फर्नाण्डीज ने जनसंघ के साथ किसी तरह के तालमेल, मोर्चा अथवा गठबंधन करने की नीति का जबर्दस्त विरोध किया। चूंकि पूरी पार्टी डॉ. लोहिया का विशेष सम्मान करती थी इसलिए हंगामी विरोध के बावजूद प्रस्ताव पास हो गया। डॉ. राममनोहर लोहिया ने 'कांग्रेस हटाओ' के नारे के तहत तीन सूत्रीय कार्यक्रम घोषित कर दिया। सभी समाजवादी शक्तियों का बिना विलम्ब बिना शर्त एकता, समान विचार धारा के दलों को न्यूनतम साझा कार्यक्रम के आधार पर संयुक्त मोर्चा बनाकर लोकहित के सवालों पर जनसंघर्ष और सभी गैर कांग्रेसी दलों के बीच नजदीकी कायम करने के लिए चुनाव में सीटों का तालमेल योजना के अन्तर्गत समाजवादी पार्टी ने पहल शुरू कर दी। सम्पूर्ण भारत की विपक्षी राजनीति मानों समाजवादियों के हाथ में आ गई।[1]

उधर दिसम्बर 1962 में उत्तर प्रदेश के सपा नेता उग्रसेन की अगुवाई में, सपा और प्रसोपा का विधान मण्डल दल एक हो गया। सपा का नेतृत्व और 1962 के घोषणा पत्र को प्रसोपाई विधान मण्डल दल ने स्वीकार कर लिया प्रसोपा के नेता बाबू गेंदा सिंह व सपा के नेता उग्रसेन ने घोषित किया कि उत्तर प्रदेश में भारतीय जनसंघ के बढ़ते प्रभाव को देखते हुए ऐसा करना जरूरी था। लेकिन समाजवादी पार्टी के अध्यक्ष राजनारायण, रविराय महामंत्री दोनों ने मिलकर उत्तरप्रदेश विधान मण्डल दल की एकता को आश्चर्यजनक,

1. मोहन सिंह -**समाजवादी पोथी, भारत में समाजवादी आन्दोलन का संक्षिप्त अवलोकन** पृष्ठ 53.

मातृपार्टी से बिना पूंछे मनमानी कार्यवाही और अनुशासनहीनता की संज्ञा दे डाली। बाद में समाजवादी पार्टी की राष्ट्रीय समिति ने इसे स्वीकार नहीं किया। प्रसोपा की राष्ट्रीय समिति ने भी 31 जनवरी, 1963 को अपनी बैठक में यू.पी. की एकता को समाजवादी एकता की दृष्टि से उचित ठहराया लेकिन 1962 के सपा के घोषणा पत्र में भाषा और जाति के विशेष अवसर के सिद्धांत को मानने से परहेज किया। उन्हीं दिनों भरतपुर में सपा का राष्ट्रीय सम्मेलन हुआ जिसमें लोहिया ने 62 के घोषणा पत्र को मानने के लिए प्रसोपाईयों की प्रशंसा की। उत्तरप्रदेश की एकता ने देशभर के समाजवादियों में नई आशा का संचार किया। यदि 1962 की उत्तरप्रदेश की एकता उसी रूप में बनी रहती तो 1967 के उत्तरप्रदेश के चुनावों में भारतीय जनसंघ सबसे बड़ी पार्टी बनकर न उभरती और बिहार की ही तरह उत्तर प्रदेश में भी सपा का ही राजनैतिक वर्चस्व रहता किन्तु दोनों दलों के नेताओं ने इसे तोड़वाया और अपनी तरफ से राष्ट्र स्तर के एकता की पहल शुरू की।

मार्च 1963 में प्रसोपा के सुरेन्द्र नाथ द्विवेदी, एस.एम. जोशी मधुदण्डवते, चन्द्रशेखर, चन्द्रप्रताप तिवारी और प्रेम भसीन, सपा के राजनारायण, मधुलिमये, रामसेवक यादव, जगदीश जोशी और रामकिशन मिले। सभी मुद्दों पर सहमति के बावजूद जाति नीति, भाषानीति पर सहमति नहीं हो सकी। इसी बीच लोकसभा के उपचुनाव आ गये। फर्रूखाबाद की सीट पर प्रसोपा लड़ने की जिद करने लगी क्योंकि पिछले चुनाव में उसे काफी वोट मिला था। किन्तु समाजवादियों का आंकलन था कि वहाँ से डॉ. लोहिया ही चुनाव जीत सकते हैं। इससे सोपा, प्रसोपा के एकता की बात ही पुनः कुछ दिनों के लिए रूक गई।

प्रसोपा के वरिष्ठ नेता जब कांग्रेस में जाने के लिए अपने अभियान को तेज किए तो पुनः लोहिया ने जनवरी 1964 में सोपा, प्रसोपा के बिना शर्त विलय की बात शुरू कर दी। उनका उद्देश्य प्रसोपाईयों को कांग्रेस में जाने से रोकना भी था। फरवरी 1964 में सपा की राष्ट्रीय समिति ने इस प्रस्ताव को स्वीकार भी कर लिया। प्रसोपा के कुछ बड़े नेताओं के कांग्रेस में फरवरी 1964 में चले जाने के बाद मई 1964 में एस.एम. जोशी, एस. एन. द्विवेदी, प्रेम भसीन, राजनारायण, मधुलिमये, रामसवेक आदि मिले और बिना शर्त विलय की बात स्वीकार की। रामगढ़ में प्रसोपा और गया में सोपा का विशेष राष्ट्रीय

सम्मेलन मई में हुआ दोनों दलों के सम्मेलन ने एकता के प्रस्ताव को स्वीकार किया और मई 1964 में दोनों दलों की संयुक्त तदर्थ राष्ट्रीय समिति गठित हो गई। किन्हीं परिस्थितियों में पार्टी एकता हो गई लेकिन मन की एकता नहीं हुई 7 जून, 1964 को पार्टी की राष्ट्रीय समिति की पहली बैठक हुई।

प्रसोपाई गैर कांग्रेसवाद की रणनीति में भाजपा के साथ स्वतंत्र पार्टी के साथ किसी तरह के मेल-जोल विरोधी थे पिछड़े कमजोर वर्गों को 60 प्रतिशत स्थान दिए जाने पर भी उन्हें आपत्ति थी सभी सरकारी कामकाज से अंग्रेजी हटाने के पक्ष में भी वे नहीं थे। डॉ. राममनोहर लोहिया ने वक्तव्य दिया कि "जब तक नवगठित पार्टी उनके पूरे सिद्धांतों को स्वीकार नहीं करती वे नई पार्टी के सदस्य नहीं बन सकते।"[1]

उसी समय वाराणसी में जनवरी के प्रथम सप्ताह में नवसृजित पार्टी का राष्ट्रीय सम्मेलन होना था। पार्टी के नीति वक्तव्य तैयार करने वाली समिति के अध्यक्ष मधुलिमये थे। अभी तक नीति वक्तव्य के मसविदे पर सहमति नहीं हो सकी थी, तभी इलाहाबाद से डॉ. लोहिया ने वक्तव्य दे दिया कि जब तक संसोपा का राष्ट्रीय सम्मेलन उन्हें प्रस्ताव पास कर सम्मेलन में आमंत्रित नहीं करेगा, वे उस सम्मेलन में नहीं जायेंगे। इस वक्तव्य ने विवाद को नया मोड़ दे दिया। सम्मेलन प्रारम्भ होने के दिन बेनियाबाग से एक भव्य आकर्षक संसोपा के नए अध्यक्ष एस.एम. जोशी की अगवानी में जुलूस निकला। कानपुर के कुछ साथियों ने 'लोहिया को नहीं छोड़ेंगे, पार्टी नहीं तोड़ेंगें के नारे लगाये', दूसरी तरफ व्यक्तिवाद नहीं चलेगा' के नारे लग रहे थे। इस तनावपूर्ण वातारण में पार्टी का प्रथम संयुक्त सम्मेलन प्रारम्भ हुआ।

प्रसोपा के नेता भावनात्मक एका को असम्भव मानकर उसी सम्मेलन में अपने को अलग कर लेने का फैसला किये। समझौता तोड़ने का प्रस्ताव एच.बी.कामथ ने प्रस्तुत किया। किन्तु प्रसोपा का एक बड़ा हिस्सा संसोपा में बना रहा, जिसमें एस.एम. जोशी, कर्पूरी ठाकुर, रामानन्द तिवारी, सालिगराम जायसवाल, केरल के के. चन्द्रशेखरन और ए. श्रीधरन आदि शामिल थे। संसोपा ही एक तरह से समाजवादी आन्दोलन की मुख्य धारा बनी रही। प्रसोपा एक दफ्तरी पार्टी के रूप में काम करती रही।

□□□□

1. मोहन सिंह -**समाजवादी पोथी, भारत में समाजवादी आन्दोलन का संक्षिप्त अवलोकन** पृष्ठ 55.

अध्याय–सात

वर्तमान भारतीय राजनीति में डॉ. लोहिया के समाजवादी आन्दोलन की प्रासंगिकता

(अ) आधुनिक राजनीति में समाजवादी चिन्तन

(ब) डॉ. लोहिया के चिन्तन की प्रासंगिकता

7

वर्तमान भारतीय राजनीति में डॉ. लोहिया के समाजवादी आन्दोलन की प्रासंगिकता

भारत में समाजावादी आन्दोलन प्रारंभ से ही एक विशेष प्रकार की जीवन पद्धति से जुड़ा रहा है उसमें आन्दोलन से अधिक चिंतन और चिन्तन के साथ कर्म जुड़ा हुआ था यदि वह केवल एक आन्दोलन होता तो भारतीय समाजवाद का संगठन ही दूसरे प्रकार का होता। बार-बार टूटने और टूट कर जुड़ने, जुड़ कर फिर टूटने की प्रक्रिया उसे बार-बार दोहरानी नहीं पड़ती। वह आन्दोलन को लोकप्रिय बनाने के लिये बहुत से ऐसे नारे और फार्मूले अपनाता जिसका जीवन पद्धति और दर्शन से कोई रिश्ता ही नहीं होता। चिन्तन और कथनी एवं करनी का आग्रह समाप्त कर दिया जाता कर्म का सीधा रिश्ता सत्ता से जुड़ता और नैतिक एवं अनैतिक गतिरोधों से छुट्टी मिल जाती। राष्ट्रीय संदर्भों से पलायन करके किसी अल्पकालिक कार्यक्रम से आन्दोलन जुड़ जाता और इस तरह एक भूल-भूलैय्या का चक्कर काटते-काटते सत्ता तक पहुँचने का मार्ग प्रशस्त कर लेता। कुछ नहीं तो अन्तर्राष्ट्रीय समाजवाद का नारा लेकर किसी प्रत्याशित क्रान्ति की प्रतीक्षा करता। उसके सुनहरे सपने देखते-देखते निष्क्रिय होकर सत्ता के इर्द-गिर्द घूमता रहता और यह टूटने और जुड़ने की प्रक्रिया बार-बार न घटित होती। जीवन पद्धति और राष्ट्रीय संदर्भों की चर्चा करने के बजाय चिन्ता इसकी होती कि कैसे पूरा समाजवादी आंदोलन एक स्थायी संस्था के रूप में प्रतिष्ठित हो। आज देश में बहुत सी ऐसी संस्थाएँ हैं जो सैकड़ों वर्षों से जीवित हैं और अपनी शताब्दियाँ मना रही हैं। इस प्रकार की यथास्थितिवादी मानसिकता के साथ अनेक संस्थाएं भविष्य में भी जीवित रहेगी और हो सकता है कि भविष्य में भी दो चार शताब्दियों तक उसी प्रकार सांस गिन-गिन कर चलती रहें। क्योंकि वह न तो राष्ट्रीय संदर्भ में जुड़ेंगी और न ही कोई खतरा मोल लेगी समाजवादियों का तो यह नारा हो था कि 'सुधरो या टूटो' यह जितना दूसरी यथास्थितिवादी संस्थाओं के लिए था उतना ही स्वयं अपने ऊपर भी लागू होता था।

टूटने का अर्थ ही यह है कि आन्दोलन की आधारभूत जड़े नष्ट हो गई है। उनमे आगे

बढ़ने की क्षमता नहीं रह गई है। ऐसे में टूटना ही उनका धर्म है। इसलिए समाजवादी आन्दोलन भी अपनी साठ-बासठ वर्ष की आयु में कई बार टूटा और जुड़ा। वस्तुतः आज समाजवादी आन्दोलन की पहचान भी इसी टूटने और जुड़ने से बनी है। क्योंकि यह टूटना संगठन का था। विचारों का नहीं। चूंकि विचार जीवित और गतिशील थे इसलिए उनमें फिर से जुड़ने की क्षमता थी। प्रखर वैचारिक गतिशीलता में बहुधा लोग टूट जाते हैं। संस्थाएं चरमरा जाती हैं। फिर उससे नये लोग जुड़ते हैं। फिर संगठन खड़ा होता है और फिर संस्थाओं का पुनर्जन्म भी होता है। भारतीय समाजवाद की यह नियति थी कि वह बार-बार टूटे और जुड़े यही उसका चरित्र भी है।

यदि भारत के समाजवादी आन्दोलन की गतिविधियों का सम्यूक अध्ययन किया जाये तो पायेंगे कि पूरे समाजवादी आन्दोलन को कहीं प्रत्यक्ष और कहीं अप्रत्यक्ष रूप से लोहिया के चिन्तन और जीवन दर्शन ने निरन्तर प्रभावित किया है। पूरे समाजवादी आन्दोलन को एक नैतिक चरित्र प्रदान किया है। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम और लोहिया की दार्शनिक दृष्टि से पूरा आन्दोलन ओतप्रोत है। वस्तुतः आज भी यदि भारत में समाजवाद अपनी पूर्ण गरिमा के साथ जीवित है तो इसका एक मात्र कारण यह रहा है कि यह आन्दोलन अपने जन्म से ही भारत के सक्रिय राजनैतिक आन्दोलन के साथ प्रासंगिक बना हुआ था। आज भी वह उतना ही प्रासांगिक है। अब तो डॉ. लोहिया के बहुत से सिद्धान्त और उनके जीवन दर्शन के मूल आयाम समाजवादी आन्दोलन के अविभाज्य अंग बन गये हैं। समाजवादी आन्दोलन की उदान्त भावना को भारतीय परिवेश ने एक सामाजिक अन्तरात्मा, सामाजिक न्याय एवं सामाजिक सहकारिता को एक दूसरे सांचे में ढाल दिया।

भारत का समाजवादी आन्दोलन केवल रोटी, रोजी और मजदूरी से नहीं जुड़ा रहा। जहाँ भारतीय समाजवाद ने महात्मा गांधी के बहुत से सिद्धांतों को स्वीकारा वहीं उसने उत्पादन और वितरण प्रणाली तथा पूँजीवाद को समूल नष्ट करके नयी सामाजिक व्यवस्था को स्वीकार किया है। जवाहरलाल नेहरू से लेकर मुलायम सिंह तक समाजवाद के अनेक प्रयोगात्मक रूप उभर कर सामने आये हैं। किन्तु जिन दो बिंदुओं पर समाजवादी चिन्तन निरन्तर केन्द्रित रहा, वह गांधी और लोहिया के समीकरण और पारस्परिक विचारों के

संशोधन और परिवर्तन के बिन्दु हैं। यही मूल प्रवृत्ति भारत में समाजवादी आन्दोलन को आज भी स्थिरता प्रदान किये हुए है। आजादी के बाद से लेकर आज तक समाजवादी आन्दोलन को कई धक्के लगे हैं। किंतु हर झटके के बाद यह आन्दोलन अपनी अनिवार्य प्रासंगिकता बनाये हुए है। प्रश्न उठता है कि आखिर यह प्रासंगिकता क्यों और कैसे आज भी बनी हुई है। क्या मात्र गांधीवादी विचारधारा को सम्मिलित कर देने से इसे जीवन मिला है। या समाजवाद द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतों और कार्यक्रमों के आधार पर पर इसको स्थिरता प्राप्त हुई। गंभीरतापूर्वक विचार करने से ऐसा लगता है कि केवल सिद्धांतों की दुहाई से समाजवादी आन्दोलन बार-बार नष्ट होने के बाद भी उठ कर नहीं खड़ा हुआ। इसके जीवित रहने का मुख्य कारण यह है कि ''समाजवादी आन्दोलन पिछले पचास वर्षों में निरन्तर तात्कालिक से जुड़ा रहा है। तात्कालिकता अन्याय को अनदेखा करके भविष्य के स्वप्निल संसार के धोखे से बचता रहा है। इसीलिए वह न तो अतिसाहसिकता का शिकार हुआ और न ही अतीतगामी हुआ।''[1]

पश्चिमी देशो में, वर्मा और जापान में इस आन्दोलन के समाप्त होने का मुख्य कारण था कि उन देशों में समाजवादी आन्दोलन देश की प्रासंगिकता के साथ इतनी गहराई से जुड़ा ही नहीं जितने धनीभूत रूप में भारत से यह जुड़ा रहा है। स्थिरता की जड़ता और आने वाली घटनाओं के आतंक के प्रति निरन्तर जागरूकता बनाये रखने के कारण यह आन्दोलन राष्ट्रीय मुख्यधारा का अंग बना हुआ है और देश की राजनीति और स्थापित सत्ता के विकल्प के रूप विद्यमान है।

डॉ. राममनोहर लोहिया ने प्रकाश की नई किरण की खोज के लिए एक स्पष्ट कार्यक्रम दिया जिसे सप्त-क्रांति कहा जाता है। लोकनायक जयप्रकाश नारायण ने इसे सम्पूर्ण क्रांति कहा।

इस समय हम इक्कीसवीं सदी में प्रवेश कर चुके हैं। लोहिया की बताई सात क्रांतियों और उनकी विरोधी प्रतिक्रांतियों की बीच जर्बदस्त संघर्ष चल रहा है। इस सदी में यह संघर्ष और तेज होगा। हालांकि इस समय प्रतिक्रांति की शक्तियाँ भारी पड़ रही हैं लेकिन उनका पराजित होना निश्चित है। क्योंकि क्रांति की ताकतें सारे विश्व में सक्रिय हैं।

---

1. लक्ष्मीकान्त वर्मा- **समाजवादी आन्दोलन लोहिया के बाद,** पृष्ठ 17.

लोहिया की सप्तक्रांति का प्रमुख सूत्र है। विषमताओं की समाप्ति और संभव समता की स्थापना की ओर हमारे कदम बढ़ें। पूर्ण समता एक असंभव कल्पना है। एक सतयुग है जो कभी नहीं आता। अतः लोहिया संभव समता की बात करते थे। इसके साथ- साथ हमें यह भी याद रखना चाहिए कि समाजवाद के आदर्श की क्रांति अचानक धमाके के साथ प्रकट नहीं होती। अचानक धमाके के साथ प्रकट होने वाली क्रांति साम्यवाद का लक्ष्य होती है। लेकिन ऐसी सभी क्रांतियाँ इतिहास में असफल हुई हैं। समाजवादी क्रांति लंबी प्रक्रिया है और इसके लिए सतत युद्धरत रहना पड़ता है तथा सतत सिविल नाफरमानी का रास्ता अपनाना पड़ता है।[1]

सप्तक्रांति की प्रक्रिया चल रही है। हमारे देश में ही नहीं सारी दुनिया में नर-नारी समता के लिए, चमड़ी-रंग पर रची विषमताओं के खिलाफ, जाति प्रथा की विषमताओं के खिलाफ, पूँजीवादी शोषण के खिलाफ, निजी जीवन में अन्यायी हस्तक्षेप के खिलाफ, अस्त्र-शस्त्र के खिलाफ और हर तरह की परदेशी गुलामी के खिलाफ।

संयुक्तराष्ट्र संघ ने विश्व की चार बड़ी समस्याओं को इस सदी में रेखांकित किया और इनका अध्ययन करने के लिए आयोग बिठाए जैसे : बिली ब्रांट आयोग, ब्रुंडलैंड आयोग, पाल्मे आयोग आदि। रेखांकित समस्याऐं हैं शस्त्रीकरण की समस्या, तीसरी दुनिया की गरीबी की समस्या मानव अधिकारों की समस्या और पर्यावरण प्रदूषण की समस्या। इसके लिए बिठाए गए आयोगों ने जो हल सुझाए उससे समस्याऐं कम होने के बजाय और जटिल हो गई। इनमें तीसरी दुनिया की गरीबी और पर्यावरण की समस्या का सीधा संबंध लोहिया की सप्तक्रांति के पांचवे मुद्दे से है जिसमें निजी पूँजी की विषमताओं के खिलाफ और योजनाबद्ध विकास के लिए काम करने को कहा गया है। इस समय इसके ठीक विपरीत काम हो रहा है। बहुराष्ट्रीय कंपनियों का साम्राज्य और विश्व बाजार संगठन तीसरी दुनिया के देशों को कंगाल बनाने उन्हें अकाल और भुखमरी का तोहफा देने की व्यवस्था सिद्ध हो रही है। इसके खिलाफ समाजवादियों की छोड़ कौन मोर्चा सम्हाल सकता है। क्या यह काम कांग्रेस और भारतीय जनता पार्टी कर सकती है जो पूंजीवाद की खाद पर पली हैं।

---

1. मस्तराम कपूर-**समाजवादी विचारमाला-3, विकल्प की बाधायें**, पृष्ठ 46.

जाति रंग और सेक्स की विषमताओं के खिलाफ कौन लड़ेगा? जिस जन्म-आधारित वर्णव्यवस्था पर हिंदु धर्म टिका है। क्या उसके खिलाफ भारतीय जनता पार्टी खड़ी हो सकती है और कांग्रेस भी क्यों खड़ी होगी जिसने कालेलकर आयोग और मंडल आयोग का लगातार विरोध कर वर्णव्यवस्था की रक्षा के लिए अपनी सारी शक्ति लगा दी। आरक्षण व्यवस्था डॉ. लोहिया के द्वारा दिया हुआ विशेष अवसरों का सिद्धांत है जिससे वे वर्णव्यवस्था को तोड़ना चाहते थे। इससे वर्णव्यवस्था टूट भी रही है। जैसे-जैसे वर्णव्यवस्था के सताए तबकों को अधिकार मिल रहे हैं। सत्ता वर्णीयों के हाथ से निकल कर इन तबकों के पास आ रही है। वैसे-वैसे वर्णव्यवस्था टूट रही है। उच्चवर्णीय इसे जातिवाद का उभार कह रहे हैं लेकिन यह जातिवाद का उभार नहीं है। यह जाति-व्यवस्था के टूटने के क्रम में पैदा हुई नई समस्या है जो अस्थायी है।जातिवाद का बढ़ रहा है। उन तबकों में जो वर्णव्यवस्था की रक्षा के लिए युद्ध की मुद्रा में आ गए हैं। जो कभी आरक्षणों का विरोध करते हैं और कभी धर्म के नाम पर सदियों की गली सड़ी व्यवस्था को बनाए रखना चाहते हैं। जाति व्यवस्था टूटन के क्रम में कुछ जातियाँ मजबूत हो रही हैं जबकि सत्ता का विकेंद्रीकरण सभी जातियों में होना चाहिए यह इसलिए हो रहा है। क्योंकि समता और समाजवाद का विचार पृष्ठभूमि मे धकेल दिया गया है। यह विसंगति समाजवादी विचार को पुनः प्रमुखता दे कर ही दूर हो सकती है।

सप्तक्रांति का एक विशेष मुद्दा है सभी प्रकार की विदेश गुलामी से मुक्ति। यह गुलामी आर्थिक भी है और सांस्कृतिक भी।भाषा की गुलामी इसका सबसे बड़ा कारण है आज की विडम्बना यह है कि कोई भी पार्टी विदेशी भाषा की गुलामी से मुक्ति पाने की बात नहीं कर रही है। अंग्रेजी को हटाकर भारतीय भाषाओं को उचित स्थान देने से सभी डर रहे हैं जबकि डॉ. लोहिया ने अंग्रेजी हटाओं का कार्यक्रम दिया था। अगर इस देश से अंग्रेजी हट जाए तो बहुराष्ट्रीय कंपनियों के हमले से आधा बचाव तो तुरंत हो जाएगा।इससे साधारण वर्गों के नौजवान लड़के-लड़कियों के लिए रोजगार के द्वार भी खुलेगें। लोहिया कहा करते थे कि "अंग्रेजी गैरबराबरी बढ़ाती है।और यह भारत की गरीबी का कारण भी है।"[1] क्या पचास साल से उपेक्षित भाषायी गुलामी के सवाल को समाजवादी आंदोलन को मजबूत किए बिना हल किया जा सकता है।

---

1. मस्तराम कपूर- **समाजवादी विचारमाला -3, विकल्प की बाधायें**, पृष्ठ 47.

इस समय सारी दुनिया में मानव अधिकारों और पर्यावरण-रक्षा के लिए आंदोलन चल रहे हैं। भारत में भी यह प्रक्रिया जोरों पर है। यह सप्तक्रांति का ही कार्यक्रम है जिसके लिए डॉ. लोहिया ने सतत सिविल नाफरमानी, हिमालय बचाओ, नदियाँ साफ करो आदि के आंदोलन चलाए थे। बड़े उद्योगों और जटिल प्रौद्योगिकी के खिलाफ छोटी मशीन और सरल प्रौद्योगिकी का नारा भी डा. लोहिया ने दिया था।अगर कुर्सियों के संकीर्ण दायरे में निकल कर समाजवादी इन आंदोलन की अगुवाई नहीं करेगें तो वे लोहिया का नाम लेने के हकदार कैसे होंगे।

सप्तक्रांति का अंतिम मुद्दा है शस्त्र-अस्त्र के खिलाफ संघर्ष। परमाणु हथियारों की समाप्त करने का आंदोलन इस समय विश्वव्यापी आंदोलन बना है। इन परमाणु हथियारों की काट हैं गांधी जिन्हें डॉ. लोहिया ने इस सदी का दूसरा सबसे बड़ा अविष्कार कहा था। सत्याग्रह और सिविल नाफरमानी के हथियार का विकास किए बिना शस्त्रों- अस्त्रों पर रोक नहीं लग सकती । प्रेम और अहिंसा के आदर्श को अपनाए बिना देशों के बीच आपस की दुश्मनी खत्म नहीं हो सकती। पिछले वर्षों में हमने देखा कि भारत और पाकिस्तान ने एक दूसरे- के परमाणु विस्फोटों से डर कर या अमेरिका से डाँट खाकर मित्रता स्थापित करने का प्रयास किया जो सफल नहीं हो पा रहा है। भयजन्य मित्रता का यही हश्र होता है। भारत और पाकिस्तान के बीच मित्रता का स्थायी पुल समाजवादी ही बना सकते हैं। जिनके लिए भारत-पाक एका एक पवित्र कार्यक्रम है। देश के विभाजन से आठ दिन पूर्व सभी समाजवादी नेताओं के हस्ताक्षरों से एक अपील निकली थी। जिसमें कहा गया था कि हमारी आजादी तब तक अधूरी रहेगी जब तक भारत और पाकिस्तान पुनःस्नेह सूत्र में नहीं बंधेंगे। समाजवादियों ने पाकिस्तान को कभी भारत का दुश्मन नहीं माना। भारत पाकिस्तान के बीच मित्रतापूर्ण संबंध स्थापित करने के लिए विभाजन की मानसिकता से मुक्त होना आवश्यक है और यह मजबूती समाजवादी आंदोलन से ही संभव है।

महात्मा गाँधी, लोहिया, जयप्रकाश, आचार्य नरेंद्रदेव आदि समाजवादी नेताओं ने पश्चिमी सभ्यता की विसंगतियों को पहचाना और उसके टूटने की भविष्यवाणी भी की थी। गाँधी ने 1909 में हिंद स्वराज लिख कर इस पर सभ्यता को चुनौती दी थी। यह सभ्यता

आज वास्तव में टूट रही है। और इसका स्थान नई सभ्यता लेने जा रही है। इस सभ्यता के मूल्य थे शक्तिवाद, प्रकृति के विनाश पर टिका उद्योगवाद और अपनी जरूरतों को निरंतर बढ़ाने वाला भोगवाद। लोहिया ने इन मूल्यों को नकारा और उनके स्थान पर नये मूल्य दिए। ये मूल्य हैं निर्बल के जीने का अधिकार, प्रकृति के साथ सह-अस्तित्व और सादगी का जीवन। यही तीन मूल्य नई सभ्यता का निर्माण कर रहे हैं। नई सभ्यता के निर्माण का नेतृत्व भारत के समाजवादी ही कर सकते हैं। जिन्होंने ये मूल्य घुट्टी में प्राप्त किए हैं। किंतु दुःख की बात है कि ये समाजवादी अपने ऐतिहासिक दायित्व को भूल कर छोटे-छोटे स्वार्थों में पड़ कर क्रांति-विरोधी तत्वों के आगे हाथ फैलाए खड़े हैं।

भारत की राजनीति भी इस समय चौराहे पर खड़ी है। उसे नई दिशा की तलाश है। यह नई दिशा उसे समाजवादी आंदोलन ही दे सकता है। जिसके सरोकार हमेशा दलितों, पिछड़ों और अन्य कमजोर तबकों में समता की भूख जगाने के रहे हैं। यदि आज भी ये बिखरे हुए समाजवादी अपने भेद-भाव भुला कर एक मंच पर आ जाएं तो कुछ ही महीनों मे भारत की राजनीति नया मोड़ ले सकती है।

(अ) आधुनिक राजनीति में समाजवादी चिन्तन :

समाजवाद केवल रोटी एवं रोजी का प्रश्न नहीं है। यह केवल आर्थिक संबंधों की गणित भी नहीं है। अपितु यह जीवन दर्शन है। यह जीवन की संपूर्ण प्रणाली है। यह नवीन सांस्कृतिक आंदोलन है।

वर्तमान समय में विश्वव्यापी संतुलन लडखड़ा गया है पूँजीवादी प्रवृत्तियों का समर्थक संयुक्त राज्य अमेरिका अपने संपूर्ण संवेगों के साथ विश्व पूँजीवादी साम्राज्यवाद की स्थापना के लिए प्रयत्नशील है। और ऐसा प्रतीत होता है कि उसका यह प्रयत्न एकपक्षीय हो रहा है। शोषण के विरूद्ध विश्व में और भारत में काम करने वाले जिस तेवर से अमेरिका के इस प्रयत्न का विरोध होना चाहिये नहीं कर पा रहे हैं।

संयुक्त राष्ट्र रूस टूटकर विखर गया है। और पूँजीवादी प्रेस और मीडिया एक

स्वर से इस बिखराव को समाजवाद के असफल होने का प्रचार कर रहे हैं। अपनी स्वतंत्र दृष्टि, आर्थिक और सामाजिक परिवर्तन की अपनी शैली नहीं होने के कारण चीन भी इसका अपेक्षित विरोध नहीं कर पा रहा है और अनेक मुद्दों पर उसके संबंध अमेरिका से मधुर बने हुए हैं। भारत उदारवादी आर्थिक नीति के नाम पर अमेरिकी झोले में चला गया है। रूस अपना पूर्व का महत्व खो चुका है। और इस प्रकार ऐसा दिखलाई पड़ रहा है कि आगे की डगर काफी कठिन है। लेकिन यह नहीं मान लेना चाहिए कि समाजवाद का भविष्य अंधकारमय है। जो लोग रूस में हुये बिखराव को असफलता समझते है वे भ्रम में हैं।

एशिया के दो देश चीन के 'माओत्सेतुंग' और 'भारत' के आचार्य नरेन्द्र देव ने स्पष्ट रूप से कहा कि "समाजवाद की स्थापना के निमित्त कृषक क्रांति होगी। इसलिए पूँजीवादी औद्योगिक साम्राज्यवाद के बढ़ते हुए चरण से जनतांत्रिक समाजवाद को निराश नहीं होना है। शोषण की प्रक्रिया में तीखापन आने से निराश नहीं होना है।"[1] उससे तो स्पष्ट दिखाई पड़ रहा है कि पूँजीवादी औद्योगिक साम्राज्यवाद कृषक क्रांति के पूर्व की परिस्थितियों को सृजित कर रहा है।

संसद, समाचार पत्र और मीडिया के अन्य माध्यमों से आर्थिक उदारीकरण के नाम पर विदेशी पूँजीनिवेश को इस देश में पैर पसारने की जो होड़ लगायी जा रही है उसके भयंकर परिणाम होंगे। लेकिन अमेरिका, बोत्सनिया आदि देश जिस संकट में फंस गये हैं, उससे भारत को सीख लेनी चाहिए। विदेशी कर्ज, विदेशी पूँजीनिवेश, बड़ी-बड़ी मशीनों पर आधारित पूँजीनिवेश इस देश पर दो तरफा आक्रमण कर रहे हैं। स्थिति इस सीमा तक पहुँच गयी है कि हमारी सम्पूर्ण राष्ट्रीय बचत विदेशी कर्ज के ब्याज को देने में सक्षम नहीं रह गयी है। बड़ी-बड़ी मशीनों के द्वारा विदेशी पूँजीनिवेश यहाँ के श्रमिक के श्रम की उपयोगिता को समाप्त करने में संलग्न है। देश के निर्वाचित कर्णधारों द्वारा जानबूझकर शक्तिहीन बनाया जा रहा है। और उसे बीमार और अनुपयोगी बताकर निजीकरण की नीति के पर्दे में बिक्री किया जा रहा है। यह सब कार्य उस मूल प्रवृत्ति के कारण किये जा रहे हैं जिसमें वर्तमान राजनीति के कर्णधार उस तरफ से घिरे हुए हैं जिस प्रकार अपने ही द्वारा बुने हुये जालों में मकड़ी फँस जाती है। आर्थिक उदारीकरण और विदेशी पूँजीनिवेश का सब्जबाग दिखाए

1. डॉ. अमरज्योति सिंह- **समाजवाद और जे.पी.**, पृष्ठ 299.

जाने के बाद भी किसान, मजदूर संगठित और असंगठित के आय पर कोई सुधार का प्रभाव नही पड़ रहा है। इसके विपरीत उसका जीवन दूभर होता जा रहा है। क्योंकि भारतीय सिक्के का निरंतर डालर के मुकाबले में अवमूल्यन होते जाना किसान मजदूर और अन्य श्रमिक की क्रय शक्ति को ग्रसित करता जा रहा है। स्थिति अभी भी भयानक हो रही है। आगे इसके परिणाम और भी भयानक हो सकते हैं।

ऐसे समय मे हमकों स्पष्ट आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक राष्ट्रीय नीति स्थिर करनी होगी। जो हमारे राष्ट्र को शक्तिशाली बनाने के साथ-साथ हमारे जनतांत्रिक पद्धति को तेजस्विता प्रदान करें और बहुजन समाज को उसके श्रम का शोषण होने से बचाते हुए समानता का समाज स्थापित करें।

भारत में वर्तमान समय में राजनीतिक कर्णधारों नौकरशाहों और देश के नवपूँजीपतियों के षडयंत्रकारी गठबंधन राष्ट्र को उसी दिशा में ले जा रहा है। वह स्थिति आने पर बेचैन, विकरालता और तड़प का असहनीय दृश्य राष्ट्र में उपस्थित हो जायेगा। किन्तु इस स्थिति की तुलना प्रसव पीड़ा से की जा सकती है। अर्थात् स्थिति से मुक्ति पाने के लिए आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक क्रांति अवश्यभावी हो जायेगी।

हमें वह स्थिति आती हुई तो दिखाई दे रही है किन्तु साथ यह आशंका भी हो रही है कि पिछले समय में महात्मा गांधी के नेतृत्व में स्वतंत्रता प्राप्ति की क्रान्ति सफल हो जाने पर भी असफल बना दी गयी और जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व में संपूर्ण क्रांति आंदोलन सफल हो जाने पर आंदोलन को विफल बना दिया गया फिर उसी प्रकार पूँजीवाद और औद्योगिक साम्रज्यवाद के विरूद्ध यदि सजगता और सतर्कता नहीं बरती गयी तो जनतांत्रिक समाजवाद के पक्ष में होनी वाली क्रांति को उसके विरोधी असफल बनाने की कुचेष्ठा कर सकते हैं। इसके लिए आवश्यक है कि वर्तमान स्थिति से मुक्ति पाने के लिए गांवों की इकाई स्तर पर और औद्योगिक केन्द्रों की इकाई के स्तर पर किसानों और मजदूरों के संगठन उन्हीं के नेतृत्व में बनें। जब तक क्रान्ति का नेतृत्व सर्वहारा के हाथ में नहीं रहेगा क्रान्ति हो जाने के बाद भी वह प्रति क्रान्ति में परिवर्तित हो जाने की संभावना में घिरी रहेगी।

जनतांत्रिक समाजवादी क्रांति समय की स्वाभाविक आवश्यकता पूँजीवादी साम्राज्यवाद से मुक्ति पाने के लिए है। क्रान्ति के बाद जनतांत्रिक समाजवाद स्थापित करने के लिए और उसे स्थायित्व प्रदान करने के लिए कुछ अत्यंत आवश्यक कार्य क्रान्ति के पूर्व करना अनिवार्य हैं।[1]

1. जनतांत्रिक समाजवाद स्थापित करने में योगदान के लिए युवकों का प्रशिक्षण।
2. जनतांत्रिक समाजवाद को स्थायित्व प्रदान करने के लिए जनशिक्षा।
3. आधुनिक दृष्टिकोण वाले समाज का सांस्कृतिक आंदोलन के आधार पर निर्माण।

पूँजीवादी प्रतिस्पर्द्धा से जिस समाज की रचना होती है उसमें श्रेणी नैतिकता स्थापित होती है। अर्थात् शोषक वर्ग अपने वर्ग में नैतिकता का आचरण करता है। यह बहुसंख्यक समाज जिसका शोषण हो रहा है उसके प्रति नैतिक होने का दावा नहीं करता है। और पूँजीवादी लोकतंत्र में भी सोच की यह प्रक्रिया कार्य करती है। अपने वर्ग हित के लिए जिस तरह से वर्ग नैतिकता का प्रयोग पूँजीवादी समाज में होता है। वह अपने वर्ग पर भी आधिपत्य कायम रखने के लिए वर्ग के भीतर अनैतिकता को जन्म देता है सफल समाज में नैतिकता की स्थापना तो समतामूलक समाज में ही की जा सकती है। यदि हम संपूर्ण रूप से नैतिक समाज की स्थापना करना चाहते हैं तो हमें समाजवादी दर्शन को स्वीकार करना होगा।

खुले बाजार, स्वतंत्र प्रतिस्पर्द्धा, पूँजी के आधार पर पूँजी का उत्पादन, श्रम का शोषण सुविधा सम्पन्न वर्ग द्वारा असुविधा में पड़े हुए लोगों का शोषण न केवल अनैतिक आचरण को जन्म देता है बल्कि हिंसा उत्पन्न कर युद्ध में परिणित करता है। हिंसा और युद्ध पूँजीवादी समाज की अनिवार्य परिस्थितियाँ हैं वर्तमान समय में उपस्थित समस्याओं का समाधान हिंसा और युद्ध से कभी भी संभव नहीं है।

बीसवीं सदी में आमतौर पर यह विश्वास बना हुआ था कि पूँजीवादी समाज समाजवादी समाज में रूपांतरित हो सकता है। इक्कीसवीं सदी में यह स्थिति नहीं रही है। अब सब देश और सब पार्टियाँ पूँजीवाद के उग्रतम रूप भूमंडलीकरण की गिरफ्त में हैं जो

---

1. डॉ. अमरज्योति सिंह- **समाजवाद और जे.पी.** पृष्ठ 302.

कुछ असहमति के स्वर सुनाई देते हैं उनमें भी जोर इस व्यवस्था में कुछ सुधार करने पर रहता है, न कि इसके स्थान पर समाजवादी व्यवस्था लाने पर। भूमंडलीकरण, उदारीकरण, निजीकरण, बाजार-व्यवस्था, बाजार द्वारा निर्धारित नैतिकता आदि बातों पर एक आम सहमति बनी दिखाई देती है।

सरकार जनता के पैसे से निर्माण करे, कारखाने लगाए हवाई अड्डे और सड़के बनाए परिवहन और संचार का मूल ढाँचा तैयार करे और फिर रखरखाव और प्रबंध के बहाने उन्हें निजी कंपनियों को सौंप दे ताकि कंपनियाँ डटकर मुनाफा कमाएँ और जिस जनता का पैसा लगा है वह उन सुविधाओं से वंचित हो जाए इस व्यवस्था का औचित्य सिद्ध करने के लिए बुद्धिजीवियों की तरफ से तरह-तरह की दलीलें दी जा रही हैं। समाज में समता स्थापित करने की बात करने वालों को मूर्ख माना जाता है।

विचार की यह इकतरफा दिशा कब से हुई इस बारे में एक बात तो साफ दिखाई देती है कि सोवियत संघ के विघटित होने और विश्व के एकध्रुवीय बनने की घटना ने इसमें बड़ी भूमिका निभाई। इसी के बाद कहा जाने लगा कि इतिहास का अंत हो गया है। इतिहास की एकरेखीय कल्पना जो पश्चिमी देशों के विद्वानों में लोकप्रिय रही, इस प्रकार का भ्रम पैदा करने में सहायक हुई। लेकिन इतिहास की गति कभी रूकती नहीं है और न, इतिहास एक रेखा में आगे बढ़ता है। इतिहास की गति चक्रीय होती है, इतिहास की रेखीय कल्पना से सभ्यताओं के उत्थान-पतन के क्रम को व्याख्यायित नहीं किया जा सकता।

डॉ. राममनोहर लोहिया ने "पूँजीवादी और सम्यवादी दोनों व्यवस्थाओं को एक ही सभ्यता की संतान कहा था।"[1] यह औद्योगिक क्रांति की सभ्यता है जिसके मूल्य हैं प्रोद्यौगिकी में सतत् विकास, उत्पादन और उपभोग में सतत् वृद्धि इसका लक्ष्य पूर्ण क्षमता नहीं, एक ही दिशा में अधिकतम क्षमता है। जैसे डायनासोरों ने शरीर के आकार और बल में अधिकतम क्षमता प्राप्त करने की दिशा पकड़ी, वैसी ही इस सभ्यता की दिशा रही और इसीलिए लोहिया ने कहा कि यह सभ्यता डायनासोरों की तरह अपने ही भार से नष्ट हो सकती है। डॉ. लोहिया ने 1951 में अमेरिका की अपनी यात्रा के दौरान कहा था कि "यह

---

1. मस्तराम कपूर- **समाजवादी बुलेटिन** (लेख), जून 2007.

सभ्यता मर चुकी है और लाश के रूप में यह पचासों साल घिसटती रह सकती है।"[1]

पूँजीवादी देशों ने अपने यहाँ आर्थिक और सामाजिक समता लाने अथवा उन विषमताओं या गैरबराबरियों को कम करने की कोशिश की, जिसके लिए उन्होंने कल्याणकारी राज्य की कल्पना विकसित की। इसमें अमेरिका यूरोपीय देशों से पीछे नहीं है। लेकिन गैरबराबरी को देखने की उनकी दृष्टि संकीर्ण थी। उन्होंने आर्थिक गैरबराबरी को देखकर भी अनदेखा कर दिया। इसके परिणाम अब उनके सामने आ रहे हैं। फ्रांस के देशों ने यूरोप के सारे देशों को इस बात पर विचार करने के लिए मजबूर कर दिया है कि दूसरे देशों से आकर बसे या लाकर बसाए गए भिन्न नस्ल के लोगों में जो असंतोष भड़का है उससे कैसे निपटा जाएं। समाजवादी चिंतको के इस भोले विश्वास ने कि आर्थिक समस्या ही सब समस्याओं की जड़ है, यूरोप के लोगों को इस भुलावें में रखा कि उनकी आर्थिक समृद्धि और उस पर आधारित जनकल्याण की योजनाएं किसी असंतोष को उभरने नहीं देगी। अमेरिका ने भी अपने अश्वेत और मिश्रित आबादी के असंतोष के शमन के लिए अफर्मेटिव एक्शन शुरू किया, पर इसका स्वरूप आर्थिक ही रहा।

कैटरीना तूफान ने अमेरिका के अफर्मेटिव एक्शन की सारी पोल खोल दी और नस्लवाद खुलकर सामने आ गया। यूरोप-अमेरिका की देखादेखी भारत के नेताओं ने भी अपने देश की सामाजिक विषमता को ढक कर रखने की कोशिश की। हालांकि भारतीय संविधान ने विषमता को दूर करने के सुचिंतित उपाय किए थे, मगर इन उपायों को ठीक प्रकार से लागू नहीं किया गया। आरक्षण की योजना इसी प्रयोजन के लिए थी लेकिन उसे ठीक तरह से लागू करने के लिए हमें समय-समय पर जातियों के शैक्षिक-सामाजिक स्थिति के आंकड़े जमा करने चाहिए थे।

हमारे नेता इससे बचते रहे क्योंकि उन्हें डर था कि ये आंकड़े सामने आए तो जातिगत शोषण की वास्तविक स्थिति सामने आएगी। संयुक्त मोर्चा सरकार ने इन आंकड़ो को इकट्ठा करने का फैसला किया था, मगर वाजपेयी सरकार ने आते ही इस फैसले को रद्द कर दिया। समस्या की जड़ों पर प्रहार करने की बजाय हमने भी यूरोपीय देशों की

1. मस्तराम कपूर- **समाजवादी बुलेटिन** (लेख), जून 2007.

नकल पर बचकाना उपाय किये जैसे- नामों के साथ जातिबोधक शब्द मत लगाओं, जातिगत समस्याओं पर बहस ही न करो आदि। हमारे समाज की आर्थिक विषमताएँ बहुत हद तक सामाजिक विषमताओं के कारण बनी हैं। भूमंडलीकरण की प्रक्रिया इन विषमताओं को और बढ़ाती जा रही है। हम कितना ही धन जमा कर लें, कितने ही परमाणु हथियार बना लें, टेक्नोलॉजी की कितनी ही क्रांतियाँ कर लें, इन गैरबराबरियों के चलते सुखी और सुरक्षित नहीं रह सकते।

डॉ. लोहिया कहा करते थे कि "समाजवाद लाना कठिन है। क्योंकि जिनको इसकी जरूरत है उनमें जान नहीं है और जिनमें जान है उनमें इच्छा शक्ति नहीं है। इसलिए बेजान लोगों में जान पैदा करना साथ ही लोगों में इच्छा पैदा करना जरूरी है। औरत, दलित आदिवासी पिछड़ावर्ग एवं गरीब मुसलमान समाज के ये पाँच वर्ग हैं जो हर प्रकार से शोषित हैं और पत्थर हो गये हैं। जैसे पत्थर की चट्टान को तोड़कर जमीन के नीचे से पानी निकाला जाता है उसी प्रकार से समाज के इन शोषित वर्गों के अन्दर नयी चेतना और शक्ति पैदा करना आवश्यक है।"[1] आज पूरा परिदृश्य बदल गया है।

वैश्वीकरण, निजीकरण और बाजारीकरण की पूँजीवादी अर्थव्यवस्था ने राजनैतिक संकट के साथ-साथ आर्थिक सामाजिक और सांस्कृतिक संकट पैदा कर दिया है। पूँजीवादी पद्धति के विकास के दौर में मध्यम वर्ग का आकार और प्रभाव लगातार बढ़ रहा है। आजादी के पहले यह मध्यम वर्ग छोटा था और इसका जोर आधुनिक शिक्षा तथा औद्योगिक उत्पादन पर अधिक था। यह राष्ट्रीयता और आजादी के मूल्यों से ओत-प्रोत था। इसीलिए वह आधुनिकता और नये विचारों का वाहक बना। आजादी के बाद दो बड़े शक्तिशाली वर्ग थे। एक बड़े पूँजीपतियों का और दूसरा बड़े खेतिहर किसानों का। कांग्रेस पार्टी इन्हीं दोनों वर्गों के हितों में सामंजस्य स्थापित करती रही। परन्तु 1980 के बाद के दशक में नयी आर्थिक नीति की शुरूआत हुई। नये कारखाने, देशी व विदेशी औद्योगिक इकाइयाँ खुलने लगीं और पूँजीवादी विकास की गति तेज हुई तो इस मध्यम वर्ग का आकार बढ़ गया और यह निरन्तर शक्तिशाली होता गया। यह जनमत का निर्माता होता गया।

---

1. बृजभूषण तिवारी- **समाजवादी बुलेटिन** (लेख), अप्रैल-मई 2007.

सरकार चाहे जिसकी हो, नियंत्रण और प्रभाव इसी वर्ग का है। पूँजीवाद का सांस्कृतिक साझी यही मध्यम वर्ग है और कांग्रेस के विघटन के बाद इसके राजनैतिक साथी भाजपा व अन्य साम्प्रदायिक संगठन हैं। इसी वर्ग ने पूँजीवाद के प्रति लोगों में जो आंतरिक सहमति पैदा की ऐसा पहले कभी नहीं हुआ और यही कारण है कि सरकारों के बदलने से इसके गति में कोई फर्क नहीं पड़ रहा है पूँजीवादी विकास में जहाँ सम्पत्ति और संसाधनों पर एक छोटे से वर्ग का वर्चस्व हो जाता है, वहीं जनसंख्या का बहुसंख्यक वर्ग गरीबी के दल-दल में फंसता जाता है। यह पूरी व्यवस्था बाजार आधारित है जिसका रिश्ता उपभोग से है। अमरीकी राष्ट्रपति बुश ने एशिया सोसायटी के अपने भाषण में कहा भारत में करीब तीस करोड़ लोग हैं जो अमरीकी कम्पनियों के उत्पाद का इस्तेमाल करते हैं। यह शाहखर्च वर्ग है। यह आबादी अमरीका की आबादी से बड़ी है। बहुत बड़ा बाजार है जिसके ऊपर हमारी सम्पन्नता आधारित है। पश्चिमी देशों की नजर इसी तीस करोड़ मध्यम वर्ग पर है। इस वर्ग की विशेषता है कि यह आत्मकेन्द्रित है तथा किसी विचार के प्रति कोई निष्ठा नहीं है। यह लोगों में राजनीति के प्रति घृणा पैदा करता है और राजनीति के पैनापन को खत्म करता है।

किसी भी बड़े परिवर्तन का औजार राजनीति ही है। करूणा और क्रोध इसके प्रमुख तत्व हैं यदि गरीब और शोषित के प्रति हमारी संवेदना खत्म हो जाएगी और शोषक के प्रति हमारे मन में क्रोध नहीं रहेगा तो परिवर्तन की इच्छा खत्म हो जाएगी। आज के पूँजीवाद का सबसे बड़ा लक्ष्य है लोगों में परिवर्तन की इच्छा को मारना। जबकि परिवर्तनकारी राजनीति और समाजवाद का लक्ष्य लोगों में बदलाव और समता की भूख पैदा करना है। आज का जो पूरा राजनीतिक तंत्र है वह केवल चुनावी राजनीति पर आधारित है। इसीलिए सारी विकृतियाँ आ गयी हैं। पैसा, जाति, हथियार और अपराध सत्ता हासिल करने के प्रमुख हथियार हो गये हैं।

डॉ. लोहिया ने इसीलिए सत्ता हासिल करने और क्रान्तिकारी परिवर्तनकारी राजनीति के लिए वोट, जेल और फावड़ा ये तीन हथियार बताए थे। समाजवादी लोग और डॉ. अम्बेडकर वयस्क मताधिकार के सबसे अधिक पक्षधर थे। वोट सामाजिक और राजनैतिक

परिवर्तन का सबल हथियार है। परन्तु साथ-साथ जनता की रोजमर्रा की समस्याओं और दीर्घकालिक बड़े लक्ष्यों को लेकर निरन्तर संघर्ष नहीं करेंगे तो यह वोट का औजार भी मोथरा हो जायेगा।

आज सबसे बड़ा संकट यह है कि हम लोगों में विचारों के प्रति आकर्षण और निष्ठा नहीं पैदा कर पा रहे हैं। निरन्तर विचार-विमर्श से विचारों में स्पष्टता आएगी और निरन्तर संघर्ष से लोगों में साहस और दृढ़ता पैदा होगी और तभी हम इस शोषणकारी व्यवस्था के विरूद्ध लड़कर अपने लोकतंत्र को जीवंत कर सकेंगें। साथ ही परिवर्तन की भूख जगाकर लोगों में चेतना एवं साहस पैदा कर सकेंगें।

इसमें संदेह नहीं है कि सोवियत संघ ने दुनिया भर में साम्राज्यवाद के खिलाफ राष्ट्रीय स्वतंत्रता के लड़ाकों की पूरी मदद की, उनका समर्थन किया। साम्राज्यवाद से मुक्ति प्राप्त देशों जैसे मिश्र, पश्चिम एशियाई देशों, वियतनाम और भारत को भी संकट के अवसरों पर उसकी ठोस सहायता मिली। यह एक निर्विवाद सत्य है कि उसके बिखरने व दुर्बल बनने के बाद की दुनिया अमेरिकी पूँजीवाद और नव-साम्राज्यवाद के प्रहारों के सामने लाचार हो गई है।

समता के आन्दोलन की ही नहीं, बल्कि उसके विचार और उसकी दार्शनिक भूमिका की तीव्र आलोचना दुबारा चल पड़ी है। सोवियत संघ के बिखराव के बाद वहाँ और पूर्वी यूरोप के सभी देशों में कम्युनिस्ट पार्टियों के पराभव के कारण इस आलोचना को एक नया और भरपूर अवसर मिला है। अब पूरे जोर-शोर के साथ दुनिया भर में यह प्रचार होने लगा है कि पूँजीवाद का कोई विकल्प नहीं है क्योंकि साम्यवाद और समाजवाद पूर्णतः असफल हो गए हैं। यह बात कितनी अवास्तविक है, इसका अन्दाज तीसरी दुनिया के देशों के आर्थिक शोषण से हो जाता है जो पश्चिम के पूँजीवाद और उसके संवाहक बहुराष्ट्रीय निगमों द्वारा किया जा रहा है। सोवियत संघ और पूर्वी यूरोप में साम्यवाद की हार को न तो समता के आदर्श की अस्वीकृति माना जा सकता है न ही साम्यवाद को समाजवाद के अनुरूप मानकर समाजवाद की असफलता का ऐलान किया जा सकता है।

समता के राजनीतिक आयाम के साथ-साथ सामाजिक आयाम को भी उतना ही महत्व देना चाहिए। विशेषकर ऐसे देशों में जहाँ धार्मिक, जातीय या भारतीय समाज की जाति व्यवस्था के आधार पर समाज के विभिन्न समूहों में ऊँच-नीच, श्रेष्ठता और दीनता की स्थिति है, वहाँ सामाजिक समता महत्वपूर्ण बन जाती है। इसलिए समता के सभी आयामों को एक साथ रखकर उसके सम्पूर्ण दर्शन के आधार पर समाज परिवर्तन की नीति को निर्धारित करना चाहिए। समाजवादी आन्दोलन में इस बात पर पूरा बल दिया गया है और इसी संदर्भ में जयप्रकाश नारायण ने सम्पूर्ण क्रान्ति और डॉ. लोहिया ने सप्त-क्रान्ति की बातें कही थीं। सामाजिक समता के प्रवर्तक डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने भी समता के आर्थिक आयाम को कम महत्त्व नहीं दिया और वे बराबर आर्थिक विषमता के खिलाफ भी लड़ते रहे। उन्होंने 1949 में यह अनुरोध किया था कि बड़े उद्योगों, बैंकों बीमा कम्पनियों और भूमि का राष्ट्रीयकरण कर देना चाहिए। इसी तरह संविधान में मौलिक अधिकारों के अध्याय के द्वारा राजनीतिक समता को भी उन्होंने सगुण रूप दिया था। आज भी यह जरूरी है कि सामाजिक न्याय और समता, आर्थिक न्याय और समता और राजनीतिक समता अर्थात् लोकतंत्र के आन्दोलनों को एक-दूसरे के साथ जोड़कर चलाया जाएं और सभी प्रकार की विषमता के खात्मे को ही लक्ष्य बनाया जाए।

(ब) डॉ. लोहिया के चिन्तन की प्रासंगिकता-

डॉ. राममनोहर लोहिया हमारे देश के ऐसे महान व्यक्ति थे जिन्हें कालजयी कहा जा सकता है। काल का स्वभाव है कि वह जैसे-जैसे बीतता है व्यक्तियों और घटनाओं को विस्मृति के गर्त में ढकेलता जाता है। लेकिन कुछ व्यक्ति अपने विचारों के कारण काल की इस गति को उलट देते हैं और जैसे-जैसे समय बीतता है उनकी स्मृति, उनकी प्रासंगिकता बढ़ती जाती है। लोहिया के बारे में यही हुआ है। लोहिया के निधन के चार दशक बीत गये है किंतु इनके विचार भारत के संदर्भ में ही नहीं समूचे विश्व के सन्दर्भ में आज अधिक प्रासंगिक माने जा रहे हैं।

मार्क्सवादी समाज और दर्शन में मानव प्रकृति तथा व्यक्ति की अवहेलना के स्थान पर डॉ. लोहिया के जनतांत्रिक समाजवाद में व्यक्तिगत दायित्व, मानव

स्वभाव के आधार पर नियंत्रित पूँजीवाद की धारणा की स्वीकृति और सत्ता के विकेन्द्रीयतावाद की स्वीकृति साथ ही जन शुभांरम्भ (पीपुल इंसीसिपेटिक्व) की धारणा का विकास–

मार्क्सवाद की जो आलोचना डॉ. लोहिया ने की थी उसके कई कारण थे। परन्तु मार्क्सवादी दर्शन में मानव की स्वतंत्रता का हनन होना प्रमुख है। चाहे कोई भी व्यवस्था हो मानव स्वतंत्रता चाहता है। मानव प्रकृति से ही स्वतन्त्र होता है। जब सामाजिक परिवेश में रहता है तो बन्धनों में बंधता है। इसी प्रकार जो भी राजनैतिक व्यवस्था हो मनुष्य स्वतंत्रता चाहता है। क्योंकि ऐतिहासिक अध्ययन से स्पष्ट है कि मानव रोटी के स्थान पर स्वतंत्रता को पसंद करता है। मार्क्सवादी दर्शन में सभी बातें ठीक थीं, जैसे सर्वहारा और शोषित के लिए लड़ना और निजी सम्पत्ति की समाप्ति। मार्क्सवाद के विघटन का कारण व्यक्ति की अवहेलना है। यदि व्यक्ति की वाणी पर प्रतिबन्ध न लगा होता तो मार्क्सवाद की कमियाँ सामने आती रहती। उनमें सुधार की गुंजाइश रहती।

डॉ. लोहिया ने अपने दर्शन में सबसे अधिक ध्यान व्यक्ति की स्वतन्त्रता पर दिया है। विशेषकर व्यक्ति के मौलिक अधिकारों के प्रति सबसे ज्यादा सजग थे। कई बार अपनी गिरफ्तारी के विरोध में, न्यायालयों में पौराणिक सुकरात, गांधी को उद्धत करते हुए व्यक्ति के मौलिक अधिकारों के लिए लड़े हैं। अन्याय करने पर, निहत्थी जनता पर गोली चलाने पर, खुद ही अपनी सरकार से इस्तीफा मांग लिया था। जो मूलतः पार्टी विघटन का कारण बना। डॉ. लोहिया ने अपने संभव बराबरी, निजी सम्पत्ति की सीमा निर्धारित करना, उपभोग पर नियंत्रण, उत्पादन के साधनों का वितरण और मानव के द्वारा मानव का शोषण न हो इसके राजनीतिक दर्शन की विशद् व्याख्या की। सरकार के सभी कार्यो में जनता की समुचित भागीदारी हों। अन्याय के खिलाफ सामान्यजन को खड़ा करना लोहिया की महत्वपूर्ण उपलब्धि है, अन्याय और शोषण के खिलाफ, कमजोर व्यक्ति को प्रतिरोध करना डॉ. लोहिया ने सिखाया था। आन्दोलन के दौरान जहाँ गाँधी हर गाँव में गाँधी पैदा करने में सफल रहे हैं, वहीं लोहिया भी अपने पार्टी कार्यक्रमों जनसमस्याओं के आंदोलनों में हर जगह लोहिया पैदा करने में सफल रहे हैं। शासन सत्ता की विकेन्द्रीकृत की स्थापना जो डॉ. लोहिया ने 'चौखम्भा राज्य' का मॉडल प्रस्तुत किया था, उसे प्रायः सभी राजनैतिक दलों और सरकारों ने मान लिया है।

वैश्विक स्तर पर डॉ. लोहिया के दर्शन का महत्व, वैश्विक स्तर पर पूँजीवाद-साम्यवाद दोनों विकल्पों की असफलता और डॉ. लोहिया के चिन्तन की प्रासंगिकता-

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर समाजवादी आंदोलन जिस विखराव के रास्ते पर चल रहा है। ऐसी परिस्थितियों में डॉ. लोहिया के विचारों और सिद्धान्तों की पुनः व्याख्या करना आवश्यक हो गया है। डॉ. लोहिया ने समाजवाद की जो व्याख्या प्रस्तुत की थी वह अनेक समाजवादियों के अनुकूल न होने के कारण आलोचना का विषय रही। लोहिया की विचारधारा समग्रवादी थी। इसी दृष्टि से 'विश्ववादी' दृष्टि विकसित हुई। डॉ. लोहिया अपने को विश्व नागरिक मानते थे।

वर्तमान समय में समाजवादी आंदोलन विखर गया है। साम्यवादी देश अपने ही अन्तर्विरोधों से टूट गए हैं। हालांकि डॉ. लोहिया ने इस विघटन की भविष्यवाणी बहुत पहले कर दी थी क्योंकि उनका मानना था कि 'साम्यवाद और पूँजीवाद दोनों के उद्देश्य एक जैसे हैं।'

व्यक्ति और समाज की इस नई दृष्टि से जब वह समाजवाद की नयी व्याख्या करते है तो समाजवाद में स्वतः एक सकारात्मक एवं गुणात्मक परिवर्तन आ जाता है अमरीका में एक जनसमूह के समक्ष डॉ. लोहिया ने अमरीका और रूस के भौतिक विकास की आलोचना करते हुए कहा था कि ''वर्तमान सभ्यता मेरे लिए अर्थहीन हो गई है। चाहे वह अमरीकी सभ्यता हो या रूसी, दोनों ही हमारे लिए अप्रांसगिक हैं। मैं दोनों को विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि मैं यह वाक्य किसी नैतिकता के आधार पर नहीं कह रहा हूँ। मैं आपसे न तो गांधी की चर्चा कर रहा हूँ और न ही मैं अहिंसा या भारत की आध्यात्मिकता की दुहाई दे रहा हूँ क्योंकि कुछ मायनें में आज का यूरोपियन और अमरीकन भारतीय से ज्यादा आध्यात्मिक हो सकता है। मैं जिस आधार पर यह कह रहा हूँ वह दूसरा है और वह यह है कि वर्तमान मौजूदा सभ्यता आने वाली दुनिया के लिए अप्रांसगिक हो चुकी है। आज न्यूयार्क या मास्को जितने बड़े पैमाने पर फैक्ट्रियाँ बढ़ाते जा रहे हैं वह सब अर्थहीनता पर पहुँच गये हैं। जिस दुनिया की रचना हम कल के लिए करना चाहते हैं, उसमें से गरीबी

को निकाल बाहर फेंकने का संकल्प है। इसलिए जब में कहता हूँ कि यह कल की दुनिया के लिए अप्रासंगिक है, तो उसके पीछे यह सपना गरीबी हटाने का है न कि कोई नैतिक दबाव। "1

डॉ. लोहिया की समाजवादी दृष्टि संदर्भित होती थी। उसे संदर्भ देने वाली, उनकी देश, काल और ऐतिहासिक स्थिति से उपजी हुई कर्म करने की अनिवार्यता होती थी, उन अनिवार्यता के साथ नितांत स्थानीय विश्व चेतना के उद्भूत समाज दोनों ही एक दूसरे के पूरक अंग होते थे। मन से 'समता' के प्रति संघर्षशील रहना और 'जनइच्छा' को अभिव्यक्ति देने के लिए सम्पूर्ण परिवर्तन की समग्रता को पकड़कर न छोड़ना उनके चिंतन और कर्म के अविभाज्य अंग थे। वह समाजवाद को उसकी समग्रता ही में जागरूक करना चाहते थे। ऐसे अनुभवी और आत्मशिल्पी थे जो समाजवादी जीवन दर्शन को सम्पूर्ण मानवता के लिए प्रस्तुत करते थे।

वह जब आध्यात्मिकता को भौतिकता के साथ अपरिहार्य मानने की बात करते थे तो एक दार्शनिक लगते थे। सामाजिक क्रांति के लिए मन की चर्चा करते थे। समता में मर्यादा की बात करते थे तो लगता था कि वह नैतिकता के प्रखर प्रकाश में मानव आत्मा को प्रकाशित करना चाहते थे। जब वह सामाजिक विषमताओं की चर्चा करते हुए एक ऐसी क्रांति का आवाह्न करते थे जिसमें उथल-पुथल मच जावे, तो वह एक सशक्त क्रांतिकारी लगते थे। समस्त विश्व के साहित्य मिथक, पुराण, स्थापत्य, संगीत और नृत्य का विश्लेषण करते थे तो लगता था कि एक कवि मन अपनी रचनाधर्मिता का परिचय दे रहा है। कहने के लिए तो लोग कहते हैं कि डॉ. लोहिया आस्कर जस्सी जैसे समाजवादी थे, पर लोहिया जिस समाजवाद की कल्पना करते थे, उसमें अर्थशास्त्र, धर्म, नीतिशास्त्र, विधि, समाजशास्त्र और सौन्दर्यशास्त्र प्राणहीन पदार्थ न होकर क्षण-प्रतिक्षण जीवन प्रवाह के साथ-साथ गतिशील प्रकाश स्तंभ लगते थे, उन्होंने चेतनाशून्य समाजवादी विचारधारा के नये प्राण फूँकने की कोशिश की थी, इसलिए उनका समाजवादी चिन्तन आज भी हमारा पथ आलोकित करता है।

डॉ. लोहिया गांधी की अगली कड़ी थे। उन्होंने महात्मा गांधीके विचारों को आगे

1. लक्ष्मीकान्त वर्मा-**समाजवादी दर्शन और डॉ. लोहिया**, पृष्ठ 48-49.

बढ़ाया और साथ ही अपने मौलिक चिंतन से एक नई सभ्यता की रूपरेखा विश्व के समक्ष प्रस्तुत की। यह रूपरेखा लोहिया की सत्तक्रांति के रूप में जानी जाती है। डॉ. लोहिया के चौखम्भा राज्य में नये समाज की यह समग्र दृष्टि अंतर्निर्हित है। चौखंभा राज्य इस नई सभ्यता का नये समाज का विचार है जिसे लोहिया ने हमें बीज के रूप में सौंपा है।[1]

डॉ. लोहिया के चिन्तन के सार्वभौमीकरण की सम्भावना का रेखांकन-

डॉ. लोहिया ने भारतीय समाज की सड़ी गली जिस व्यवस्था को बदलने का सपना देखा था, वह राजनैतिक चेतना में परिवर्तित होकर कार्यरूप में परिणित हो रहा है। समाज के विषय में जो आदिकाल से मान्यताएँ चली आ रही थीं उनको डॉ. लोहिया ने अपने क्रांतिकारी कार्यो से बदला है। यदि वे जीवित होते तो निश्चय ही यह सपना पूरा होता देखते। डॉ. लोहिया की राजनैतिक भविष्यवाणीयाँ सत्यसिद्ध हुई हैं। आर्थिक विकास के सभी मॉडल ध्वस्त हो गए हैं। यदि कभी भी भारत का आर्थिक विकास हो सकता है तो केवल डॉ. लोहिया का गांधीवादी रास्ता ही हो सकता है।

डॉ. लोहिया ने राजनीतिज्ञों के लिए जो आचार संहिता स्थापित की थी वह आज आवश्यक हो गई है। वर्तमान राजनीतिक उठापटक, सिद्धान्तहीन दलों का गठन, कथनी करनी में अन्तर, चुनावी हिंसा, चुनाव में जाति, पैसा, अराजकता का प्रवेश। यदि इन सब बातों से मुक्ति पानी है तो डॉ. लोहिया के सिद्धान्तों को अपनाना होगा। डॉ. लोहिया ने योजनाओं की असफलता की भविष्यवाणी की थी। सार्वजनिक क्षेत्र, विदेशी कर्ज इन सब बातों पर ध्यान आकर्षित किया था। वह सब भविष्यवाणीयाँ आज सत्य सिद्ध हुई हैं।

यह बात तो हम सब जानते हैं कि सभ्यताएँ दस-बीस वर्षो में नहीं बनती। कुछ विचार सभ्यताओं के बीज बनते हैं और फिर कई पीढ़ियों को खाद-पानी बनकर अपने को खपाना पड़ता है। तब कहीं अंकुर निकलता है। इस बीज को अंकुर में बदलने के लिए कितना त्याग बलिदान दिया, कितना खाद-पानी दिया, इस बात पर उन सब लोगों को गम्भीरता से विचार करना चाहिए जो अपने को लोहिया का अनुयायी कहते हैं।

---

1. मस्तराम कपूर-**कल की राजनीति**, पृष्ठ 11.

अध्याय-आठ

उपसंहार

8
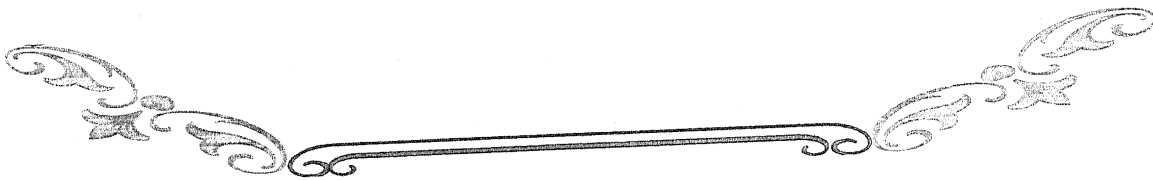
उपसंहार

स्वतंत्रता के पश्चात् भारत में डॉ. लोहिया आखिरी राजनीतिज्ञ थे । जिन्होंने देश की राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक दशा के बारे में बुनियादी सवाल उठाए और यथास्थिति को बार-बार चुनौती दी। इसमें सन्देह नहीं है कि उनके मौलिक विचारों ने भारतीय लोकतंत्र, उसकी संस्थाओं, परम्पराओं, लोकमतों एवं राजनीतिक शिक्षाओं इत्यादि समस्त बातों को गहराई तक प्रभावित किया।

''अंग्रेजी हटाओं,'' ''हिमालय बचाओं'' ''दाम बांधो'' आदि ऐसे कार्यक्रम थे जिन्हें सफल बनाने के लिए डॉ. लोहिया अपने दल के बाहर के लोगों से भी आवाह्न करते थे। इसी तरह उन्होंने खाद्य समस्या को हल करने के लिए अन्न सेना और निरक्षरता मिटाने के लिए साक्षरता सेना बनाने पर बल दिया था। अलाभकारी जोतों से लगान हटाने की नीति, जिसे अब प्रायः सभी दलों ने मान लिया है, जिसके लिए डॉ. लोहिया ने काफी संघर्ष किया। इतने सारे मौलिक विचार और कार्यक्रम होने के बाबजूद डॉ. लोहिया भारत में अधिक लोकप्रिय नहीं हो सकें। उनकी छवि एक विद्रोही की ही बनी। ऐसा लगता है कि डॉ. लोहिया अपने विचारों पर इतने मुग्ध थे कि उनका मानना था कि उनके विचारों के प्रचार मात्र से एक क्रांतिकारी माहौल तैयार हो जायेगा। जबकि वास्तविकता में क्रांतिकारी वातावरण लगातार रचना और संघर्ष से बनता है। लोहिया को लगता रहा कि सही ढ़ंग से बहस चलाई जाये। तो एक दिन जनता अपने अधिकारों के लिए संघर्ष को तत्पर होगी।

आज लोहिया नहीं है और न बैचेनी का वह माहौल ही है। दुनिया भर में लगता है एक क्रांतिकारी उभार आया हुआ है। लोकतंत्र और समाजवाद दोनों के आंदोलन को धक्का लगा है। तथा आणविक विनाश का खतरा अलग से मंडरा रहा है। भारत में भी बदलाव की राजनीति न केवल वासी हो चुकी है बल्कि सर्वसत्तावादी चुनौती उपभोक्तावाद के साथ मिलकर और गहरी हुई है। दो क्रांतिकारी युगों के बीच थकावट और अवसाद का एक ऐसा अन्तर आज है जिसमें चारों ओर सन्नाटा है लेकिन इस स्थिति में भी देश का

जनमानस शांत नहीं है और नेतृत्व के अभाव के बाबजूद उसे जहाँ और जो भी औजार सुलभ है, बेहतर जीवन की भूख हर कही देखी जा सकती है और आज भले ही वह कोई सार्थक दिशा नहीं ले पा रही हो लेकिन जब भी लेगी वह अपने को लोहिया की परंपरा से ही जोड़ेगी। उसकी लड़ाई के तरीके बेशक नये होंगे नारे भी कुछ दूसरें हों, लेकिन उसे प्रेरणा उसी धरती से मिलेगी जो लोहिया हमारे लिए छोड़ गए हैं। क्योंकि इनके बगैर स्वतंत्र, उदार, समतावादी और भविष्योन्मुख भारत की कल्पना नहीं की जा सकती।

डॉ. लोहिया का एक ऐसे क्रांति प्रेरक राजनीतिज्ञ, सामाजिक सुधारक, आन्दोलनकारी और विलक्षण प्रतिभा के धनी विचारक थे। डॉ. लोहिया अन्तर्विरोधी रहे हैं और साम्यवाद विरोधी भी। समाजवादी भी रहे हैं और गाँधी के व्याख्याकार भी। अधिनायक विरोधी, और लोकतंत्र के प्रबल समर्थक भी रहे हैं और संसदीय लोकतंत्र की सीमाओं के आलोचक भी। दार्शनिक दृष्टि से उदारवादी लोहिया ने अक्सर क्रांतिकारी कार्यक्रम अपनाए। समूची मनुष्य जाति के प्रति व्यापक संवदेना के साथ भारतीय समाज और स्थिति की बुनियादी जरूरतों का सक्रिय बोध, सामाजिक, राजनीतिक प्रक्रिया के पैने विश्लेषण के साथ, जीवन के सांस्कृतिक पहलुओं के गहन अध्ययन से मिलकर बना था। लोहिया का विलक्षण व्यक्तित्व।

डॉ. लोहिया सदैव एक शक्तिशाली भारत के पक्षधर रहे। उनका विचार था कि कमजोर भारत शत्रुओं को जन्म देता है। डॉ. लोहिया ने जनता को जागृत करने के महान कार्य के प्रति अपने को समर्पित कर दिया। वह व्यवस्था में परिवर्तन चाहते थे और उन्होंने इस परिवर्तन तथा व्यक्ति के प्रजातांत्रिक अधिकारों हेतु अपनी अंतिम सांसों तक संघर्ष किया। उन्होंने संसद के अन्दर तथा बाहर व्यक्तियों के अधिकारों, स्वतंत्रता तथा मानव जाति में समानता के लिए संघर्ष किया। डॉ. लोहिया अपनी विचारधारा तथा क्रिया के आधार पर एक कुशल संघर्षकर्ता, कुशल सांसद, विचारक एवं भारत के समाजवादी आन्दोलन के नेता के रूप में परिलक्षित हुए।

डॉ. लोहिया ने मार्क्स और गाँधी का मिलाजुला आदर्श चुना था। स्वातंत्रयोत्तर भारतीय राजनीति के नीतिहीन दलबदल में सिद्धान्त नाम की कोई चीज टिक नहीं पा रही थी। एक बार की हताश और उसके साथ बढ़ने वाली अकुलाहट अक्सर लोहिया की पैनी भाषा और उग्र कार्यक्रमों के रूप में प्रकट हुई। दृढ़ता और संकेत के साथ अपनी बात कहने की इस मजबूरी के कारण लोहिया की अतिवादी का आरोप भी झेलना पड़ा। डॉ. लोहिया ने

लिखा था कि "मैं मानता हूँ कि गाँधीवादी या मार्क्सवादी होना हास्यास्पद है और उतना ही हास्यास्पद गाँधी विरोधी या मार्क्सवादी होना। गाँधी और मार्क्स के पास सिखाने के लिए बहुत बहुमूल्य धरोहर है किन्तु सीखा तभी जा सकता है जब सोच का ढाँचा किसी एक युग या एक व्यक्ति से नहीं बनता हो।"[1]

निश्चय ही यह किसी सैद्धांतिक अतिवादी की भाषा नहीं हो सकती। यह समन्वय और सम्यक दृष्टि समलक्ष्य और समबोध की भाषा। समन्वय मार्क्स और गाँधी में, समन्वय आत्मा और पदार्थ में, समन्वय निर्गुण और सगुण में, समन्वय समदृष्टि और विशिष्ट में, समन्वय समता और स्वतंत्रता में और उन्मुक्त मानस और क्रांतिकारी कार्यों कर्म में। लोहिया के लिए समन्वय का अर्थ एक पर दूसरे की विशेषता थोपना नहीं रहा। विचारों के स्तर पर अनमेल खिचड़ी में उनकी कभी रूचि नहीं रही। समन्वय से उनका अर्थ सतही, अन्तः विरोधी के मत में निहित आंतरिक एकात्मा और परस्पर पूरकता की खोज। किसी दार्शनिक उदारवादी के लिए ही यह संभव था।

डॉ. लोहिया ने पूँजीवाद और साम्यवाद को एक ही सिक्के के दो पहलू माना था। और दोनों विचारधाराऐं दो तिहाई कृष्णवर्गीय दुनिया की समस्याओं को हल करने की दृष्टि से किस तरह निरर्थक हैं इसका वर्णन किया है। दोनों में केन्द्रित उत्पादन व्यवस्था जीवन मानदण्ड में कभी न होने वाली भूख ही दिखाई देती है जो गरीब काली दुनिया में परिवर्तन नहीं कर सकती।

आज की दुनिया का पुनर्निर्माण न तो पूँजीवादी रास्ते पर चलकर किया जा सकता और न साम्यवादी रास्ते पर चलकर। खासकर भारत को समृध्दि के लिए एक तीसरा रास्ता खोजना ही होगा। डॉ. लोहिया सोच और कर्म के स्तर पर इसी विकल्प की खोज कर रहे थे। फिर भी आज की परिस्थितियों में हिन्दुस्तान जब कभी अधनींद से जागेगा उसे उन सवालों से टकराना ही पड़ेगा जो लोहिया ने उठाए थे। लोहिया का निधन हुए लगभग 40 वर्ष हो चुके हैं। परंतु भारत जैसे अर्द्धविकसित देश में जो विचार भारत की अर्थव्यवस्था के सुधार के लिए दिए वह आज भी प्रासंगिक हैं एवं उनके ये विचार आज की स्थिति में

---

1. डॉ. राममनोहर लोहिया- **मार्क्स, गांधी एण्ड सोशलिज्म**, पृष्ठ 1.

अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ करने के लिए महत्वपूर्ण है।

डॉ. लोहिया आजादी के बाद भारतीय राजनीति में बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी राजनेता हुए हैं। गाँधी के बाद सच बोलने की ताकत केवल लोहिया में रह गयी थी। यही कारण है कि वे सदा व्यवस्था के स्थापित ढ़ाँचे से टकराते रहे। सत्ताधारियों का पाखण्ड उन्हें कचोटता था।

डॉ. लोहिया की मूर्तिभंजक के रूप में आलोचना की गई परन्तु उनका विरोध सदैव सैद्धान्तिक स्तर पर रहा। टेक्नोलाजी के बढ़ते प्रभाव को देखते हुए आज भी लोहिया द्वारा जनशक्ति का उपयोग कर, नये भारत के निर्माण का सपना, कल्पना नहीं एक उपाय रह गया है। डॉ. लोहिया की नास्तिकता में गजब की आस्तिकता थी। उन्होंने रामराज्य को अधूरा बताकर, सीताराम राज्य, नाम दिया। भारतीय राजनीति में एक ऐसा भी क्रांतिकारी युग था जब निरीश्वरवादी लोहिया जैसे लोग भी राम, कृष्ण और शिव को भारत का विराट स्वप्न बताते थे। मात्र 40-50 वर्ष में ही हम कहाँ से कहाँ पहुँच गए, जब परिपूर्ण आस्तिक, ईश्वर भक्त राजनीतिज्ञ भी वोट बैंक के डर से राष्ट्र के जीवन मरण से जुड़े सांस्कृतिक प्रश्नों पर मुँह सिए हुए हैं, आज राष्ट्र भाषा के प्रति ममत्व नहीं रहा, स्वदेशी और स्वसंस्कृति के प्रति अपनत्व नहीं रहा।

डॉ. लोहिया भविष्य का भारत देखकर उदास थे। आज स्थितियाँ नाजुक हैं। पाकिस्तान प्रायोजित आतंकवाद आक्रमक है। आर्थिक नीतियों में विश्व व्यापार संगठन का हस्तक्षेप है। लोहिया के अनुसार बार-बार यह राग अलापना ठीक नहीं इस्लामी आक्रांताओं ने मंदिर गिराए, सच यह है कि हम उनके हमलों के सामने दीनहीन थे। लोहिया का इतिहास बोध, जादुई व्यक्तित्व, विचार और दर्शन आज के भारत की चुनौतियों से लड़ने में एक गजब की प्रेरणा है।

डॉ. लोहिया अपनी आर्थिक विचारधारा में आर्थिक विकेन्द्रीकरण, प्रजातंत्रीकरण तथा लघु इकाई मशीन जैसे क्रांतिकारी विचारों को लेकर आये। उन्होंने विज्ञान के क्षेत्र में उन्नति का विरोध नहीं किया, परन्तु इसको ग्रामीण अर्थव्यवस्था की समृद्धि में आगे करने को कहा। उनके द्वारा भूमि सुधार, व्यय में कटौती तथा अच्छा रहन-सहन का स्तर इत्यादि ऐसे उपाय हैं जिनके द्वारा आर्थिक पिछड़ेपन को समाप्त किया जा सकता है।

डॉ. लोहिया यूरोप के मुकाबले बड़ी शक्ति के रूप में इस महान देश को देखना चाहते थे। लोहिया की आर्थिक नीतियाँ गाँधी दर्शन से प्रभावित थीं। उन्होंने खपत का आधुनिकीकरण नहीं बल्कि उत्पादन के आधुनिकीकरण पर हमेशा बल दिया। इतिहास में वे एक ऐसे अर्थशास्त्री के रूप में याद किये जायेंगे जिन्हें अपनी माटी से ही अपने देश के नवनिर्माण का चिंतन और मार्ग खोजना पसंद था।

डॉ. लोहिया ने अपने विचारों को केवल सूत्र रूप में पेश किया। यदि वे और जीवित रहते तो भविष्य में अपने विचारों को ठोस कार्यक्रम के रूप में पेश करते। अब लोहिया के मूल विचार को मानने वालों का, उनके सहकर्मियों का, कार्यकर्ताओं का, अर्थ विशेषज्ञों का यह कर्तव्य है कि लोहिया के सूत्रों को रोशनी में उनके विचारों का अधिक अध्ययन और खोज करें। लोहिया के अभाव में समाजवादी अर्थ विशेषज्ञों को अब लोहिया के विचार सूत्रों के आधार पर उनके कृषि उद्योग आदि आर्थिक रचना सम्बन्धी सिद्धान्तों का निश्चित रूप देने का प्रयास करना चाहिए।

डॉ. लोहिया ने मार्क्सवाद का इन्कार केवल केन्द्रीयकरण, हिंसा, तानाशाही व्यक्तिगत स्वतंन्त्रता का अभाव, साध्य, साधन विवेकहीनता इत्यादि कारणों से ही किया था। भारत के सन्दर्भ में उन्हें रोटी के साथ मन के सवाल उतने ही महत्वपूर्ण लगते थे।

इस कारण वर्ग संघर्ष की भाषा लोहिया को प्रिय नहीं थी। भारत में सदियों से समाज पर जाति प्रथा हावी थी। और अभी भी है। यहाँ की विषमता का कारण केवल आर्थिक नहीं है। लोहिया ने कई बार कहा था कि भारत का उच्च्व वर्ग अंग्रेजी शिक्षित है। मुश्किल से दो करोड़ लोग भारत में शासन कर रहे हैं। लोहिया के विचार दर्शन की यही विशेषता है। जब और समाजवादी विचारक समान अवसर की बात कहते थे, केवल लोहिया ने 'विशेष अवसर' की बात कही।

डॉ. लोहिया के सामाजिक विचार इस वचनबद्धता पर आधारित थे कि राजनीतिक गिरावट का मुख्य कारण भारतीय व्यक्तियों की सामाजिक अवनति है। उनका विचार था कि भाषा का प्रश्न देश की आर्थिक समृद्धि और जाति का प्रश्न भारत की राजनीति से जुड़ा हुआ है। जातियों ने भारतवर्ष के लिए बहुत से खतरे उत्पन्न किए हैं, इसको महिलाओं, आदिवासियों, शूद्रों, हरिजनों, मुसलमानों तथा अन्य धार्मिक अल्पसंख्यकों के पिछड़ों को

अधिमान्य अवसर प्रदान करते हुए समाप्त किया जाना चाहिए। लोहिया ने इस परिवर्तन को लाने के लिए सात प्रकार की क्रांतियों की बकालत की।

डॉ. लोहिया जानते थे कि आज के स्वप्न कल की हकीकत हैं। स्वप्न देखने की क्षमता गाँधी, लोहिया जैसे व्यक्तियों में थी। ऐसे व्यक्ति सदियों के बाद पैदा होते हैं। गाँधी और उनके पूर्ववर्ती क्रांतिकारियों ने आजादी का स्वप्न देखा था। इसी कारण आज की पीढ़ी आजादी में जी रही है। ऐसे स्वप्न देखने वाले के शिष्य और अनुयायी ही उनका कार्य पूरा करते हैं मार्क्स को लेनिन मिले गाँधी को लोहिया और लोहिया का भाग्य भविष्यकाल तय करेगा।

डॉ. लोहिया ने चौखम्भा राजव्यवस्था, छोटी मशीन योजना, सप्तक्रांतियाँ जातिप्रथा, कृषि व खाद्य समस्या, दाम बाधो, नारी वर्ग का उत्थान, हिन्दु मुसलमान एकता, रंगभेद, हथियारों की निरर्थकता व नियोजन सम्बन्धी मौलिक विचार दिये। डॉ. लोहिया ने स्वयं अपने बारे में कहा था–"मैं समन्वय का विविध भारती का आदमी नहीं हूँ। मैं एक तरह से कैदी हूँ सिद्धान्त का कैदी हूँ कही ऐसा काम नहीं करता जिसके बाद में लोग कहें कि देखा इसने अपने संविधान को तोड़ा है।"[1] इस कठिन व्रत के कारण उन्हें जीवन भर अपमान सहना पड़ा। दिल को कई बार ढेस लगी। वह अहिंसा के पुजारी थे। निहत्थे पर गोली चलाना बुरा समझते थे। एक बार अपनी सरकार से इस्तीफा माँग लिया। यदि उस समय के समाजवादी नेता ईमानदारी और साहस का परिचय देते तो आज गोलीकाण्डों से सरकारी हिंसा का जो भयानक रूप है, आज इतनी दुर्गति न होती।

डॉ. लोहिया ने जिन सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया, राजनीति के लिए जो भी मान्यताएँ रखीं, भारत के निम्नवर्गीय लोगों के सुख व विकास के लिए जो प्रयत्न किए, नई सभ्यता की जो रूपरेखा प्रस्तुत की तथा समाजवादी विचारों का जो विकास किया उसके ऊपर उनकी तथाकथित कमियों का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। उनके विचार तथा समाज सुधार प्रक्रिया मानवता के लिए सदैव दिशा निर्देशक बने रहेंगे। उनकी तेजस्विता और करूणा सदैव ही अमर रहेगी। स्त्रियों, हरिजनों व शूद्रों को चेतना देकर उन्होंने सामाजिक परिवर्तन का जो

1. यतीन्द्रनाथ शर्मा - **डॉ. लोहिया का अर्थदर्शन,** भूमिका से

मंत्र फेंका तथा छोटी मशीन योजना का विचार देकर, देश के विकास के लिए जो उचित आधार दिया देश उसके लिए उनका सदैव ऋणी रहेगा।

सोवियत संघ के पतन से आरम्भ वैश्वीकरण की प्रक्रिया के कारण पूँजीवाद और साम्यवाद की प्रवृत्ति में भी अन्तर आ गया है। समाजवाद अपने मूल उद्देश्य से दूर हो गया है और पूँजीवाद एक अधिक विकसित पद्धति के रूप में सामने आया है। दोनों के मध्य विवाद अधिक गर्माया है। विश्व में उभरती हुई नयी व्यवस्था ने समाजवाद के सामने अनेक नयी चुनौतियाँ प्रस्तुत की हैं। विशाल विनिमयकारी कम्पनियों के माध्यम से राज्य की सीमाओं पर विजय प्राप्त कर ली गयी है। आशा की जा रही है कि यह पूँजीवादी विकास के लिए नया ऐतिहासिक द्वार खोल देगा।

साम्यवादी रुस के पतन के बाद तेज होती वैश्वीकरण की प्रक्रिया के कारण राज्य की प्रकृति भी बदलती जा रही है। प्रभुसत्ता सामान्य जनता के हाथ से बाहर निकलती जा रही है। विश्व व्यवस्था में पूँजीवाद के वर्चस्व के कारण दुनिया के अधिसंख्यक देशों का जीवन स्तर प्रभावित हो रहा है। धनी और निर्धन के मध्य अन्तर बढ़ रहा है। जनता की निर्धनता को कम करने के लिए और असमानता की समाप्ति के लिए समाजवादी व्यवस्था की प्रासंगिकता फिर से सिद्ध हो रही है। परन्तु आधुनिक युग की औद्योगिकरण की पद्धति एवं अन्तर्राष्ट्रीय पद्धति के साथ सामजस्यता स्थापित करना आज समाजवाद के सामने एक बड़ी चुनौती है।

डॉ. लोहिया ने एक नवीन सभ्यता, जहाँ पर जाति एवं धर्म भूतकाल के विषय में हो जायेंगे की परिकल्पना की। जहाँ पर व्यक्ति वैयक्तिक एवं सामूहिक रूप से अन्यायों के विरूद्ध सवियन अवज्ञा आन्दोलन चलाने के अभ्यास को जानेंगे। ये विचार गतिशील क्रिया हेतु उनकी प्रयोगशाला के संयंत्र की भाँति थे। समाजवादी आन्दोलन में वह यथार्थ रूप से बुद्धिजीवी थे।

समाजवादी आंदोलन का इतिहास परिवर्तन के आंदोलन की अन्तहीन कथा है। आजादी के पूर्व अंग्रेजी, पुर्तगाली, फ्रांसीसी गुलामी के विरूद्ध संघर्ष में समाजवादियों ने उल्लेखनीय योगदान दिया। अपितु आजादी के बाद समता और समतामूलक समाज बनाने में जो कठिन संघर्ष किया उसकी किसी से तुलना नहींकी जा सकती। देश की स्वतंत्रता के बाद समाजवादी नेतृत्व चाहता था कि सत्ता मेहनतकश जनता को हस्तांतरित हो।

जवाहरलाल नेहरू आजादी के बाद सत्ता में भागीदारी के लिए केन्द्रीय मंत्रिपरिषद् एवं राज्यों के मंत्रिमण्डलों में समाजवादी नेताओं को पद देने के प्रलोभन दिये। लेकिन समाजवादी नेताओं ने पदों के सारे प्रस्तावों को ठुकराते हुए कांग्रेस में ही रहकर नीतिगत विवादों को खड़ा करने सरकारी पद न लेने और दल के अंदर ही सरकार का आलोचनात्मक विपक्ष तैयार करने का फैसला लिया था।

भारत में 1946 से 1964 के मध्य समाजवादी आन्दोलन अपने उत्कर्ष के दौर में रहा। समाजवादी आन्दोलन के इस दौर में आचार्य नरेन्द्रदेव, जयप्रकाश नारायण, डॉ. राममनोहर लोहिया, अशोक मेहता, अच्युत पटवर्धन, मधुलिमये, अरूणा आसफअली, राजनारायण, जार्ज फर्नाण्डीज, मधुदण्डवते, कर्पुरी ठाकुर आदि समाजवादी नेताओं की महत्वपूर्ण भूमिका रही।

डॉ. लोहिया ने अपने चिंतन और दर्शन से पूरे समाजवादी आंदोलन को कहीं प्रत्यक्ष और कहीं अप्रत्यक्ष रूप से निरंतर प्रभावित किया है। डॉ. लोहिया के बहुत से सिद्धांत और उनके जीवन के मूल आयाम समाजवादी आन्दोलन के अविभाज्य अंग बन गये हैं। डॉ. लोहिया ने पंचमढ़ी अधिवेशन में मार्क्सवाद और लेनिनवाद के बोझ से पार्टी को मुक्त करा कर अपने पैरों पर खड़ा करने के सैद्धांतिक आधार दिए।

इस काल में दो ओर से विरोधों विचार रखे जा रहे थे। एक ओर अशोक मेहता का 'पिछड़ी अर्थव्यवस्था की अनिवार्यता का सिद्धांत' दूसरी ओर डॉ. लोहिया के जुझारू विरोध का। सैद्धांतिक रूप से तीसरी धारणा जयप्रकाश नारायण की थी जो लोकतांत्रिक ढ़ाँचे में विश्वास करते हुए भी दलीय प्रणाली से दूर हटते जा रहे थे। वर्ग संघर्ष में उनकी आस्था कम होती जा रही थी।

जयप्रकाश नारायण, डॉ. लोहिया और मधुलिमये राष्ट्रीय जीवन की पुर्नरचना छोटी जातियों, छोटे किसानों के विकास पर जोर देते रहे। समाजवादी जहाँ वोट से सत्ता हासिल करने पक्षधर थे, वहीं रचनात्मक कार्यों द्वारा समन्वित विकास के भी हामी थे। उन्होंने सभी कार्यो के लक्ष्य निर्धारण में जनता की इच्छा आंकाक्षाओं पर ध्यान देने की बात की। समाजवादी और प्रगतिशील विचारधारा के नये नेतृत्व ने साझा सरकार के सिद्धांत पर बल दिया। मिली जुली सरकार की स्थापना 'गैर-कांग्रेसवादी' विचारधारा में क्रांतिकारी परिवर्तन का आधार बनी।

समाजवादी नेतृत्व का भारत की लोकतंत्रतात्मक व्यवस्था को सुदृढ़ बनाने में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। भारत में 1975 में जब श्रीमती इन्दिरा गाँधी द्वारा तानाशाही प्रवृत्ति को अपनाते हुए आपातकाल घोषित किया गया उस समय भारत के समाजवादियों ने जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व में देश की लोकतांत्रिक व्यवस्था को बचाने के लिए सम्पूर्ण क्रांति का आवाह्न किया था और इस देश के लोकतंत्र की रक्षा की थी।

डॉ. लोहिया उन चन्द महापुरुषों में से हैं जिन्होंने अपने अनुयायियों को विचार और कर्म का एक खास ढंग सिखाया। मूल में जाकर सोचने का तरीका सिखाया। विचार के अनुसार आचार की शिक्षा दी। समाज के सबसे उपेक्षित और कमजोर इन्सान को केन्द्र बिन्दु मानकर ''करूण और कठोरता'' के साथ राजनीति चलाने का मार्ग बताया।

डॉ. लोहिया एक नयी सभ्यता और संस्कृति के दृष्टा और निर्माता थे। लेकिन आधुनिक युग जहाँ उनके दर्शन की उपेक्षा नहीं कर सका वहीं वह उन्हें पूरी तरह आत्मसात भी नहीं कर सका। अपनी प्रखरता, ओजस्विता, मौलिक विस्तार और व्यापक गुणों के कारण वे अधिकांश लोगों की पकड़ से बाहर रहे। इसका एक कारण है जो लोग लोहिया के विचारों को ऊपरी सतही ढ़ंग से ग्रहण करना चाहते थे, उनके लिए लोहिया बहुत भारी पड़ते हैं गहरी दृष्टि ही लोहिया के विचारों कथनों और कर्मों की विशेषता है, यही सूत्र ही तो उनकी विचार पद्धति है।

डॉ. लोहिया सदैव भूखों तथा गरीबों के लिए सेवाओं हेतु खड़े रहे तथा इस हेतु वह एक लम्बी राष्ट्रीय माँग करते रहे। गाँधी को छोड़कर इस देश में वह केवल ऐसे नेता थे। जिनके अत्यन्त रूप से समर्पित अनुगामी एवं साथी इतनी संख्या में रहे। महात्मा गाँधी की तरह उनमें जनमत की राय को बनाने एवं प्रदर्शित करने की क्षमता थी। उन्होंने गैर-कांग्रेस सरकार में अमूल परिवर्तनवादी परिवर्तनों का वादा किया तथा इस कार्य को सम्पन्न कराने हेतु 1967 में उन्होंने 'गैर कांग्रेसवाद' को जन्म दिया। भारत को समाजवादी नेतृत्व प्रदान करने को उनको पूर्ण सफलता प्राप्त न होने के बावजूद भी वह सदैव सामान्य व्यक्ति की भाषा में बात करते रहे तथा भारत की स्थिति में सुधार हेतु उनकी आत्मा में सदैव उत्कण्ठा बनी रही।

अपने पूरे जीवन के दौरान डॉ. लोहिया नये एवं अच्छे कार्य के लिए एक आन्दोलनकर्ता के रूप में रहे। स्वतंत्रता के पश्चात् भारतीयों में निष्क्रियता के बड़े खतरे को उन्होंने देखा। उन्होंने महसूस किया कि कांग्रेस हालांकि अपने में बहुत बड़ा आन्दोलन है फिर भी यह अपने साथ केवल सम्भ्रान्त व्यक्तियों को ही अपने ओर आकर्षित कर गयी है। वह आमूल परिवर्तनवादी न कि धीमे परिवर्तन के पक्षधर थे। वह विश्वास रखते थे कि अव्यवस्था से कुछ अच्छा अवश्य निकल सकता है। कांग्रेस ने अव्यवस्था एवं स्थायित्व के नाम पर यथास्थिति को बनाये रखा। अपनी रचनात्मक क्रियाओं के माध्यम से, उनको यह आशा थी कि वह जन मानस को परम्परागत झपकी के पुनः आने से दूर रख पायेंगें। डॉ. लोहिया एक कुशल सांसद थे। अपनी संसदीय दलीलों के माध्यम से वे अपने प्रशंसकों तथा आलोचकों दोनों में अभिरूचि उत्पन्न करते थे। डॉ.लोहिया समाजवाद के महानायक एवं एक महान युगदृष्टा थे।

डॉ. लोहिया का समाजवाद और समता का अर्थदर्शन सदैव एक सुखी इंसान को बनाने में था। आडम्बरों से हटकर वास्तविकता पर जोर दिया। भारत के संदर्भ में हमेशा उन्होंने पश्चिमी देशों की नकल को गलत बताते हुए देश की संस्कृति और स्थायित्व आवश्यकताओं के अनुरूप व्यवस्था को महत्त्व दिया। यह अलग बात है कि लोहिया को सही परिप्रेक्ष्य में अभी तक समझा ही नहीं गया। इसकी अनुभूति उन्हें स्वयं को भी हो गई थी जब उन्होंने स्वयं कहा था- ''शायद कोई तब मेरे विचारों को समझेगा, जब मैं नही रहूंगा।''[1] डॉ. लोहिया एक मौलिक समाजवादी थे। उनके लिए कोई व्यक्ति या युग उतना महत्वपूर्ण नहीं था जितना कि सत्य की खोज की प्रवृत्ति महत्वपूर्ण थी। इस सत्यान्वेषी प्रवृति ने ही उन्हें चिंतन की परंपरागत रूढ़ियों से बंधने नहीं दिया।

आज विश्व युद्ध, आणविक शक्ति विध्वंसात्मक रासायनिक अस्त्रों के नाम से भयग्रस्त है। गाँधी के अंहिसात्मक दृष्टि ओर सिविलनाफरमानी के माध्यम से डॉ. लोहिया ने यह कोशिश की, कि अंहिसा, सत्याग्रह और सिविलनाफरमानी का एक ऐसा विश्वव्यापक आंदोलन तैयार हो जो सम्पूर्ण मानव जाति को भय से मुक्त कर सके, परमाणु अस्त्रों पर अवरोधक का कार्य कर सके, और आज के भयग्रस्त संसार को नैतिक शक्ति दे सके कि वह

---

1. यतीन्द्रनाथ शर्मा - **डॉ. लोहिया का अर्थदर्शन**, आमुख से

व्यापक नरसंहार के खिलाफ एक फौलादी दीवार खड़ी हो सके। डॉ. लोहिया का जीवन तो भारत में खप ही गया। उन्हें इतना अवसर नहीं मिला कि वह गाँधी के इस अमर और अजेय दर्शन को विश्व के स्तर पर क्रियान्वित कर सकते। अब यह भावी पीढ़ी का दायित्व है कि वह राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय दोनों स्तरों पर उनके अधूरे कार्य को पूरा करें। देश में सम्भव बराबरी का संघर्ष अभी और तीव्र होगा। ज्यों-ज्यों समता और बराबरी की भूख तेज होगी, त्यों-त्यों अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी ऐसा वातावरण बनेगा जिसमें हम नि-शस्त्रीकरण और विश्व नागरिकता की लड़ाई, सिविलनाफरमानी, सत्याग्रह और अंहिसात्मक संस्कारों को दुनिया के एक कोने से दूसरे कोने तक फैला सकेंगे।

वर्तमान में समाजवादी आन्दोलन का यह दुर्भाग्य ही कहा जायेगा कि परिवर्तन की जिस राजनीति को लेकर डॉ. लोहिया ने इस देश में आगे बढ़ने की कोशिश की वह राजनीति असफल रही। अच्छे से अच्छा विचार भी जब तक ताकत के साथ नहीं जुड़ता उसे स्वीकृति मिलनी तो दूर रही उसकी सार्थकता के बारे में भी लोग संदिग्ध हो उठते हैं। ये शंकायें तब तक नहीं मिटाई जा सकती जब तक लोहिया की परिवर्तनवादी राजनीति को किसी दृढ़ संगठन का आधार नहीं मिलता। पर यह काम तभी संभव है जब लोहिया के विचार लोगों की नजरों से ओझल न हों।

डॉ. लोहिया आज हमारे बीच नहीं हैं, फिर भी वे प्रासंगिक बने हुए हैं। आज उनके विचार बहुत आदर के साथ पढ़े व सुने जा रहे हैं। वे राजनीतिक क्षितिज पर सितारे की तरह चमक रहे हैं ओर चमकते रहेंगे। वे असमय हमें छोड़कर चले गये, यह समाज का दुर्भाग्य था कि जब हमें उस सजग प्रहरी की आवश्यकता महसूस होने लगी तब क्रूर मृत्यु ने उन्हें हमसे छीन लिया।

भारत में समाजवाद के व्यावहारिक पक्ष की अपेक्षा प्रचारात्मक पक्ष अधिक सक्रिय रहा है। सभी राजनैतिक दलों ने अपने लक्ष्यों उद्देश्यों चुनाव घोषणाओं में समाजवाद शब्द का आश्रय लिया है। दल अपने अधिवेशनों में समाजवाद को लेकर लम्बे चौड़े विवाद करते हैं। समाजवाद की आड़ में दलों में विघटन और ध्रुवीकरण की प्रक्रिया चलती रहती है। समाजवाद को चुनाव जीतने के अमोध अस्त्र के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। यदि समाजवाद के प्रचारात्मक पक्ष की अपेक्षा रचनात्मक पक्ष के लिए हर राजनीतिज्ञ दृढ़-प्रतिज्ञ होते तो अवश्य ही इस क्षेत्र में सफलता प्राप्त होती।

भारतीय परिप्रेक्ष्य में समाजवाद की समीक्षा करते हुए हम कह सकते हैं कि सामन्ती शोषण का अंत, तीव्र औद्योगीकरण, सहकारिता का विकास, पंचायती राज, बैंकों का राष्ट्रीयकरण प्रिवीपर्सों की समाप्ति और योजना संबंधी कार्य तो भारत में हुए हैं, किन्तु समाजवाद के मूल तत्वों की ओर ध्यान नहीं दिया गया है। बेकारी, बढ़ती कीमतें, मुनाफे, गरीबी, जनसंख्या वृद्धि, अन्नाभाव तथा असमानता की समस्यायें आज भी विद्यमान हैं। इस दुर्भाग्य का कारण है कि भारत में समाजवाद के रूप और सिद्धांत को लेकर अजीब धुंधलापन छाया हुआ है। इसके साथ ही स्वार्थपरता, प्रशासन में ढीलापन, खींचातानी, जातिवाद, भोगवाद और पदलिप्सा जैसी कुत्सित धारणाऐं अपनी जड़े गहरी किए हुए हैं। यदि देश में वास्तविक समाजवाद स्थापित करना है, तो पहले समाज के नेताओं को स्वयं समाजवादी मूल्यों को अपने जीवन में चरितार्थ करना चाहिए। समाजवादियों में त्रुटियाँ हो सकती हैं, समाजवाद में नहीं। अतः राष्ट्र के प्रत्येक सामान्य नागरिक, सत्ताधारी, सम्पत्तिधारी, शुद्धहृदय से समाजवाद को स्वीकार करेंगे तभी समाजवाद के लिए पथ प्रशस्त हो सकता है।

भारत की वर्तमान राजनीतिक, सामाजिक, नैतिक, सांस्कृतिक, आर्थिक परिस्थितियों में समाजवाद को मूर्तरूप देने के लिए कर्मठ, ईमानदार, सच्चरित्र, निष्ठावान और प्रतिबद्ध लोगों की आवश्यकता है जो समाजवाद को शब्दों में उलझाकर न रख दें बल्कि उसे एक ठोस वास्तविकता बनायें।

संदर्भ ग्रंथ सूची
Bibiliography

अहमद इलियास : ट्रेन्डस इन सोशलिस्ट थॉट एण्ड मूवमेंट, दि इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद, 1937.

आर.गोरडी. : दि टर्निग पोइन्ट ऑफ सोशलिज्म फॉनटेना, लन्दन, 1969.

अवस्थी डॉ. ए.पी. : भारतीय राजनीतिक विचारक, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, प्रकाशक आगरा, 2001.

अर्नेस्ट बार्कर : सामाजिक तथा राजनैतिक शास्त्र के सिद्धान्त, हरियाणा, ग्रन्थ अकादमी, चण्डीगढ़, 1972.

अलकजेन्डर ग्रे : दि सोशलिस्ट ट्रेडिशन मार्क्स टू लेनिन लोंगमैन, न्यूयार्क, 1947.

डॉ. अमर ज्योति : समाजवाद और जे.पी., अमर पब्लिकेशन्स, वाराणसी, 2003.

आचार्य नरेन्द्रदेव : सोशलिज्म एण्ड दि नेशनल रिवोल्युशन, विद्या प्रकाशन, बम्बई 1946.

आचार्य नरेन्द्रदेव : राष्ट्रीयता और समाजवाद, नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया नई दिल्ली 2002.

आर.ए. प्रसाद : सोशलिस्ट थॉट इन मॉर्डन इण्डिया, मीनाक्षी प्रकाशन, दिल्ली,1974.

डॉ. अवस्थी,
डॉ. रामकुमार, अमरेश्वर : आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिन्तन रिसर्च पब्लिकेशन, नई दिल्ली 1997.

चंचरीक कन्हैयालाल,
डॉ. नरेन्द्र, ममता : समाजवादी चिंतन और लोकनायक मुलायम सिंह यादव, युनिवर्सिटी पब्लिकेशन, नई दिल्ली

चौधरी असीम कुमार : सोशलिस्ट मूवमेंट इन इंडियाःदि कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी, 1934-47, प्रोग्रेस कलकत्ता, 1980.

चेलापतिराव एम. : आधुनिक भारत के निर्माता जवाहरलाल नेहरू, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, पाटियाला हाउस, नई दिल्ली 1982.

दीक्षित गोपीनाथ : गाँधी की चुनौती कम्युनिज्म को, नवजीवन प्रकाशन मंदिर अहमदाबाद, जनवरी 1974

गाँधी सम्पादक (कुमारप्पा भारतन) : सर्वोदय, नवजीवन प्रकाशन मंदिर अहमदाबाद,1963.

गाँधी सम्पादक (कुमारप्पा आर.के) : अहिंसक समाजवाद की ओर, नवजीवन प्रकाशन मंदिर अहमदाबाद,1959.

गाँधीः संग्राहक(प्रभु आर.के.) : मेरा समाजवाद, नवजीवन प्रकाशन मंदिर अहमदाबाद, 1959.

गाबा ओमप्रकाश : भारतीय राजनीतिक विचारक, मयूर पेपरबैक्स, ए-95, सेक्टर-5 नोएडा, 2005.

गुर्जर लीलाराम : भारतीय समाजवादी चिंतन, पंचशील प्रकाशन, जयपुर,1986.

गिरिराजशरण : गाँधी जी ने कहा, प्रकाशन प्रतिभा प्रतिष्ठान, 1685 दखनीराय स्ट्रीट, नेता जी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली,1982.

घोष अजय कुमार : थ्योरिज एण्ड प्रेक्टिसिज ऑफ दि सोशलिस्ट पार्टी आफ इण्डिया पीपल्स, बम्बई, 1952.

घोष अजय कुमार : दि न्यू आइडियालॉजी ऑफ डेमोक्रेटिक सोशलिज्म, पीपल्स, बम्बई, 1952.

गिरिजाशंकर : भारत में लोकतान्त्रिक समाजवादी आन्दोलन(1934-48), भाग-1, विश्वभारती पब्लिकेशन्स4378/4बी अंसारी रोड, दरियागंज, नईदिल्ली.

हरगोविन्द : व्यक्ति और समाजवाद (स्वार्थ और परमार्थ), इंडियन ऑफसेट प्रिन्टर्स लखनऊ, 2002.

जयप्रकाश नारायण : सोशलिस्ट युनिटी एण्ड दी कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी सी. ए.पी., बम्बई 1941.

जयप्रकाश नारायण : समाजवाद से सर्वोदय की ओर, सर्व सेवा संघ प्रकाशन, राजघाट वाराणसी, 1957.

जयप्रकाश नारायण : समाजवाद, सर्वोदय और लोकतंत्र, पटना, 1936

जमदग्नि, अंजनी कुमार : जयप्रकाश नारायण : राजनैतिक एवं सामाजिक विचार, प्रिन्टबैल पब्लिशर्स, जयपुर, 1987.

जोशी पी.सी.एण्ड दामोदर के. : मार्क्स कम्स टू इंडिया, मनोहर प्रकाशन, नई दिल्ली 1975

कपूर मस्तराम : इतिहास और राजनीति, समाजवादी साहित्य संस्थान, 79 वीं, मयूर बिहार, दिल्ली, 1998.

कपूर मस्तराम : कल की राजनीति, लेखक मंच 79 वीं, मयूर बिहार दिल्ली,1997.

कपूर मस्तराम : समाजवादी विचारमाला-13, भारतीय समाजवाद और डॉ. लोहिया, समाजवादी साहित्य संस्थान, दिल्ली 2000.

कपूर मस्तराम : समाजवादी विचारमाला-3, विकल्प की बाधाएँ, समाजवादी साहित्य संस्थान, दिल्ली 1999.

कपूर मस्तराम : समाजवादी विचारमाला-4, वर्तमान सभ्यता का संकट और गाँधी, लोहिया, समाजवादी साहित्य संस्थान, दिल्ली 1999.

कपूर मस्तराम : साम्यवादी विश्व का विघटन और समाजवाद का भविष्य, लेखक मंच, मयूर बिहार, दिल्ली 1992

कुमारप्पा भारतन : केपिटलिज्म सोशलिज्म ऑर विलेजिइज्म ,एस.एस.प्रकाशन, वाराणसी 1965.

लास्की : राजनीति के मूल तत्व, प्रकाशक- जोर्ज एलेन एण्ड अनविन लि. लंदन, एलाइड पब्लिशर्स एण्ड स्टेशनरी मेन्यूफेचर्स, प्रा.लि.बम्बई.

लालचन्द : सोशलिस्ट ट्रान्सॅफॉरमेशन ऑफ इन्डियन इकोनोमी, ए लाइड प्रकाशन, बम्बई, 1965.

मधुदंड़वते : मार्क्स और गाँधी, अपाला प्रकाशन सहकारी समिति लि.ए-2, वाल्दा कालोनी, लखनऊ 1990.

मधुलिमये : इवोल्यूशन ऑफ सोशलिस्ट पार्टी, चेतना प्रकाशन, हैदराबाद, 1952.

मधुलिमये : कम्युनिस्ट पार्टी फेक्ट एण्ड फिक्सन, चेतना प्रकाशन, हैदराबाद, 1951.

मधुलिमये : सोशलिस्ट कम्युनिस्ट इंटरेक्शन इन इंडिया, अजन्ता

पब्लिकेशन दिल्ली, 1991.

मार्क्स : पूँजी, फ्रेडिक एंगिल्स द्वारा संपादित, प्रगति प्रकाशन, मास्को, 1983.

मसानी, एम.आर. : सोशलिज्म रिकंसीडरेशन, पद्मा प्रकाशन, बम्बई 1944.

मेहता अशोक : स्टेडीज इन एशियन सोशलिज्म, बम्बई, 1959.

मेहता अशोक : डेमोक्रेटिक सोशलिज्म, बम्बई, 1959

मन्नारायण : भारतीय संयोजन में समाजवाद, सस्ता साहित्य मण्डल नई दिल्ली, 1966.

मिश्रा डॉ. जयप्रकाश

दुबे डॉ. राजीव : भारतीय राजनीति तथा गाँधी दर्शन, सत्येन्द्र प्रकाशन, 30 पुराना अल्लापुर, इलाहाबाद, 2003.

मिल जॉन स्टूअर्ट : स्वतंत्रता और प्रतिनिधि शासन, हिन्दी समिति सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, मुद्रक-श्री बी.पी.ठाकुर लीडर प्रेस, इलाहाबाद, 1963.

मुख्तार अनीस : भारतीय समाजवाद के शिल्पी (प्रथम खण्ड), समाजवादी अध्ययन एवं शोध संस्थान गोमती नगर, लखनऊ

प्रभु आर.के.,राव यू.आर. : महात्मा गाँधी के विचार, नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया ए-5, ग्रीन पार्क, नई दिल्ली, 1994.

रोज-सॉल : सोशलिज्म इन सदर्न एशिया, ऑक्सफोर्ड, लन्दन, 1969

सुरेन्द्र मोहन : समाजवाद, धर्मनिरपेक्षता और सामाजिक न्याय, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि. बी, नेताजी सुभाष मार्ग नई दिल्ली, 2006.

सिंह मोहन : समाजवादी पोथी-नवम्बर एक भारत में समाजवादी आन्दोलन एक संक्षिप्त अवलोकन, नेल्को प्रिन्टर्स एण्ड पब्लिशर्स लारी भवन, बुलंदबाग, लखनऊ

सिंह विनोद प्रसाद

डॉ. सुनीलम : समाजवादी आन्दोलन के दस्तावेज (1934-52),प्रतिपक्ष प्रकाशन, 31ए-3, दिलशाद गार्डन, शाहदरा, दिल्ली, 1985

सिंह विनोद प्रसाद,

डॉ. सुनीलम : समाजवादी आन्दोलन-तनाव का दौर (दस्तावेज-1952-54), प्रतिपक्ष प्रकाशन, 31ए-3, दिलशाद गार्डन,शाहदरा, दिल्ली, 1986.

सिंह जितेन्द्र,
श्रीवास्तव विश्वाचन्द्र : समाजवाद :संकल्प और संघर्ष(प्रभुनारायण सिंहः बहुआयामी व्यक्तित्व),-श्री प्रभुनारायण सिंह, अमृत महोत्सव समिति काशीपुरा, वाराणसी,1997.

सिंह हरिकिशोर : ए हिस्ट्री ऑफ दि प्रजा सोशलिस्ट पार्टी, नरेन्द्र देव प्रकाशन, 1969.

सिंह राममूर्ति : महात्मा गाँधी और विश्व शांति, साहित्य निकुंज प्रकाशन, 19 शिवचरनलाल रोड, इलाहाबाद, 1946

सिंह शंकरदयाल : महात्मा गाँधीः सत्य से सत्याग्रह तक, अभिरूचि प्रकाशन, दिल्ली, 1994.

सिंह डॉ. लक्ष्मन : आधुनिक भारतीय राजनैतिक एवं सामाजिक विचारधारा कालेज बुक डिपो, जयपुर,1972.

सिंह डॉ. बी.एन : भारतीय सामाजिक चिंतन, विवेक प्रकाशन-7,यू-ए, जवाहर नगर दिल्ली, 2005.

सिंह अमर बहादुर, अमरेश : हमारा समाजवाद, राष्ट्रीय प्रकाशन मंदिर, अमीनाबाद लखनऊ,1970.

सिंह अमर ज्योति : भारतीय समाजवाद और आचार्य नरेन्द्र देव, अमरज्योति सिंह, वाराणसी, 1992.

सिन्हा सच्चिदानंद : मार्क्स को कैसे समझे, समता संगठन सामयिक वार्ता कार्यालय, एल-108, कैलगढ़ कालौनी, जनकगंज, वाराणसी

शर्मा कृष्ण प्रकाश : राजनारायणः यादों के झरोखों से, मानसी प्रकाशन, मेरठ, 1994.

शर्मा सी.पी. : आधुनिक राजनीतिक विचारधारा, युनिवर्सल बुक डिपो, आगरा, 1977.

शर्मा उर्मिला, शर्मा एस.के. : इण्डियन पोलिटिकल थॉट, अटलांटिक पब्लिशर्स और डिस्ट्रीव्यूटर्स, नई दिल्ली.

शास्त्री प्रकाश : भारत में समाजवादी आन्दोलन, पंचशील प्रकाशन फिल्म कालोनी जयपुर, 1982.

शुक्ल सोमनाथ : बीसवीं सदी के राजनीतिक विचारक जय प्रकाश नारायण, आशीष प्रकाशन, कानपुर, 2003

शुक्ल सोमनाथ : जयप्रकाश नारायण व्यक्ति और विचार, सर्वोदय विद्या संस्थान, कानपुर,1968

शुक्ल कमल : संघर्ष के प्रतीक मुलायम सिंह यादव, कृष्णा साहित्य सदन, नईदिल्ली, 1995.

सम्पूर्णानन्द : समाजवाद, पब्लिकेशन व्यूरो सूचना विभाग, उ०प्र० लखनऊ 1979

सीतारमइयां, डॉ. पट्टाभि : महात्मा गाँधी का समाजवाद, राष्ट्रीय प्रकाशन मंदिर, अमीनाबाद, लखनऊ, 1958

सीतारमइयां, डॉ. पट्टाभि : संक्षिप्त कांग्रेस का इतिहास, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली

डॉ. शैलेन्द्र नाथ : लोकनायक जयप्रकाश नारायण, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, 2002.

डॉ. सम्पूर्णानन्द : अधूरी क्रान्ति, लोकहित प्रकाशन संस्कृति भवन राजेन्द्र नगर, लखनऊ, 2003.

डॉ. ताराचन्द्र : भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन का इतिहास भाग-4, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, पटियाला हाउस, नई दिल्ली, 1982

डॉ. ताराचन्द्र : भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन का इतिहास भाग-3 प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, पटियाला हाउस, नई दिल्ली, 1982

त्रिपाठी कमलापति : बापू और भारत, सरस्वती मंदिर जतनवर, बनारस 1948

स्वामी विवेकानन्द : जाति, संस्कृति और समाजवाद, रामकृष्ण मठ नागपुर, 1983.

डॉ. विष्णु भगवान : भारतीय राजनीतिक विचारक, आत्माराम एण्ड संस,

कश्मीरी गेट, दिल्ली 2000.

विवेकानन्द : कास्ट कल्चर एंड सोशलिज्म, मायावती अद्वैती आश्रम, 1947.

वर्मा रायबहादुर : आचार्य नरेन्द्र देव के राजनीतिक विचार, मानसी प्रकाशन, मेरठ, 1994.

वर्मा वी.पी. : आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल आगरा, 2000.

विमल प्रसाद : सोशलिज्म, सर्वोदय एण्ड डिमॉक्रेसी, एशिया पब्लिशिंग हाउस, मुम्बई 1964.

डॉ.युगेश्वर : समाजवादः आचार्य नरेन्द्र देव, डॉ. लोहिया और जयप्रकाश नारायण की दृष्टि में, अतुल बगाई, निदेशक सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, लखनऊ 1994.

डॉ. राममनोहर लोहिया पर पुस्तकें :

ओंकार शरद : भारत के शासक (राममनोहर लोहिया के लेख) लोक भारतीय प्रकाशन, 15-ए-महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद, 1992.

ओंकार शरद : भारत मात, धरती माता (राममनोहर लोहिया के सांस्कृतिक लेख), लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद,1983

ओंकार शरद : लोहिया एक प्रमाणिक जीवनी, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2001.

ओंकार शरद : लोहिया के विचार, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद 1969.

ओंकार शरद : लोहिया, प्रकाशन केन्द्र, लखनऊ, 1972.

ओमप्रकाश दीपक,मोहन,अरविन्द : लोहिया एक जीवनी, वाग्यदेवी प्रकाशन, विनायक शिखर, बीकानेर, 2006.

ओमप्रकाश दीपक : लोहियाः असमाप्त जीवनी, समता अध्ययन न्यास, बम्बई, 1978.

अनीस मुख्तार, दीक्षित विजय : लोहियाः बहुआयामी व्यक्तित्व, 3/297 विशाल खण्ड, गोमती नगर, लखनऊ

भटनागर राजेन्द्र मोहन : समग्र लोहिया, किताब घर, नई दिल्ली, 1982.

भटनागर राजेन्द्र मोहन : क्रांतिकारी लोहिया, राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी

गेट, दिल्ली 1994.

भटनागर राजेन्द्र मोहन : अवधूत लोहिया, शिवानी बुक्स, 4856/24 हरबंस स्ट्रीट, दरियागंज, नई दिल्ली 2003

भटनागर राजेन्द्र मोहन : डॉ. राममनोहर लोहियाः भारत के गौरव, निर्भीक नेता तथा क्रांतिकारी विचारक की जीवनी, किताब घर, नई दिल्ली, 1978

दीक्षित ताराचन्द्र : डॉ. लोहिया का समाजवादी दर्शन, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद 1976.

कृष्णनन्दन : डॉ. राममनोहर लोहिया के आर्थिक राजनीतिक एवं सामाजिक विचार, एस.चन्द्र एण्ड कम्पनी लि० रामनगर, नई दिल्ली, 1979.

केलकर इन्दुमति : लोहिया सिद्धान्त और कर्म, नवहिन्द प्रकाशन, हैदराबाद, 1963.

केलकर इन्दुमति : लोहिया विचार दर्शन, गोपाल मोकाशी सदाशिव बागाईतकर, केलकर श्री पादश्स्म तिमाला 176 सदाशिव पेठ, पुणे, 1991.

केलकर श्रीमती इन्दुमति : लोहिया कर्म और सिद्धान्त शक्ति प्रकाशन मन्दिर, 257 चक, इलाहाबाद, 1983 .

मुजत्र बालकृष्ण : डॉ. राममनोहर लोहिया (व्यक्ति और विचार), साक्षी प्रकाशन, दिल्ली, 2001.

मधुदण्डवते : गाँधी लोहिया और दीनदयाल, दीनदयाल शोध संस्थान, 7 ई स्वामी रामतीर्थ नगर, नई दिल्ली 1978.

मन्त्री गणेश : समता दर्शन (लोहिया-एक विश्लेषण) समता अध्ययन केन्द्र, बम्बई, 1972.

एम.पी. कमल : डॉ. राममनोहर लोहिया, राजा पॉकेट बुक्स, 330/1 बुराड़ी दिल्ली, 2003.

नकवी सिब्ते मुहम्मद : डॉ. लोहिया एक झलक(उर्दू) अकबरपुर, फैजाबाद

पित्ती बी.बी.,त्रिपाठी ए.तथा, निर्मल ओ.पी. : लोकसभा में लोहिया, भाग-1, राममनोहर लोहिया, समता विद्यालय, न्यास, बेगम बाजार, हैदराबाद, 1971

पित्ती बी.बी., त्रिपाठी ए.तथा, : लोकसभा में लोहिया, भाग-2, राममनोहर लोहिया,

निर्मल ओ.पी. समता विद्यालय, न्यास, बेगम बाजार, हैदराबाद, 1972

पित्ती बी.बी.,त्रिपाठी ए.तथा, ओ.पी. निर्मल : लोकसभा में लोहिया, भाग-3, राममनोहर लोहिया, समता विद्यालय, न्यास, बेगम बाजार, हैदराबाद, 1972

पित्ती बी.बी.,त्रिपाठी ए.तथा, ओ.पी. निर्मल : लोकसभा में लोहिया, भाग-4, राममनोहर लोहिया, समता विद्यालय, न्यास, बेगम बाजार, हैदराबाद, 1972

पित्ती बी.बी.,त्रिपाठी ए.तथा, ओ.पी. निर्मल : लोकसभा में लोहिया, भाग-5, राममनोहर लोहिया, समता विद्यालय, न्यास, बेगम बाजार, हैदराबाद, 1973

पित्ती बी.बी.,त्रिपाठी ए.तथा, ओ.पी. निर्मल : लोकसभा में लोहिया, भाग-6, राममनोहर लोहिया, समता विद्यालय, न्यास, बेगम बाजार, हैदराबाद, 1974

पित्ती बी.बी.,त्रिपाठी ए.तथा, ओ.पी. निर्मल : लोकसभा में लोहिया, भाग-7, राममनोहर लोहिया, समता विद्यालय, न्यास, बेगम बाजार, हैदराबाद, 1974

पित्ती बी.बी.,त्रिपाठी ए.तथा, ओ.पी. निर्मल : लोकसभा में लोहिया, भाग-8, राममनोहर लोहिया, समता विद्यालय, न्यास, बेगम बाजार, हैदराबाद, 1974

पित्ती बी.बी.,त्रिपाठी ए.तथा, ओ.पी. निर्मल : लोकसभा में लोहिया, भाग-9, राममनोहर लोहिया, समता विद्यालय, न्यास, बेगम बाजार, हैदराबाद, 1975

पित्ती बी.बी.,त्रिपाठी ए.तथा, ओ.पी. निर्मल : लोकसभा में लोहिया, भाग-10, राममनोहर लोहिया, समता विद्यालय, न्यास, बेगम बाजार, हैदराबाद, 1975

पित्ती बी.बी.,त्रिपाठी ए.तथा, ओ.पी. निर्मल : लोकसभा में लोहिया, भाग-11, राममनोहर लोहिया, समता विद्यालय, न्यास, बेगम बाजार, हैदराबाद, 1985

पित्ती बी.बी.,त्रिपाठी ए.तथा, ओ.पी. निर्मल : लोकसभा में लोहिया, भाग-12, राममनोहर लोहिया, समता विद्यालय, न्यास, बेगम बाजार, हैदराबाद, 1986

पित्ती बी.बी.,त्रिपाठी अध्यात्म ओ.पी. निर्मल : लोकसभा में लोहिया, भाग-13, राममनोहर लोहिया, समता विद्यालय, न्यास, बेगम बाजार, हैदराबाद, 1986

पित्ती बी.बी.,त्रिपाठी अध्यात्म : लोकसभा में लोहिया, भाग-14, राममनोहर लोहिया, समता विद्यालय, न्यास, बेगम बाजार, हैदराबाद.

पित्ती बी.बी.,त्रिपाठी अध्यात्म : लोकसभा में लोहिया, भाग-15, राममनोहर लोहिया, समता विद्यालय, न्यास, बेगम बाजार, हैदराबाद.

पित्ती बी.बी.,त्रिपाठी अध्यात्म : लोकसभा में लोहिया, भाग-16, राममनोहर लोहिया, समता विद्यालय, न्यास, बेगम बाजार, हैदराबाद.

पद्मिनी हरिशचन्द्र : डॉ. लोहिया की कहानी उनके साथियों की जुबानी,

नोएडा न्यूज प्रा०लि०, 48, श्रद्धानन्द मार्ग, दिल्ली, 1991

राय रामकमल : राममनोहर लोहियाः आचरण की भाषा, लोक भारती प्रकाशन, 15-ए, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद, 1995

रेड्डी नीलम संजीव : राममनोहर लोहिया, लोहियाः बहुआयामी व्यक्तित्व, लोहिया स्मारिका समिति, पार्क रोड लखनऊ

सिंह भगवान : डॉ. राममनोहर लोहिया, समता प्रकाशन, बलिया, 1972.

सिंह रामवीर : डॉ. राममनोहर लोहिया का व्यक्तित्व एवं कृतित्व, देविका पब्लिकेशन, दिल्ली, 2001.

सिंह सुरेन्द्र विक्रम : लोहिया स्मृति, लोहिया संस्थान 16/949, इंन्दिरा नगर लखनऊ

सिंह अनुजा सिंह : बढ़ते कदम लोहिया की राह पर, सुनील एण्ड ब्रदर्स, बुलन्दशहर

शर्मा यतीन्द्रनाथ : डॉ.लोहिया का अर्थदर्शन, चित्रा प्रकाशन, शास्त्रीनगर, कानपुर 1979.

डॉ. सुरेन्द्र प्रताप, डॉ. श्यामा प्रसाद : डॉ. लोहिया विरासत का सवाल, नीर बुक सेन्टर, दिल्ली 1993.

वर्मा श्रीकान्त : लोहिया के बगैर भारत, आनन्द बाजार प्रकाशन प्रफुल्ल बाजार, स्ट्रीट, कलकत्ता

वर्मा लक्ष्मीकांत : समाजवादी दर्शन और डॉ० लोहिया प्रकाशक- शैलेश कृष्ण निदेशक सूचना एवं जनसम्पर्क, विभाग, उ०प्र० लखनऊ, 1991

वर्मा लक्ष्मीकांत : डॉ. राममनोहर लोहिया, प्रकाशक- शैलेश कृष्ण निदेशक सूचना एवं जनसम्पर्क, विभाग, उ०प्र० लखनऊ, 1991.

वर्मा लक्ष्मीकान्त : समाजवादी आन्दोलन लोहिया के बाद सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग उत्तर प्रदेश, लखनऊ,1995.

वर्मा, रजनीकांत : लोहिया, रश्मी प्रकाशन, इलाहाबाद 1969.

Books on Dr. Rammanohar Lohia :

Arumagam M. : Socialist Thought in india the constribution of Rammanohar Lohia] Starling publishers Pvt.Ltd. New Delhi,1978.

Mehrotra N.C. : Lohia- A study] Atma Ram & Sons, Kashmere Gate, Delhi,1978.

Meherally yusuf : The Price of Liberty: Dr.Lohia Letter to prof.Laski, National Information & Publication Ltd. National House Bombay, 1948.

Verma Rajanikant : Lohia, Socialist, Indian publication 41/103, Panchwati, vdaipur,1999.

Wofford Harris : Lohia and America meet, Snehlata Ram Reddy, Madras,1961.

डॉ. राममनोहर लोहिया की पुस्तकें :

हिन्दू बनाम हिन्दू : लोकभारती प्रकाशन,15 ए, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद 1996.

समाजवादी आन्दोलन का इतिहास : राममनोहर लोहिया, समता विद्यालय न्यास बेगम बाजार हैदराबाद,1969.

हिन्दू और मुसलमान : नवहिन्द प्रकाशन, बेगम बाजार हैदराबाद, 1963.

अंग्रेजी हटाओं : गंगाप्रसाद तिवारी, चौखम्भा प्रकाशन 8/5, जवाहर मार्ग इन्दौर, 1982.

अर्थशास्त्र मार्क्स के आगे : लोकभारती प्रकाशन, 15ए, महात्मा गांधी मार्ग इलाहाबाद, 1980.

देश गरमाओं : राममनोहर लोहिया समता विद्यालय न्यास, हैदराबाद 1970.

देश-विदेश नीतिः कुछ पहलू : समता विद्यालय न्यास, हैदराबाद 1970.

सात क्रांतियाँ : राममनोहर लोहिया, समता विद्यालय न्यास, हैदराबाद, 1966.

सुधरों अथवा टूटो : समता विद्यालय न्यास, हैदराबाद, 1971.

समदृष्टि : राममनोहर लोहिया समता विद्यालय न्यास, हैदराबाद 1970.

समाजवाद की राजनीति : नवहिन्द प्रकाशन हैदराबाद, 1968.

समाजवाद की अर्थनीति : राममनोहर लोहिया समता विद्यालय न्यास, हैदराबाद 1973.

हिन्दू पाक युद्ध और एका : राममनोहर लोहिया समता विद्यालय न्यास, हैदराबाद

1970.

अन्न समस्या : नवहिन्द प्रकाशन हैदराबाद, 1963.

आजाद हिन्दुस्तान के नये रूझानः लोहिया समता विद्यालय न्यास, प्रकाशन विभाग, हैदराबाद, 1968.

राम, कृष्ण और शिव : लोहिया समता विद्यालय न्यास, हैदराबाद, 1969.

समलक्ष्य-समबोध : लोहिया समता विद्यालय न्यास, हैदराबाद, 1969.

सरकार से सहयोग और : नवहिन्द प्रकाशन, हैदराबाद, 1962.
समाजवादी : एकता

क्रांति के लिए संगठन भाग-1: नवहिन्द प्रकाशन हैदराबाद, 1963.

किसान समस्या और चौखम्भा राज्य : रंजना प्रकाशन, इलाहाबाद.

धर्म पर एक दृष्टि : राममनोहर लोहिया, समता विद्यालय न्यास, हैदराबाद 1969.

नरम और गरम पंथ : राममनोहर लोहिया, समता विद्यालय न्यास, हैदराबाद 1969.

खर्च पर सीमा : विवज ढांढनिया, कलकत्ता

भारत में समाजवाद : नवहिन्द प्रकाशन हैदराबाद, 1968.

निजी और सार्वजनिक क्षेत्र : राममनोहर लोहिया, समता विद्यालय न्यास, हैदराबाद 1973

मार्क्स, गाँधी और सप्त क्रान्तिः प्रताप संतोषकर, राममनोहर लोहिया, स्मृति केन्द्र, 101 सिद्ध रत्नाकर, रत्नाकर हाउसिंग सोसाइटी,बम्बई, 1981

मर्यादित, उन्मुक्त और असीमितःसमता विद्यालय न्यास सुल्तान, बाजार, हैदराबाद,
व्यक्तित्व और रामायण मेला 1969.

राग जिम्मेदारी की भावना और
अनुपात की समझ : राममनोहर लोहिया, समता विद्यालय न्यास,
हैदराबाद, 1969.

सच, कर्म, प्रतिकार और चरित्र : समाजवादी प्रकाशन, हिमायत नगर,हैदराबाद, 1950.
निर्माण : आवाह्न

जर्मन सोशलिस्ट पार्टी : नवहिन्द प्रकाशन, हैदराबाद 1962.

पाकिस्तान में पलटनी शासन : नवहिन्द प्रकाशन, हैदराबाद 1963.

सरकारी मठी और कुजात गाँधीवाद : नवहिन्द प्रकाशन, हैदराबाद 1963.

राजस्थान और गुजरात के दौरे के

कुछ अनुभव	:	नवहिन्द प्रकाशन, हैदराबाद 196.
निराशा के कर्तव्य	:	लोहिया, समता विद्यालय, न्यास, हैदराबाद, 1973
क्रान्तिकरण	:	लोहिया, समता विद्यालय न्यास हैदराबाद, 1973
द्रौपदी या सावित्री	:	समाजवादी प्रकाशन, वाराणसी
समाजवादी आंदोलन का नया अध्याय	:	प्रताप संतोषकर, राममनोहर लोहिया, स्मृति केन्द्र, सिद्ध रत्नाकर सोसाइटी, मुम्बई 1984.

Books Written by Dr. Rammanohar Lohia-

A Policy for the wear and Peace in the Himalayas	:	Published by George fernandes, 204, Charni Road, Bambay-4.
Aspects of Socialist Policy Bombay	:	Soialist Party Publication, 1952.
Fragments of a world Mind Maitragani	:	19 C, Rajedralal St. Calcutta-6.
Caste System	:	Navhind Prakashan, Hyderabad, 1964.
Gulity Men of India's Partition	:	Rammanohar Lohia, Samta Vidyalaya Nyas, Publiaction Department, 1970.
India, China and Northern frantiers	:	Navhind Prakashan Hyderabad, 1963.
Indians in foreign Lands	:	All India Congress Committee Allahabad, 1938.
Intervan During Politics	:	Navhind Prakashan, 831, Begum Bazar, Hyderabad,
Language	:	Navhind Prakashan, Hyderabad, 1966.
Marx, Gandhi and Socialism	:	Rammanhoar Lohia Samta Vidhyalaya Nayas, Publication Deptt. Hyderabad, 1978.

Mystery of Sir Stafford Cripps	:	Padma Publications Ltd. Bombay, 1942.
Note and Comments	:	Rammanohar Lohia Samta Vidyalaya Nyas, Hyderabad, 1972.
On the Move	:	Progressive Publishing House Ara Kashn Road, New Delhi, 1951.
Rupees Twenty five Thousand a Day	:	Navhind Prakashan, Hyderabad, 1963.
Socialist Unity	:	Samajwadi Prakashan Hyaderabad.
Wheel of History	:	Rammanohar Lohia Samata Vidhalaya Nyas Publication Department, Hyderabad, 1974.
Will to Power and other Writings	:	Navhind Pakashan, 831, Bagam Bazar, Hyderabad, 1956.

डॉ. लोहिया पर लेख :

जैन कैलाश	:	हिन्दू बनाम हिन्दू जनवाणी, 19 अगस्त, जनेश्वर मिश्र, सरयू कुटीर मधवापुर, इलाहाबाद.
दीपक ओमप्रकाश	:	'नई सभ्यता का सपना' लोहियाः बहुआयामी व्यक्तित्व, लोहिया स्मारिका समिति, सी-2 पार्क रोड, लखनऊ, 1984.
डूंगरवाल कन्हैयालाल	:	गाँधी और लोहिया कानून की दुनिया में, जनवाणी गाँधी शताब्दी अंक, सित.-अक्टू० 1969 जनेश्वर मिश्र, सरयू कुटीर, मधवापुर, इलाहाबाद
डूंगरवाल कन्हैयालाल	:	डॉ. लोहिया जिनसे जज भी प्रभावित होते थे, जनवाणी सित० अक्टू० 1969, जनेश्वर मिश्र
सरयू		कुटीर, मधवापुर इलाहाबाद
डूंगरवाल कन्हैयालाल	:	डॉ. लोहिया जिनसे जज भी प्रभावित होते थे, दैनिक भास्कर झाँसी, मंगलवार 15 अगस्त, 1985
पटनायक किशन	:	'ट्रस्टीशिप पर विचार' जनवाणी, गाँधी शताब्दी अंक,1969,जनेश्वर मिश्र सरयू कुटीर, मधवापुर

इलाहाबाद.

वर्मा श्रीकान्त : लोहिया के बगैर भारत' रविवार, मार्च 1985, आनंद बाजार प्रकाशन 6 तथा 9 प्रफुल्ल सरकार, स्ट्रीट कलकत्ता

अनिल कुमार : गाँधी और लोहिया जीवन और चिंतन के स्तर, जनवाणी, सित0–अक्टू0 1970, जनेश्वर मिश्र, सरयू कुटीर मधवापुर, इलाहाबाद.

डॉ0 कृष्णनन्दन : डॉ0 लोहिया मानवतावादी राजनीति कादम्बिनी, मार्च 1972, हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस, नई दिल्ली

ठाकुर कृष्णनाथ : भाषा का सवाल और न्यायालय जनवाणीनवम्बर, 1 1970, जनेश्वर मिश्र, सरयू कुटीर, मधवापुर, इलाहाबाद

ठाकुर कृष्णनाथ : 'गाँधी, लोहिया और सत्याग्रह' लोहियाः बहुआयामी व्यक्तित्व राममनोहर लोहिया, स्मारिक समिति सी–2, पार्क रोड लखनऊ 1984.

प्रकाशवीर : 'लोकसभा लोहिया के बिना'जनवाणी, दिसम्बर 1967, जनेश्वर मिश्र सरयू कुटीर मधवापुर, इलाहाबाद.

मुख्तार अनीस : 'लोहिया की धार्मिक निरपेक्षता' रविवार, मार्च 1985, आनंद बाजार, प्रकाश 6 तथा 9 प्रफुल्ल सरकार स्ट्रीट कलकत्ता.

बोस निर्मल कुमार : 'गाँधी और लोहिया' जनवाणी गाँधी, शताब्दी अंक, सित0–अक्टू0 1969 जनेश्वर मिश्र, सरयू कुटीर मधवापुर, इलाहाबाद

दिनकर : 'स्व. लोहिया साहब' लोहियाः बहुआयामी व्यक्तित्व, लोहिया स्मारिक समिति, सी–2 पार्क रोड, लखनऊ, 1984.

रेड्डी नीलम संजीव : 'राममनोहर लोहिया' लोहियाः बहुआयामी व्यक्तित्व, लोहिया स्मारिका समिति, सी–2, पार्क रोड लखनऊ.

मिश्र रामानंद : 'लोहिया' लोहियाः बहुआयामी व्यक्तित्व, लोहिया स्मारिका समिति, सी–2, पार्क रोड लखनऊ

दीक्षित रमेश : 'लोहिया के सच्चे उत्तराधिकारी राजीव गाँधी, रविवार, मार्च 1985 आनन्द बाजार प्रकाशन 6 तथा 9 प्रफुल्ल सरकार स्ट्रीट , कलकत्ता

मधुलिमये : लोहिया के बगैर भारत' रविवार, मार्च, 1985 आनन्द बाजार प्रकाशन 6 तथा 9 प्रफुल्ल सरकार स्ट्रीट कलकत्ता.

मधुलिमये : 'लोकसभा लोहिया के बिना' जनवाणी दिसम्बर, 1967 जनेश्वर मिश्र, सरयू कुटीर, मधवापुर इलाहाबाद.

प्रधान रामचन्द्र : भारतीय राजनीतिक दल और विदेश नीति, जनवाणी अगस्त, 1969 जनेश्वर मिश्र, सरयू कुटीर, मधवापुर इलाहाबाद

कुमारी स्वराज्य : 'नर और नारी एक राजनीतिक और सामाजिक समीक्षा-चौखम्भा दीपावली विशेषांक, 1962 राममनोहर लोहिया समता विद्यालय न्यास, बेगम बाजार हैदराबाद

कुमार विनय : 'लोहिया' लोहिया विचार मंच इलाहाबाद

पाण्डेय शक्ति प्रसाद : 'सिविल नाफरमानी और लोहिया' जनवाणी गाँधी शताब्दी अंक, सित0-अक्टू0 1969 जनेश्वर मिश्र सरयू कुटीर, मधवापुर, इलाहाबाद

सिंह शिव प्रताप : 'लोहिया का सांस्कृतिक मानस लोहिया बहुआयामी व्यक्तित्व, लोहिया स्मारिका समिति, सी-2 पार्क रोड, लखनऊ, 1984

सिन्हा मिलन : डॉ. लोहियाः एक समूचा मानवीय व्यक्तित्व, नव भारत टाइम्स, 25 मार्च, 1979.

डॉ. लोहिया के लेख और वक्तव्य :

'मार्क्सवाद और समाजवाद' : चौखम्भा चुनाव विशेषांक, फरवरी-1962, राममनोहर लोहिया, समता विद्यालय न्यास, हैदराबाद.

'अविश्वास क्यों : लोहियाः बहुआयामी व्यक्तित्व राममनोहर लोहिया स्मारिका समिति सी-2, पार्क रोड लखनऊ, 1984.

गाँधीवाद सम्पति और सिविल नाफरमानी : जनवाणी, जनवरी, 1970-जनेश्वर मिश्र, सरयू कुटीर, मधवापुर इलाहाबाद.

भौगोलिक परिवर्तन : जनवाणी, जनवरी-फरवरी 1969 जनेश्वर मिश्र, सरयू कुटीर मधवापुर, इलाहाबाद.

'दाम और जाति की नाइंसाफी : जनवाणी, नवम्बर 1970-जनेश्वर मिश्र, सरयू कुटीर, मधवापुर, इलाहाबाद.

'कुछ का वैभव या सब का सुधार' : जनवाणी, सितम्बर, 1968 जनेश्वर मिश्र, सरयू कुटीर, मधवापुर, इलाहाबाद

'नर-नारी समता और सिविल नाफरमानीः जनवाणी,अगस्त,1970 जनेश्वर मिश्र, सरयू कुटीर, मधवापुर, इलाहाबाद.

'पूर्ण कौशल' : जनवाणी, मई, 1964, जनेश्वर मिश्र, सरयू कुटीर, मधवापुर, इलाहाबाद.

'न झूठ और न हत्या' : जनवाणी, नवम्बर 1970-जनेश्वर मिश्र, सरयू कुटीर, मधवापुर,इलाहाबाद.

'बिना हथियारों की दुनियाँ और सात क्रांतियाँ' : जनवाणी, मार्च 1970 जनेश्वर मिश्र, सरयू कुटीर, मधवापुर, इलाहाबाद.

'लंगड़ी विदेश नीति' : चौखम्भा दीपावली विशेषांक 1963, राममनोहर लोहिया समता विधालय न्यास हैदराबाद.

'लोकसभा' : जनवाणी, अगस्त, 1968-जनेश्वर मिश्र, सरयू कुटीर,मधवापुर, इलाहाबाद.

'लोकसभा' : जनवाणी, अगस्त,1969-जनेश्वर मिश्र, सरयू कुटीर, मधवापुर, इलाहाबाद.

'सत्याग्रह असली या रस्मी' : जनवाणी, सित-अक्टूबर,1970 जनेश्वर मिश्र, सरयू कुटीर, मधवापुर, इलाहाबाद.

'डॉ. लोहिया की चिट्टी कुलमणि के नाम 25.01.67 : राष्ट्रवादी, कानपुर 1971-लोहिया स्मृति अंक.

'लोकसभा-विधानसभा एक आइना है' : साप्ताहिक राष्ट्रवादी, कानपुर लोहिया स्मृति अंक, 1971.

'विदेश नीति' : लोहिया : बहुआयामी व्यक्तित्व लोहिया स्मारिका समिति, सी-2 पार्क रोड, लखनऊ, 1984.

'वर्ण और योनि के दो कटघरे' : जनवाणी, गाँधी शताब्दी अंक सित०-अक्टू० 1969 जनेश्वर मिश्र, सरयू कुटीर मधवापुर, इलाहाबाद.

'समाजवादी सिद्धान्त का धरातल' : समाजवादी आन्दोलन के दस्तावेज, सी०पी०39 प्रीतमपुरा, दिल्ली, मुद्रक नागरी प्रिन्टर्स नवीन शाहदरा, दिल्ली, 1985.

'सम्पत्ति और सिविल नाफरमानी' : जनवाणी, जनवरी, 1970-जनेश्वर मिश्र, सरयू कुटीर, मधवापुर, इलाहाबाद.

'स्वराज्य क्यों और कैसे' : लोहियाः बहुआयामी व्यक्तित्व लोहिया स्मारिका समिति, सी-2, पार्क रोड,लखनऊ 1984

'हिन्दुस्तान और पाकिस्तान' : जनवाणी, जुलाई, 1969,जनेश्वर मिश्र, सरयू कुटीर, मधवापुर इलाहाबाद.

'हिन्दुस्तान और पाकिस्तान' : जनवाणी, अगस्त, 1969,जनेश्वर मिश्र, सरयू कुटीर, मधवापुर इलाहाबाद.

'हिन्दुस्तान और पाकिस्तान' : जनवाणी, गाँधी शताब्दी अंक सित.-अक्टू० 1969, जनेश्वर मिश्र, सरयूकुटीर, मधवापुर इलाहाबाद.

'सिविल नाफरमानी' : जनवाणी, अगस्त, 1970,जनेश्वर मिश्र, सरयू कुटीर, मधवापुर इलाहाबाद.

'सोशलिस्ट सिविल नाफरमानी' : जनवाणी, सित-अक्टूबर, 1970, जनेश्वर मिश्र, सरयू कुटीर, मधवापुर इलाहाबाद

'हत्यारे के बढ़ते हुए हाथ', : जनवाणी, सितम्बर, 1966,जनेश्वर मिश्र, सरयू कुटीर, मधवापुर इलाहाबाद.

'सम्पूर्ण और संभव बराबरी' : लोहिया, चौखम्भा, नवम्बर 1957

'समता और सम्पन्नता' : लोहिया, जनवाणी, अंक-3,अप्रैल 1966.

समाचार -पत्र

आज	-झाँसी, वाराणसी, कानपुर, आगरा व ग्वालियर
अमर उजाला	- आगरा, बरेली, मेरठ, मुरादाबाद व कानपुर
जनसत्ता	- नई दिल्ली
इकॉनामिक टाइम्स	- दिल्ली
जय भारत	- कानपुर
टाइम्स ऑफ इंडिया	- नई दिल्ली
दैनिक भास्कर	- नई दिल्ली, इन्दौर व भोपाल
इण्डियन एक्सप्रेस	- दिल्ली
अमृत सन्देश	- रायपुर
नवभारत	- भोपाल
नवभारत टाइम्स	- नई दिल्ली
नवजीवन (हिन्दी)	- अहमदाबाद
रोजगार और निर्माण	- भोपाल
पांचजन्य (साप्ताहिक)	- नई दिल्ली
पंजाब केसरी	- नई दिल्ली
द-हिन्दू	- दिल्ली
दैनिक जागरण	- कानपुर, मेरठ, झाँसी व आगरा
देशबन्धु समाचार पत्र	- नई दिल्ली
लीक से हटकर (साप्ताहिक)	- टीकमगढ़
संडे मेल (साप्ताहिक)	- नई दिल्ली
स्वदेश	- भोपाल, ग्वालियर
हिन्दुस्तान	- नई दिल्ली
हिन्दुस्तान टाइम्स	- नई दिल्ली
हकदार (साप्ताहिक)	- बीकानेर (राजस्थान)
पायनियर	- दिल्ली
राष्ट्रीय सहारा	- लखनऊ, नई दिल्ली
विश्वामित्र	- कानपुर
वीर भारत	- कानपुर
स्वतंत्र भारत	- लखनऊ

जनयुग (साप्ताहिक)	- लखनऊ
नया भारत (साप्ताहिक)	- लखनऊ
राष्ट्रमत (साप्ताहिक)	- कानपुर
सहारा समय (साप्ताहिक)	- लखनऊ
राष्ट्र धर्म	- नई दिल्ली
जनसत्ता एक्सप्रेस	- लखनऊ
श्री इंडिया	- बाँदा

-पत्रिकायें-

प्रतियोगिता निर्देशिका	- इन्दौर
कादम्बिनी	- नई दिल्ली
अंगुत्तर	- नागपुर
माया	- इलाहाबाद
असली भारत	- नई दिल्ली
कल्याण	- गीता प्रेस, लखनऊ
आउटलुक	- इलाहाबाद
चाणक्य	- नई दिल्ली
विश्व घटना दर्पण	- नई दिल्ली
बुनियादी संघर्ष	- नई दिल्ली
परिषद सन्देश	- भोपाल
प्रतियोगिता सन्देश	- इन्दौर
दिनभान	- नई दिल्ली
विधायनी(शोध-पत्रिका)	- मध्यप्रदेश, विधानसभा सचिवालय
लोकतंत्र समीक्षा	- नई दिल्ली
प्रथम प्रवक्ता	- नई दिल्ली
इंडिया टुडे	- लिविंग मीडिया इंडिया लिमिटेड एफ 14115, कनाट प्लेस नई दिल्ली
सरस सलिल	- नई दिल्ली
साप्ताहिक हिन्दुस्तान	- नई दिल्ली

उत्तरप्रदेश वार्षिकी	- सूचना एवं जनसंपर्क विभाग उत्तर प्रदेश, लखनऊ
सिविल सर्विसेज, क्रॉनिकल	- नई दिल्ली
प्रतियोगिता साहित्य सीरीज	- इलाहाबाद
मनोरमा(ईयर बुक)	- कोट्यम (केरल)
समाजवादी बुलेटिन	- लखनऊ

इण्टरनेट–

www.google.com.

www.rediff.com.

www.yahoo.com.

अन्य स्रोत– टी.वी., रेडियों